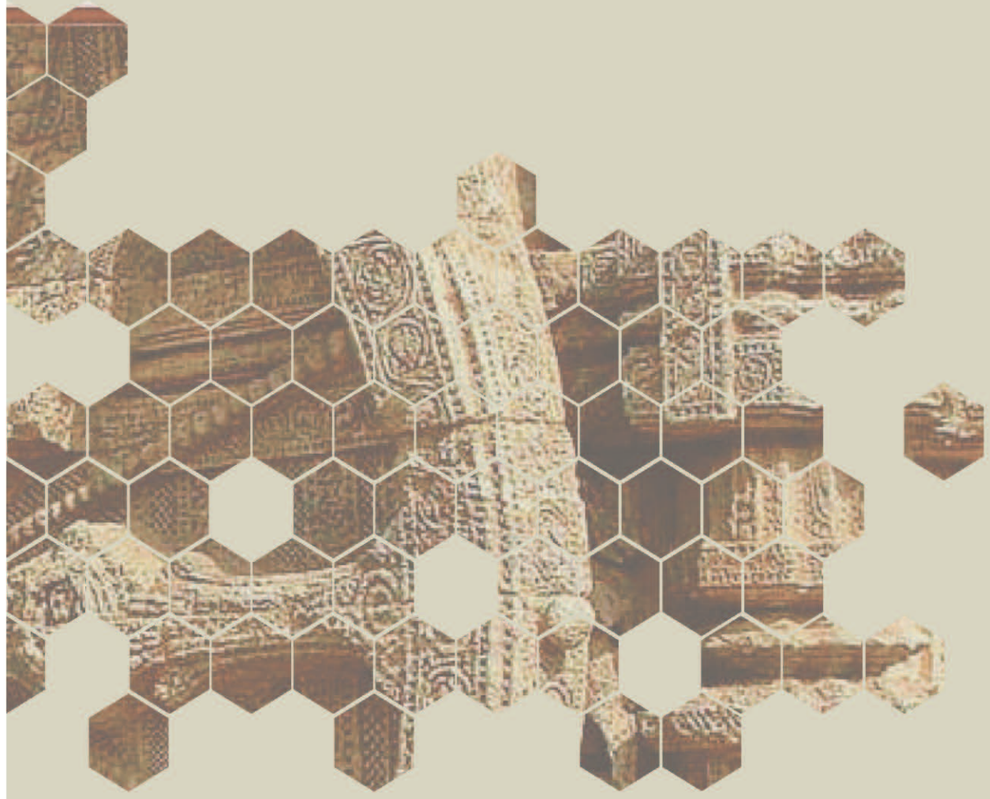

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास -I

Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

Institute of **Open** and **Distance Education**

Faculty of Arts

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास -I

1MAHIN1

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

1MAHIN1

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास –I

1MAHIN1

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास –I

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr. Shahid Hussain, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Aanchal Shrivastava, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Mithalesh Singh Rajput, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Manju Bhatt, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Kalpana Abhishek Pathak, *Department of Hindi, Govt. College, Kotari, Mungeli, Chhattisgarh*

Dr. Radha Sharma, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Course Editor:

- **Dr. Shraddha Hirkane, Associate Professor**
  Depatment of Hindi Kalinga University Raipur Chhattisgarh

Unit Written By:

1. Dr. Radha Sharma

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Pooja Yadav

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. Pragya Sharma (Net Qualify)

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

अनुक्रमणिका

ब्लॉक -I

इकाई - 1 चन्दबरदायी 1
इकाई - 2 विद्यापति 42
इकाई - 3 कबीरदास 64
इकाई - 4 जायसी 90

ब्लॉक -II

इकाई - 5 चन्दबरदायी के काव्य की समीक्षा 104
इकाई - 6 विद्यापति के काव्य 126
इकाई - 7 कबीदास के काव्य की समीक्षा 155

ब्लॉक -III

इकाई - 8 जायसी के काव्य की समीक्षा 192
इकाई - 9 प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास 216
इकाई -10 हिन्दी साहित्य का इतिहास भक्तिकाल 253

ब्लॉक -IV

इकाई -11 संत काव्य और उनका अवदान 269
इकाई -12 अमीर खुसरो का काव्य संसार 294
इकाई -13 रैदास का काव्य संसार 301
इकाई -14 नामदेव का काव्य संसार 306

ब्लॉक - I

इकाई - 1

चन्दबरदायी

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 चन्दबरदायी का जीवनवृत्त

1.4 पृथ्वीराज रासो का महाकाव्यत्व

1.5 पृथ्वीराज रासो का काल निर्धारण

1.6 पृथ्वीराज रासो पद्मावती समय की व्याख्या

1.7 सार संक्षेप

1.8 मुख्य शब्द

1.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.10 संदर्भ सूची

1.11 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम चरण आदिकाल के विषय में तथा पथ्वीराज रासो एवं उसके यशस्वी रचनाकार चंद्रबरदायी के विषय में बताया गया है। महाकवि चंद्रबरदायी ने जिस युग मे अवर्तीण होकर काव्य रचना का कार्य आरंभ किया था, वह हिंदी-साहित्य का 'आदि-काल' कहलाता है।

चंद्रबरदायी हिंदी साहित्यके आदि कवि कहे जा सकते हैं। उनकी कीर्ति का आधार.स्तंभ पृथ्वीराज रासो है। जिस प्रकार शिवाजी के साथ कविवर भूषण का नाम जुड़ा है उसी प्रकार पृथ्वीराज चैहान के साथ चंद्रबरदायी का

नाम जुड़ा है। परंपरा तथा जन-विश्वास के आधार पर कह सकते हैं कि वे पृथ्वीराज चैहान के मित्र तथा सभा सदस्य एवं उनके दरबारी कवि थे।

इस यूनिट में आदिकालीन कवि चंद्रबरदायी के जीवन एवं उनके कृतित्व के विषय में आपको अवगत कराया जाएगा।

1.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- आदिकालीन काव्य -सौंदर्य एवं काव्य-सौश्ठव के विशय में जान सकेगें।
- अपने पाठ्यक्रमांतर्गत आदिकालीन कवि चंद्रबरदायी के विशय में अपना
- ज्ञानवर्धन कर सकेगें।
- आदिकालीन काव्य परंपरा में चंद्रबरदायी का स्थान निर्धारित कर सकेगें।
- चंद्रबरदायी कृत पृथ्वीराज रासो का स्थान एवं महत्व जान सकेगें।

1.3 चंदबरदायी का जीवनवृत्त

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने चंदबरदायी का जीवन काल सम्वत् 1205 से 1249 तक माना है। इनका जन्म पश्चिमी पाकिस्तान में स्थित लाहौर नगर में हुआ। ऐसा माना जाता है कि चंद और पृथ्वीराज का जन्म एक ही तिथि को हुआ और मृत्यु भी एक ही तिथि को हुई। इनके पूर्वज पंजाब के निवासी थे और अजमेर के चौहानों से इनकी यजमानी थी। इसकी सूचना निम्नलिखित पद्य पंक्ति से प्राप्त होती है।

बलिभद्र सुनागौर चन्द उप्पाजि लाहौरह।

चंद के पिता का नाम राव वेण तथा गुरु का नाम गुरु प्रसाद था। वह भट्ट जाति के जगाति गोत्र के ब्राह्मण थे और जालंधरी इनकी इष्ट देवी थी। पृथ्वीराज के सिंहासन पर आरूढ़ होते ही वे उनके राज कवि बन गए। कुछ लोग उनके पिता का नाम मल्ह बताते हैं।

बिना आयस पृथ्वीराज के दाय नेषयौ बाज।

को रहवै सुत मल्ह को सूर नूर सुषलाज ।।

कवि चंद की कमला और गौरी नाम की दो पत्नियां थीं। गौरी से प्रेरणा प्राप्त करके ही कवि ने संवाद रूप में पृथ्वीराज रासो की रचना की। इन पत्नियों से कवि के यहां एक कन्या और दस पुत्र उत्पन्न हुए। सुरए सुंदर जल्हनए बल्ह मलिगढ़ए केहिरए वीरचंदए अवधूत तथा गजराज इनके दस पुत्रों के नाम है। इनमें केवल जल्ान ही प्रतिमा संपन्न कवि हुआ और उसी ने अपूर्ण पृथ्वीराज रासो को पूर्ण किया। इस संदर्भ में ये पंक्तियां उल्लेखनीय है-

दहति पुत्र कवि चन्द कै, सुन्दर रूप सुजान।

इक जल्हन गुण बावरो, गुण समंद सरियान ।।

आदि अंत लयि वृत्तमान वृत्ति गुनि गुनराज।

पुस्तक जल्हन हस्त दे चलि गज्जन नृपकाज ।।

रासोकार के अनुसार चंद ने पृथ्वीराज के हाथों मोहम्मद गौरी को मरवाया और फिर दोनों एकण्दूसरे को मारकर मृत्यु लोक सिधार गए। परंतु यह प्रसंग इतिहास के सर्वथा विरुद्ध है क्योंकि पृथ्वीराज की मृत्यु तराइन के युद्ध में सम्वत् 1249 को हुई। रासौ से यह भी सूचना मिलती है कि कवि चंद ने आजीवन ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत किया। राज परिवार की उस पर असीम कृपा थीं।

बीस गांव की चंद प्रति, करि कुंवर बगसीस ।

एक बीज साजति सजहि सुसंभरि ईस।।

रासो में इसकी और संकेत भी किया गया है । चंद्र ष्ड भाषा,व्याकरण ,काव्य ज्योतिष,वैदिक मंत्र, विद्या पुराण नाटक तथा गान विधा में प्रवीण थे। निश्चय ही वे अपने समय के बहुप्रतिष्ठित, बहुश्रुत तथा प्रकाण्ड विद्वान थे उनकी एकमात्र रचना है- पृथ्वीराज रासो। परंतु

मृत्यु से पूर्ण वे इस ग्रंथ को पूरा नहीं कर पाए । बाद में उनके पुत्र जल्हन ने ही इस रचना को पूर्ण किया।

पुस्तक जल्हन हस्त दै चलि गज्जन नृपकाज

इसके साथ चंदबरदायी एक अच्छे योद्धा, सामन्तए मित्र और मंत्री थे। अतः वह हमेशा पृथ्वीराज के साथ रहते थे।

साहित्यिक विशेषताएं-

पहले बताया जा चुका है कि चंद की एकमात्र रचना हैण पृथ्वीराज रासो। कुछ आलोचकों ने इस रचना को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य घोषित किया है। साहित्यिक दृष्टि से यह युद्ध का निश्चय ही महान काव्य है। उनके काव्य की विशेषताएं इस प्रकार इस प्रकार है-

(क) युद्धों का सजीव वर्णन - चंदबरदायी मात्र कवि ही नहीं थे, बल्कि वीर योद्धा भी थे। अवसर मिलने पर वे पृथ्वीराज चौहान के साथ युद्धों में भाग लेते थे। उन्होंने पृथ्वीराज रासो में जो युद्ध का सजीव वर्णन किया है उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि युद्धों में भाग लेने वाला व्यक्ति ही इस प्रकार युद्ध का वर्णन कर सकता है। कवि ने पृथ्वीराज जयचंद्र युद्ध तथा शहाबुद्दीन पृथ्वीराज युद्ध का यथार्थपरक वर्णन किया है। विशेषकर जयचंद की सेना का जो वर्णन किया है वह बड़ा ही प्रभावशाली बन पड़ा है। भले ही कवि ने अतिशयोक्ति शैली को अपनाया हो लेकिन उनके द्वारा किए गए युद्ध वर्णन किसी प्रकार भी कम नहीं हो जाता। पृथ्वीराज रासी से उदाहरण देखिए-

'सर करोणि रंग चलं पारि पंक।
बजड़ मंश संचि शंधि कासि करंक।
डुम ढाल लोलति दालं ति देसं।
गये हंस नंसीय गर्दै सुवैसं।
परै पानि जंधं घरंग निनारे।।
मनउ मछ्छ मछ्छ तरे तीर मारे।

सिर जा सरोपां कछे सा सिवाली।
गहे अंत गुथ्यी स सोहै मराली।
तट रंभ रत्तं भरंत विचीरं।
कतं स्यास स्वेतं कतं नीर पीरं ।।"

(ख) वस्तु-वर्णन और प्रकृति-वर्णन- चंदबरदायी की रचना पृथ्वीराज रासी वस्तु.वर्णन की दृष्टि से एक उल्लेखनीय काव्य रचना कही जा सकती है। इसमें कवि ने नगर विवाह, रण सज्जा युद्ध शत्रु विजय जल केलि आखेट आदि का बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया है। इसके साथ.साथ कवि ने शरद ऋतु तथा प्रकृति वर्णन में भी विशेष रुचि ली है। कवि ने प्रकृति के आलंबन तथा उद्दीपन दो रूपों का ही वर्णन किया है। उनके वस्तु-वर्णन से प्रभावित होकर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है- शोभा चाहे प्रकृति की हो या मनुष्य की परंपरा चलित उपमानों के सहारे ही विक्रिय है। जहां कवि ने प्रकृक्ति वर्णन करते समय केवल नाम परिगणन शैली को अपनाया हैए वहां नीरसरता और शुष्कता उत्पन्न हो गई है। विभिन्न ऋतुओं का वर्णन करते हुए कवि को सफलता प्राप्त हुई है। बसंत ऋतु का एक उदाहरण देखिए-

"सामग्गं कलभूत नूतन शिखरा मपुलेहि मधुवेष्टिता।
वाता सीत सुगंध मदं सरसा आलोल साचेष्टता ।।
कंटी कंठ कुलाहेल मुकलया कामस्थ उद्दीपनी।
रत्ने रत्त बसन्त पत सरसा संजोगि भोगारते।।"

(ग) नख-शिख वर्णन- नख.शिख वर्णन करने में चंद जी को पर्याप्त सफलता मिली है। वस्तुतः नख-शिख वर्णन करने में पृथ्वीराज रासो हिन्दी काव्य रचनाओं में श्रेष्ठ स्थान रखता है। इसमें कवि ने जहां एक ओर सरस कल्पना का प्रयोग किया है वहां दूसरी ओर नायिका के व्यक्तित्व का भी ध्यान रखा है। कवि ने नायिका को हृदय के मदन का

अयन कहा है और उसके अधरों की तुलना पके हुए बिब फलों के साथ की है। संयोगिता के ललाट पर लगे हुए कस्तूरी के तिलक की उपमा कवि ने सागर से उत्पन्न चन्द्रमा की गोद में बैठे हुए मृग के साथ की है। संयोगिता का नख.शिख वर्णन करते हुए कवि उसकी सखियों का वर्णन करना भी नहीं भूलता। कवि लिखता है-

"अधरल पल पल्लव सुवास।
मंजरिय जिलक पंजरिअ पास।।
अलि अलक कंठ कलमंठ मंत।
संयोगि भोग बरू भयु बमंत।"

सरस्वती का नख-शिख वर्णन करते समय कवि ने नख से शिख की प्रक्रिया को न अपनाकर शिख से नख तक की प्रक्रिया को अपनाया है। इसका कारण यह है कि सरस्वती एक देवी है और कवि एक आराध्य के रूप में उसका वर्णन करता है। कवि उसके कपोलों की तुलना प्रातःकालीन चंद्रमा के साथ करता है जो राहु के कलंक से बचने के लिए मृग के रथ को खुद खींच रहा है। लेकिन रीतिकालीन कवियों के असमान चंद का नख-शिख वर्णन पूरी वरह मर्यादित और सुरुचिपूर्ण है। पद्मावती.समय से पद्मावती के नख.शिख वर्णन का एक उदाहरण देखिए-

"मनहुं कला ससि भान, कला सोलह सो बन्नि्य।
बाल बेस ससि ता समीप, अंम्रित रस पिन्नि्य।।
बिगसि कमल मृग भ्रमर, बैन शंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब, मोति नष सिष अहि घुट्टिय ।।
छप्पनि गयन्द हरि हंस गति दिह बनाय संचै सचिय।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनि रचिय।।"

(घ) रस-योजना- पृथ्थी रासो में श्रृंगार के अतिरिक्त वीर रस का सुंदर परिपोक देखा जा सकता है। जहां कहीं कवि प्रेम का वर्णन करता है वहां श्रृंगार रस के अनुकूल

अनेक स्थल संजो लेता है। ऐसे स्थलों पर कवि जहां एक ओर नारियों के रूप सौंदर्य का चित्रण करता है यहां उनके संयोग तथा वियोग से संबंधित प्रसंगों पर भी समुचित प्रकाश डालता है। एक स्थल पर कवि संयोगिता तथा उसकी सखियों के सौदर्य का वर्णन करते हुए लिखता भी है-

कुसुमंत चीर गंभीर गंधिति मंद बुंद सुहावनम् ।
हिंदोल लोलति चाल सषि सुर, ग्राम सुख सुरगावनम् ।।
ढरकंत बेनिय बद्धए निय, चंद सेनिय आननम्।

पृथ्वीराज चौहान की शशिव्रता, इच्छिनी, संयोगिता, पद्मावती आदि अनेक रानियां थीं। नायिका वेन के अनुसार कवि ने इन सबके रूप सौंदर्य का बड़ा ही सुंदर चित्रण किया है। यहां तक कि कवि पृथ्वीराज और संयोगिता का रति वर्णन भी कर देता है। एक उदाहरण देखिए-

"रस क्रीड़त विरीत चिंत दंपति दंपति राति ।
पंच पंच सुट्ढए, पंच लगोति पंच पति।
उठिय बाल सज्जिय दुकूल, सुध पंजरसु धाम चित्त।
हर हराट उप्पयौ, तजि अक्कौट कान कृत ।।"

कवि ने श्रृंगार रस के संयोग पक्ष के साथ-साथ वियोग पक्ष का भी सुंदर वर्णन किया है। परंतु युद्ध वर्णन में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है जिसमें वीर रस का सुंदर परिपाक देखा जा सकता है। निम्नलिखित पद्यांश देखिए जिसमें ओज गुण के कारण वीर रस का परिपाक देखते ही बनता है-

बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहुं दिसि
सकल सुर सामन्त सूमर बंल यंत्र मंत्र तिसि।
उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग्ग मनहु वीर भट।
कढ़त तेग मन ाबेग लगत मनहु बीजु भट्ट घट्ट।

(क) अंलकार योजना- कवि ने अपनाने के लिए कासयाचीनकारी दोनों का बड़ा ही सुंदर प्रयोग किया है। शब्दाकार अनुधात तया चभक कवि के प्रियं

अलंकार है परन्तु इनका प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं किया गया। अर्थालंकाकरों में कवि ने उपमा रूपक उत्प्रेक्षा तया रुपकातिशयोक्ति अलंकारों का बहा सकल प्रयोग किया है। वे प्राय परंपरागत उपमानी का प्रयोग करते हैं। कुछ स्थानों पर कवि ने नवीन और मौलिक उपमानों का उपयोग किया है। सर्वोगिता के सौदर्य का वर्णन करते हुए कवि ने रूपकातिशयोक्ति की झड़ी लगा दी है। एक उदाहरण देखिए-

"कुंजर उप्पर सिंह। सिह उप्पर दोय पल्लय।
पम्बय उप्पर मंथ। मंथ उप्पर ससि सम्भय।
ससि उप्पर इक कीर। कीर उप्पर मृग बिट्ठौ।
मृग उप्पर कोदण्ड। सघं कदंथ बच दो।"

(च) भाषा-सौंदर्य तथा छंदों की विविधता- चंदबरदायी का भाषा पर पूरा अधिकार था। कवि ने यह दावा किया है कि यह षड्भाषा, कुरान तथा पुराण का ज्ञाता है। ऐसा लगता है कि मानो भाषा कवि का सर्वत्र अनुसरण करती हुई दिखाई देती है। वस्तु तथा प्रकृति वर्णन में कवि ने भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। यद्यपि पृथ्वीराज ससो की भाषा डिंगल और पिंगल है लेकिन इसमें संस्कृत, अपभ्रष, राजस्थानी, पंजाबी, ब्रज, अरबी, फारसी भाषाओं का भी सुन्दर मिश्रण किया गया है। युद्ध वर्णन में कवि ने डिंगल भाषा का प्रयोग किया है। श्रृंगार और सौंदर्य का वर्णन करते समय पिंगल भाषा प्रयुक्त हुई है। प्रस्तुत काव्य में भाषा की एकरूपता नहीं है तथा इसमें माषा से संबंधित त्रुटियां हैं। इसका कारण यह है कि पृथ्वीराज रासो में असंख्य प्रक्षिप्त अंश जुड़ गए हैं जिससे काव्य रचना का मूल रूप काफी विकृत हो गया है। लेकिन फिर भी पृथ्वीराज रासो की भाषा पूर्णतः भावानुकूल है। इसकी भाषा शैली उत्कृष्ट तथा कलात्मक है। कवि ने परंपरागत मुहावरों तथा प्रणालियों तथा शब्द-शक्तियों का प्रयोग करके इसको एक सफल काव्य रचना बनाया है। रासो की भाषा का एक उदाहरण देखिए-

"कहाँ कमघ कहाँ मध्य कहौ कर चरण अंतरूरि।
कहाँ कंध बहि तेग, कहाँ सिर जुट्टि फुट्ठि उर।।
कहाँ देत मेत हम शर शुपरि, कुंभ भसुंइह रूंड सब।

हिंदवान रानभय भांन मुष गाहइ तेग चहुआन जबु।।"

पृथ्वीराज रासो छंदों का एक जंगल है। कवि ने विविध प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। कवि को छंदों का पूरा ज्ञान था इसलिए उनकी छंद योजना वैविध्यपूर्ण है। कवि चंद ने वर्णिक तथा मात्रिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। छप्पय, गाथा, दोहा, पदरिया, उल्लाला, सट्टय, मुजंग प्रयात, त्रिमांगी, आर्य, बसंत तिलक आदि छंदों का कवि ने सुंदर प्रयोग किया है। इस संदर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित ही कहा है-

"वैसे तो हर बार तलवार की झंकार में तोटक, तोमर, पद्धति, आदि पर उतर आते हैं, पर जमकर वे छप्पय और दोहा में ही लिखते हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से चंदबरदायी रचित पृथ्वीराज रासो एक महान रचना है। कवि ने काव्य शास्त्र के नियमों, काव्य रूढ़ियों तथा परंपराओं का पालन करते हुए अपनी प्रज्ञा प्रतिभा के द्वारा पृथ्वीराज रासो को मौलिक और प्रभावशाली बना दिया है

1.4 पृथ्वीराज रासो का महाकाव्यत्व

ऐन्द्रिय अनुभूति के आधार पर काव्य के दो भेद हैं-श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य। श्रव्य काव्य को हम सुनकर या पढ़कर आनन्दानुभूति प्राप्त करते हैं, परंतु दृश्य काव्य को देखकर ही रसानुभूति प्राप्त करते हैं। शैली के आधार पर श्रव्य काव्य के तीन भेद है-गद्य-पद्य और चम्पू। गद्य काव्य में लय और संगीत न होने के कारण पथ का अभाव रहता है। नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि गद्य रचनाएं है परन्तु पद्य काव्य में संगीत तथा लय होता है। जिस काव्य में गद्य तथा पद्य दोनों का मिश्रण रहता है, उसे हम चम्पू काव्य कहते हैं। पद्य काव्य की श्रेणी में प्रबन्ध एवं मुक्तक दो विधाएं समाहित की गई हैं। प्रबन्ध के अन्तर्गत महाकाव्य का विशेष स्थान है। महाकाव्य के स्वरूप के बारे में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं। इससे पूर्व हमें यह समझ लेना होगा कि प्रबन्ध काव्य के भी दो भेद हैं-महाकाव्य, खण्डकाव्य। महाकाव्य में जीवन का सर्वांगीण व विस्तृत वर्णन रहता है। इसमें विषय

की व्यापकता की ओर भी ध्यान दिया जाता है। परन्तु खंडकाव्य में जीवन के किसी एक अंश को काव्य रचना का आधार बनाया जाता है। इसका आकार छोटा होता है और कथा भी छोटी होती है।

महाकाव्य का स्वरूप- संस्कृत के आचार्यों में भामह, दंडी, उद्भट्ट, रूद्रट, आचार्य विश्वनाथ, पं. राज जगन्नाथ आदि ने महाकाव्य की अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं। महाकाव्य शब्द का पहली बार प्रयोग वाल्मीकि रामायण में देखा जा सकता है। जब लव और कुश ने भगवान राम के दरबार में रामायण का पाठ किया तो उन्होंने उनसे तीन प्रश्न पूछे थे इस महाकाव्य का विस्तार कितना है, इसमें किस महात्मा की प्रतिष्ठा है और इसकी रचना करने वाले श्रेष्ठ मुनि कहां रहते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि महाकाव्य का आकार विस्तृत होता है और उसमें किसी महापुरुष का वर्णन होता है और उसका रचनाकार भी कोई महान कवि होता है।

(क) भारतीय दृष्टिकोण- भामह ने महाकाव्य की परिभाषा देते हुए उसकी | सर्गबद्धता, विस्तृत आकार, उचित शब्द चयन, शिष्टाचार प्रयोग, अलंकृति, महान चरित्र तथा विजयी नायक का समावेश, जीवन के विविध रूपों तथा घटनाओं का वर्णन एवं नाट्य संधियों आदि को आवश्यक माना। दण्डी ने अपनी रचना 'काव्य आदर्श' में महाकाव्य का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने महाकाव्य के लिए सर्गबद्धता, मंगलाचरण, पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथानक, चतुवर्ग, फल-प्राप्ति, धीरोदात्त नायक, प्रकृति-वर्णन, श्रृंगार रस की प्रधानता, अलंकृति, संधि योजना, छंद योजना आदि को आवश्यक माना। दण्डी के पश्चात् रूद्रट तथा हेमचन्द्र आदि ने महाकाव्य के लिए विस्तृत लक्षण दिए। परन्तु आचार्य विश्वनाथ ने अपनी रचना 'साहित्य दर्पण मे पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का समाहार करते हुए एक सटीक परिभाषा दी। उनके अनुसार-

1. महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए। उसमें कम-से-कम आठ सर्ग होने चाहिए जो न अधिक लम्बे हों न ही अधिक छोटे हों। प्रत्येक सर्ग का नामकरण विषयवस्तु के आधार पर होना चाहिए। उसके अन्त में छंद परिवर्तन हो तथा भावी कथानक की सूचना भी हो।

2. महाकाव्य का कथानक इतिहास प्रसिद्ध, पौराणिक अथवा कल्पनाजनित किसी महान व्यक्ति पर आधारित होना चाहिए। उसमें नाट्य संधियों की योजना अवश्य होनी चाहिए।
3. महाकाव्य का नायक किसी प्रसिद्ध राजवंश का राजा अथवा देवता या ब्राह्मण होना चाहिए। वह शूरवीर तथा धीरोदात्त होना चाहिए। महाकाव्य में शृंगार, वीर तथा शांत में से कोई एक रस होना चाहिए तथा अन्य सभी रस गौण रूप में होने चाहिए।
4. महाकाव्य में प्रकृति-वर्णन के साथ-साथ जीवन से संबंधित प्रसंगों का रमणीय व सुन्दर वर्णन होना चाहिए।
5. महाकाव्य के आरम्भ में नमस्कार, आशीर्वाद तथा वस्तु संकेत का निर्देश रहना चाहिए प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद होना चाहिए जो कि सर्ग के अंत में बदल जाना चाहिए।
6. सर्ग के अंत में अगले सर्ग की कथा की ओर संकेत किया जाना चाहिए।
7. महाकाव्य का नामकरण कथानायक अथवा कथानक या कवि के नाम पर दिया जा सकता है।
8. वस्तु-वर्णन के रूप में महाकाव्य में सूर्य, चन्द्रमा, संध्या, प्रभात, रात्रि पर्व, नदी, ऋतुएं, वन-उपवन नगर-ग्राम, संयोग-वियोग, विवाह-युद्ध, जन्मोत्सव आदि का वर्णन रहना चाहिए।

(ख) पाश्चात्य दृष्टिकोण- पाश्चात्य विद्वानों ने भी महाकाव्य के बारे में अलग-अलग परिभाषाएं दी है। इनमें अरस्तु ऐमबर क्रोम्बी, सी. एस-बावरा आदि की परिभाषाएं विशेष महत्व रखती हैं।

अरस्तु के अनुसार "महाकाव्य ऐसे उदात्त व्यापारों का काव्यमय अनुकरण है जो स्वतः पूर्ण, गम्भीर, वर्णनात्मक, आद्यान्त एक छन्दोमय कार्य करने वाला, श्रेष्ठ चरित्र, सम्भवनीय कथानक लिए होता है तथा सार्वभौम सत्य का प्रतिपादन करता है।"

सी. एस. बावरा के अनुसार- "महाकाव्य बश्हदाकार, महत्त्वपूर्ण एवं गरिमामयी घटनाओं वाला कथात्मक काव्य रूप है। इसमें कुछ चरित्रों की विशेष प्रकार से

आनन्ददायक क्रियाशील जीवन-कथा का वर्णन होता है। यह वर्णन मनुष्य की महत्ता, गरिमा और उपलब्धियों के प्रति आस्था का उत्पादक होता है।"

ऐम्बर क्राम्बी के अनुसार- "बड़े आकार के कारण ही कोई काव्य महाकाव्य नहीं हो जाता। महाकाव्य के लिए वातानुकूल शैली अपेक्षित है और यह शैली कवि की कल्पना, विचारधारा तथा उसकी अभिव्यक्ति से सम्बद्ध होती है। इस शैली के द्वारा पाठक एक ऐसे लोक में पहुंच जाता है जहां कुछ भी निस्सार तथा महत्त्व शून्य नहीं होता। महाकाव्य के भीतर का उद्देश्य ही उसकी गति का आद्यान्त संचालन करता है।"

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को आधार बनाकर पृथ्वीराज रासो की विवेचना की जा सकती है। प्रायः अधिकांश विद्वान इस मत से सहमत हैं कि पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य है। सम्भव है कि इसमें महाकाव्य की सभी विशेषताएं न हों। परन्तु चंदबरदायी ने महाकाव्य के रूप में ही इसकी रचना की है। निम्नलिखित विशेषताओं के आधार पर हम इसे महाकाव्य सिद्ध कर सकते हैं-

1. मंगलाचरण तथा सज्जन- स्तुति- भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के आरम्भ में मंगलाचरण को आवश्यक माना है। यह ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए होता है। इसके साथ-साथ सज्जन-प्रशंसा तथा दुर्जन की निंदा भी रहती है। चंदबरदायी ने पृथ्वीराज रासो लिखते समय इस परम्परा का समुचित निर्वाह किया है। कवि ने रचना के आरम्भ में ही मंगलाचरण अथवा सज्जन-स्तुति प्रस्तुत की है। इस सन्दर्भ में कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का भी गुणगान किया है। एक उदाहरण देखिए-

'ऊं आदि देव प्रजम्य नग्य गुरंय बानीय वदे नयं।
सिष्ट धारन वसुमती च लच्छीम चरणाश्रयं।
नं गुं तिष्ठति ईस दृश्ट दहनं व सुरूनाथ सिद्ध श्रयं।
घिर चिर जंगल जीव चंदं नमच सर्वेस वर्दामयं ।।"

2. कथावस्तु- भारतीय काव्यशास्त्रियों के अनुसार महाकाव्य का कथानक इतिहास सम्मत तथा आश्रित होना चाहिए। रासो का कथानक पूर्णतया इतिहास सम्मत है

लेकिन इसमें कवि ने अपनी कल्पना तथा काव्य-रूढ़ियों का भी प्रयोग किया है। अधिकांश आलोचक इसकी ऐतिहासिकता पर संदेह प्रकट करते हैं परन्तु हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रासो के चार संस्करण प्राप्त है। इसका इबसे छोटा संस्करण ही अधिक प्रामाणिक माना गया है। कथानक की दृष्टि से यह रचना इतिहासपरक प्रसिद्ध कथावस्तु पर आधारित है जिसमें यत्र-तत्र सुन्दर कल्पना का भी मिश्रण किया गया है। उल्लेखनीय बात यह है कि पृथ्वीराज रासो का कथानक आज भी राजस्थान में काफी लोकप्रिय है अतः कथावस्तु की दृष्टि से रासों को महाकाव्य स्वीकार करने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी।

3. नायक- पृथ्वीराज रासो का नायक राजकुल में उत्पन्न एक विशिष्ट राजा है। भले ही उसमें धीरोदात्त नायक के गुण नहीं है परन्तु वह अपने समय का विख्यात योद्धा था। वह एक वीर योद्धा होने के साथ रसिक शिरोमणि भी था। जब वह जयचन्द द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ में नहीं जा पाता तो जयचन्द दरबान के रूप में उसकी प्रतिमा को द्वार पर स्थापित कर देता है। इस पर पृथ्वीराज क्रोधित हो उठता है। वह न केवल राजसूय यज्ञ में जाता है बल्कि अपनी प्रेमिका संयोगिता का हरण कर लाता है। यही नहीं, पृथ्वीराज रासो ने शहाबुद्दीन को दो बार पराजित करके उसे अभयदान दिया। परन्तु तीसरी बार वह स्वयं पराजित हो जाता है। इस प्रकार हम पृथ्वीराज रासो को धीरोदात्त नायक भी कह सकते हैं।

4. सर्ग-बद्धता- सर्गबद्धता की दृष्टि से भी पृथ्वीराज रासो एक सफल काव्य रचना कही जा सकती है। इस महाकाव्य में 69 समय, अध्याय या सर्ग हैं। कवि ने प्रबन्ध की आवश्यकताओं के अनुसार ही सर्गों का विभाजन किया है। केवल लघुत्तम प्रति में ही सर्ग विभाजन नहीं है शेष सभी संस्करणों में सर्ग विभाजन की योजना देखी जा सकती है। ये सर्ग न अधिक छोटे हैं न अधिक बड़े हैं। कवि ने सर्ग के स्थान पर समय शब्द का प्रयोग किया है।

5. रस योजना- महाकाव्य में शृंगार, वीर तथा शांत में से कोई एक रस प्रधान होता है, शेष सभी रस अंगी रूप में होते हैं। पृथ्वीराज रासो में मुख्य रूप से वीर रस तथा श्रृंगार

रस का परिपाक हुआ है। इन दो प्रमुख रसों के अतिरिक्त रौद्र, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत रस गौण रूप में विद्यमान हैं। पृथ्वीराज रासो का कथानक बड़ा ही रोचक है। इसलिए कवि ने नाट्य संधियों की सुन्दर योजना की है और इतिहास, कल्पना का मिश्रण करते हुए एक सफल काव्य रचना प्रस्तुत की। वीर रस का एक उदाहरण देखिए -

कहाँ कमघ कहाँ मथ्य कर चरन अन्त दुरि।
कहाँ कंघ वहि तेग कहाँ सिर जुट्टि फुट्टि उर।
कहाँ दन्त सन्त हय खुर पुपरि कुम्भ भ्रसंडह रूंड सब।
हिन्दवान रान भय भानमुख गहिय तेग चहुआन जब ।।

6. वस्तु-वर्णन- पृथ्वीराज रासो में कवि ने बड़ी तन्मयता के साथ वस्तु-वर्णन किया है। नारी-सौन्दर्य, युद्ध-वर्णन, प्रकृति-वर्णन आदि में कवि ने विशेष रुचि ली है। कवि ने प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों रूपों का वर्णन करते हुए नदी, पर्वत, रात्रि, दिन, प्रातः, सायं, वन प्रदेश, सरोवर आदि का बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया है। कहीं-कहीं कवि नामपरिंगणन शैली का भी प्रयोग करता है, परन्तु युद्ध-सज्जा तथा युद्ध वर्णन में कवि को विशेष सफलता मिली है। सेना वर्णन का एक उदाहरण देखिए जिसमें कवि ने शहाबुद्दीन की सेना का वर्णन किया है-

"क्रोध जोध जोधा अनंत करियपन्ती अनि-रज्जिय
वान नाति हथनालि तुपक तीरह, सब, रज्जिय।
पठवै पहार मनो सारू के, भिरि भुजान गनेस बल।
आए हकारि भुरि, शुरासान सुल्तान दल।"

नख-शिख वर्णन में भी कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। 'पद्मावती-समय' नख-शिख वर्णन के लिए एक प्रसिद्ध सर्ग है। इसकी नायिका पद्मावती समुद्र शिखर की राजकुमारी है। वह अनिंद्य सुन्दरी होने के साथ-साथ एकनिष्ठ प्रेमिका भी है। कवि उसका नख-शिख वर्णन करते हुए लिखता है-

मनहुं कला ससि भान, कला सोलह सो बन्निय।

बाल बेस ससिता समीप, अंम्रित रस पिन्निय।

विगसि कमल म्रिग भ्रमर, बैन शंजन मृग लुट्टिय।

हीर कीर अरू बिम्ब, मोती नष सिप अहि घुट्टिय।

छप्पति गयन्द हरि हंस गति, दिह बनाय संचे सचिय ।

पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनि रचिय।"

7. उद्देश्य- भारतीय विद्वानों के अनुसार महाकाव्य का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी एक की प्राप्ति होनी चाहिए। पृथ्वीराज रासो का उद्देश्य धर्म प्राप्ति हो सकता है। धर्म के लिए ही नायक युद्ध में कूद पड़ता है। पृथ्वीराज ने प्रथम युद्ध संयोगिता के प्रेम के कारण किया दूसरा युद्ध देश के लिए। कवि ने संयोगिता के साथ केलि विलास का भी वर्णन किया है। यह वर्णन काम से सम्बन्धित है। कवि ने यही भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भोग-लिप्सा नायक के लिए हानिकारक हो सकती है, इासलिए प्रस्तुत महाकाव्य का उद्देश्य अधर्मी शत्रु का विनाश करके देश की रक्षा करना है। कुल मिलाकर धर्म की प्राप्ति इस महाकाव्य का प्रमुख उद्देष्य कहा जा सकता है।

8. नामकरण- प्रस्तुत महाकाव्य का नामकरण नायक के नाम पर हुआ है और यह नायक एक इतिहास प्रसिद्ध कवि था। भले ही रासो के कथानक में कुछ प्रक्षिप्त अंश जुड़ गए हों, परंतु इससे पृथ्वीराज रासो का महत्व कम नहीं हो सकता। इसीलिए कवि ने तत्कालीन इतिहास प्रसिद्ध नायक पृथ्वीराज चौहान के नाम से ही इस महाकाव्य का नामकरण किया है।

9. कलागत विशेषताएं- भाषा-शैली, छंद-अलंकार की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो एक सफल महाकाव्य कहा जा सकता है। इसकी भाषा भव्य तथा छंद विधान उच्च कोटि की है। कवि ने मुहावरों, शब्द-शक्तियों तथा कथानक प्रणालियों का सफल प्रयोग करते हुए नटकीय ढंग से इस महाकाव्य का रचना की है। छंदों की दृष्टि से यह एक सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कहा जाएगा। इसे छंदों का जंगल कहा गया है। इसमें तोटक, तोमर,

पद्धरी, उल्लाला, कविता, दूहा आदि छंदों का सफल प्रयोग देखा जा सकता है। यही नहीं, इसमें अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग विद्यमान है।

फिर भी कुछ विद्वानों ने पृथ्वीराज रासो में कुछ त्रुटियां निकालने का प्रयास किया है। परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह हिन्दी साहित्य का एक प्रथम महाकाव्य है। कुछ विद्वानों ने इसे विशाल वीर काव्य कहा है। इस सन्दर्भ में **डॉ. श्याम सुन्दर दास** का निम्नलिखित कथन काफी महत्वपूर्ण होगा-**"इस विशाल काव्य ग्रंथ को हम महाकाव्यों की उस श्रेणी में नहीं गिन सकते जिसमें यूनान के प्रसिद्ध महाकाव्य इलियट आदि तथा भारतवर्ष में रामायण, महाभारत आदि की गणना होती है। यह महाकाव्य तो एक समस्त देश और एक समस्त जाति की स्थायी सम्पत्ति है। इसमें जातीय सभ्यता तथा संस्कृति का सार अंतनिर्हित है। यह सत्य है कि 'पृथ्वीराज रासो भी एक विशालकाव्य ग्रंथ है और यह भी सत्य है कि महाकाव्यों की ही भांति इसमें भी युद्ध की ही प्रधानता है पर इसी आधार पर उसे महाकाव्य कहलाने का गौरव नहीं प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में 'पृथ्वीराज रासो' को महाकाव्य न कहकर विशालकाय वीर काव्य कहना संगत होगा।"**

1.5 पृथ्वीराज रासो का काल निर्धारण

पृथ्वीराज रासो आदिकाल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशालकाय महाकाव्य है। इसके रचयिता चंदबरदायी हैं। जहां तक ऐतिहासिक रासोकाव्य परम्परा का प्रश्न है उस दृष्टि से यह एक विवादास्पद रचना है। इसमें कवि ने अपने सखा, आश्रयदाता पृथ्वीराज के जीवन और युद्ध का व्यापक, प्रभावशाली तथा यथार्थ चित्रण किया है। इसमें कुल 1500 पृष्ठ हैं तथा 68 सर्ग हैं। छंदों की कुल संख्या एक लाख के लगभग है। संवाद शैली में रचित यह हिन्दी का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। कवि की पत्नी उससे प्रश्न करती है और वह उत्तर देता है। प्रस्तुत काव्य रचना में यज्ञकुण्ड से चार क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति तथा चौहानों की अजमेर राज्य स्थापना से लेकर पृथ्वीराज के पकड़े जाने तक

का विस्तृत वर्णन मिलता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि इस ग्रंथ का अन्तिम भाग चंद के पुत्र जल्हण ने पूरा किया। ग्रंथ में इसका उल्लेख भी मिलता है-

"पुस्तक जल्हणि हत्थ दे, चलि गज्जन नृप काज।
रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत भेज उद्दरिय जिमि।
पृथ्वीराज सुजम कवि चन्द कृम चन्द नन्द उद्धरिय तिमि ।"

पृथ्वीराज रासो के चार संस्करण है। सबसे बड़े संस्करण का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ। इसकी हस्तलिखित प्रतिया उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें कुल 69 समय तथा 16306 छंद हैं। द्वितीय संस्करण में कुल 7000 छंद हैं। इसका अभी प्रकाशन नहीं हुआ। परन्तु अबोहर तथा बीकानेर में इसकी प्रतियां सुरक्षित। है। वे प्रतियां 17 वीं शताब्दी में लिखी गई थीं। तीसरे संस्करण में 3500 छंद है तथा 19 समय है। इसकी हस्तलिखित प्रतियां भी बीकानेर में सुरक्षित पड़ी हैं। चौथा संस्करण लघुत्तम है जिसमें कुल 1300 छंद हैं। डॉ. दशरथ शर्मा ने इसे प्रामाणित रचना माना है।

जहां तक पृथ्वीराज रासो के रचना काल का प्रश्न है, इसके बारे में विद्वानों में काफी मतभेद हैं। इस ग्रंथ में रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं है इसलिए रचनाकार के जीवनकाल से ही इसका रचनाकाल निर्धारित किया जा सकता है। पृथ्वीराज रासो का सबसे पहले उल्लेख सम्वत् 1707 में दलपति मिश्र द्वारा रचित जसवन्तउद्योग में मिलता है। सम्बत् 1635 में चौहानवंशी बूंदी नरेश सुरजन तथा उसके पुत्र भोज के आश्रित कवि चन्द्रशेखर ने 'सुरजन चरित नामक संस्कृत काव्य में पृथ्वीराज रासो का पूरा सर्ग लिखा है। यहां पृथ्वीराज रासो के साथ चन्द का भी उल्लेख है, परन्तु चन्द को रासो का रचनाकार नहीं कहा गया। इससे यह पता चलता है कि सम्वत् 1635 तक पृथ्वीराज के दंशजों को भी पृथ्वीराज रासो का कोई अता-पता नहीं था। इधर मोहन लाल विष्णुलाल पांड्या ने गंगभाट रचित चन्द छंद वर्णन की महिमा नामक ग्रंथ की प्रति का उल्लेख किया है। उसके आधार पर उन्होंने यह सिद्ध

करने का प्रयास किया है कि सम्वत् 1627 तक पृथ्वीराज रासो का उल्लेख मिलने लगा था। परन्तु खोज रिपोर्ट के अनुसार यह फुलस्कैंप कागज पर लिखी हुई सर्वाधिक आधुनिक रचना प्रतीत होती है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि अकबर के शासन काल से पहले पृथ्वीराज रासो के अस्तित्व का अभाव था। इधर नरोत्तम स्वामी ने यह अनुमान लगाया है कि अकबर की अधीनता स्वीकार करने के पश्चात् मेवाड़ के राजघराने ने पृथ्वीराज चौहान से इसलिए अपना संबंध स्थापित किया ताकि उनका गौरव बढ़े। इससे पता चलता है कि पृथ्वीराज की बहन का नाम पृथा था। अन्ततः इस सारे प्रसंग को काव्य रूप दिया गया और पृथ्वीराज रासो के रूप में इस काव्य को लिपिबद्ध करवाया गया। रासो संग्रह का यह क्रम अनेक पीढ़ियों तक चलता रहा। इसकी अन्तिम परिणति अमर सिंह द्वितीय के राज्यकाल में हुई। परन्तु मुनिजन विजय ने पुरातन प्रबल संग्रह से दो ऐसे प्रबन्ध काव्यों का सम्पादन किया है जो पृथ्वीराज तथा जयचन्द से संबंधित है। इसमें चार छंद ऐसे संकलित हैं जिनमें से तीन नागरी प्रचारिणी सभा काशी के द्वारा प्रकाशित सम्पादित पृथ्वीराज रासो में उपलब्ध होते हैं। फलस्वरूप चन्द तथा पृथ्वीराज रासो के समय को लेकर एक विवाद खड़ा हो गया है। मुनिजिन विजय लिखते है- **इस संग्रह के प्रकरणों में जो तीन-चार प्राकृत भाषा के पद उद्धृत किए हुए मिलते हैं जनका पता हमने उक्त रासो में लगाया है और इन चार पदों में तीन पद यद्यपि विकृत रूप में हैं लेकिन शब्द उनमें हमें मिल गए हैं।"**

मुनिजन विजय की इस खोज से यह पता चल जाता है कि चन्द कवि एक ऐतिहासिक पुरुष था तथा वह दिल्ली के हिन्दू राजा पृथ्वीराज के समकालीन आश्रित राज कवि था। उसी ने पृथ्वीराज चौहान के जीवन तथा उसकी कीर्ति का प्राकृत भाषा में रचित एक काव्य के द्वारा वर्णन किया। यही काव्य पृथ्वीराज रासो के नाम से प्रसिद्ध है। मुनिजन विजय ने भाषा विषयक प्राधीनता पर जो बल दिया है उससे यह सपष्ट हो जाता है कि भाषा के आधार पर कवि ने पृथ्वीराज रासो को प्राचीन रचना गाना है।

लेकिन इन घंदी का ध्यान से निरीक्षण किया जाए तो पता चलता है कि जो चार छंद एन प्रवन्धी में हैं ये चन्द को संबोधित उद्धृत किए गए हैं। उनमें से दो छंद बन्द रसित ने होकर जलाग द्वारा रचित है। वे दो छंद है-

1. **"त्रिण्टि वक्ष तुजार सबल पाखरी अई जसुहय**
   चऊदसई मयमत दंती गज्जनि महामय।
   बीस लक्ख पायक्क सफर फरवक बणुर।
   लहुसहु अस अलुयान संख के जाणाइ ताइ पर।
   छत्तीस लक्ष नलराहिवइ विह विनडियो हो किस भयउ।
   जइ छंद न जागउ जल्ह कइ गयउ कि कुह कि धरि गयउ।"

2 **"जइत चंदु चक्कवइ देव तुह बुयह पयाणउ।**
धरणि धसवि उहसइ परइ रायइ भंगाणओ।
सेतु गणिहिं सकियई मुक्कु हयावरि सिरि खंडियो।
तुहओ सो हर धवनु धूलि जसु चिय तणि मज्यिो।
उच्छलीउ रेणु जसगी गय सुकवि व जल्हु सच्चउयवई।
बग इन्दु भुय जुअनि सहत्स नयण किण परि मिलई।"

इन दो छंदों में से ऊपर का छद नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासों में विद्यमान है। परन्तु विद्वानों का विचार है कि प्रक्षेपकर्ता ने छंद की अफिम पंक्ति में जल्हण नाम निकालकर उसमें चनलद नाम रख दिया। यहा रासो का पाठ इस प्रकार बन गया-

"जैचन्द राई कावि चंद कहि उदधि बुडि के धर लियौ।"

लेकिन यह छंद इस प्रति में छोड़कर किसी अन्य प्रति में नहीं मिलता। इससे या निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इसके छदों के रचयिता जल्हण हैं, न

कि चन्द। इसलिए बनायी की रचना का स्वरूप तथा समय को निश्चित करते समय इसे आधार नहीं बनाया जा सकता।

प्रबंध लेखकों जो प्रतियां मिली है उसका रूप प्रक्षिप्त था। परन्तु इस समय जो कृति मिलती है, उसने जो नहीं है। रातो की दो लघुतम प्रतियां मिली है उनमें पृथ्वीराज प्रबन्ध का जगह मगर दाहि पाला छंद है ही नहीं। कंवल रासो के प्रथम और द्वितीय संस्करणों में यह चंद मिलता है और यह भी एक दूसरे से बिन्न स्थानों परमिला है। राजपूत संस्करण से भी एक लघुत्तर संस्करण है जिसमे कुशप्रतिप्रमाणित होने के कारण नहीं रखे गए। विद्वानों के इसनाने का प्रयास किया है कि मूलका पात तथा वर्तमान रचना में कम-से-कम चार पीढ़ियों का अन्तर है। रासी के मूल पाठ तथा प्रबन्ध लेखन के आधारभूत में लगभग 50 वर्षों का अनार माना जाए और प्रत्येक पीढ़ी के लिए 25 वर्षों का समय रखा जाए तो पृथ्वीराज रासो का सम्वत् 1400 के लगभग निर्धारित किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना कथानक के समकालीन नहीं है। प्रक्षिप्त प्रति के पाठ में भी कुछ इस प्रकार का विवरण है जो ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता है। इसके साथ-साथ उसमें इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया गया है जो उत्तरी भारत की बोलचाल की भाषा के थे। अतः यह कहना असंगत न होगा कि पृथ्वीराज रासो का रचनाकाल सम्वत् 1350 से सम्वत् 1400 के बीच निर्धारित किया जा सकता है। इतना सब होने पर भी विद्वानों ने पृथ्वीराज रासो के रचनाकाल के बारे में किसी एक मत का समर्थन नहीं किया। यहां इस बात का उल्लेख करना उचित होगा कि रासो के लघुत्तम काल की जो प्रति मिली है, वह आषाढ़ शुक्ला पंचमी सम्वत् 1667 की है। यदि इसको प्रामाणिक मान लिया जाए तो पिछला निर्धारित किया गया रचनाकाल भी सही प्रतीत नहीं हो सकता।

1.6 पृथ्वीराज रासो पद्मावती समय की व्याख्या

दोहा

1. पूरब दिस गढ़ गढ़न पति, समुद शिखर अति दुग्ग।

तह सु विजय सुरराज पति, जादू कुलह अभग्य ।।1।।

हसम हयग्गय देस गति, पति सायर ग्रज्जाद।

प्रवस भूप सेवहिं सकल, धनि निसान बहु साद।।2।।

शब्दार्थ- गढ़न पति-दुर्गों अथवा किलों में श्रेष्ठ। अति अत्यधिक, अत्यंत । दुग्ग-दुर्ग। समुद शिखर नगर अथवा दुर्ग का नाम। सुरराज देवराज अर्थातत् इन्द्र। जादू कुलह-यादव कुल अथवा वंश। अभग्ग-जिसे जीतना कठिन हो, दुर्जेय। हसम-सेना। हयग्गय-हाथी-घोड़े। सायर-सागर। ग्रज्जाद-मर्यादा। धुनि-ध्वनि. गूंज। निसान-नगाड़ा। साद-शब्द। बहु-अनेक। प्रबल-बहुत शक्तिशाली।

प्रसंग- उपरोक्त दोहे चंदरबरदायी रचित पृथ्वीराज रासों के पद्मावती समय से उद्धृत किए गए हैं। प्रथम दोहे में पद्मावती के पिता राजा विजयपाल के समुद्र शिखर दुर्ग तथा दूसरे में राजा के अपार वैभव का वर्णन है। ये दोहे पद्मावती समय की कथा के आरंभ में आए है।

व्याख्या- पूर्व की दिशा में, समुदशिखर नाम का एक अत्यंत विशाल दुर्ग है जो सब दुर्गों में श्रेष्ठ है। वहां यादव कुल के महा प्रतापी राजा विजयपाल राज्य करते थे जो देवों के राजा इंद्र के समतुल्य थे। राजा विजयपाल के पास एक विशाल सेना थी जिसमें हाथी घोड़ों की भरमार थी। तात्पर्य यह कि उनके राज्य में विशाल अश्वारोही और हाथियों से सुसज्जित एक सेना थी। ये सागरों समेत समूची पृथ्वी के स्वामी थे अथवा उनकी कीर्तिपताका समुद्रों से लेकर पूरी पृथ्वी पर फहराती थी। बड़े-बड़े शक्तिशाली राजाओं ने उनकी अधीनता स्वीकार की थी और वे उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत रहते थे। विजयपाल की सेना के द्वारा जब नगाड़े बजाए जाते थे तो उनकी ध्वनि से समस्त दिशाएं और धरती से लेकर आकाश तक गुंजायमान हो उठता था।

विशेष-

(1) कवि ने समुद्र शिखर दुर्ग और राजा विजयपाल की काल्पनिक रचना की है और उनके पूर्व दिशा में स्थित होने का अनुमान लगाया है।

(2) राजा के वैभवपूर्ण व्यक्तित्व का चित्रण करने हेतु कवि ने विशाल सेना और अनेक राजाओं द्वारा विजयपाल की सेवा करने के प्रसंग की रचना की है।

(3) इन दोहों में रूपक, छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास अलंकारों का उपयोग हुआ है।

(4) भाषा वर्ण्य विषय के अनुकूल और ओजपूर्ण है।

कवित्त

2. धुनि किसान बहु साद नाद सुरपंच बजत दिन।
दस हजार हय चढ़त हेम नग जटिल साज तिन।
गज असंख गजपतिय मुहर सेना तिय संखह।
इन नायक का घरी पिनाक धरमर रज रख्खह।
दस पुत्र पुत्रिय एक सम रथ सुरंग उम्मर डम्मर।
भंडार लक्षिय अगनित पदम सो पदमसेन कुंवर सुधर।।3।।

शब्दार्थ- निसान-नगाड़े। नाद-ध्वनि, घोष। सुरपंच पंचम स्वर में। हय घोड़े। हेम-सेना। नग-हीरे। साज-सजावट, वस्त्र। तिन उनका। असंख-असंख्य। मुहर-सेना की अग्रपंक्ति। तिय-तीन। संखह-संख्या। पिनाक शिव का धनुष। धर-धरती। भर-भरण-पोषण। रज-राज्य। रख्खह-रक्षा करना। सुरंग-सुंदर। उम्मर-वस्त्र, कपड़े। लछिम लक्ष्मी। धन-संपत्ति। पदम-सौ अरब रुपए। सुघर-सुंदर, सुडौल।

प्रसंग- प्रस्तुत कवित्त 'पृथ्वीराज रासो नामक ग्रंथ के 'पद्मावती समय से उद्धृत किया गया है, जिसके रचयिता चंदबरदायी है। इसमें राजा विजयपाल की सैनिक शक्ति, धन-संपदा तथा उनके परिवार का वर्णन किया गया है।

व्याख्या- राजा विजयपाल के समुद्र शिखर दुर्ग में जब नगाड़े बजते थे तो समस्त धरती कंपायमान हो जाती थी। वहां प्रतिदिन पंचम स्वर में भेरी नाद गूंजता रहता था। राजा के अधीन दस हजार अश्वारोहियों की एक प्रतापी सेना थी जिसके सैनिकों के वस्त्र हीरे मोतियों से सज्जित होते थे। इस सेना में अनगिनत हाथी भी थे।

हाथियों पर सवार होकर मुहर अर्थात सेना की अग्रिम पंक्ति संभालने वाले सैनिकों की कुल संख्या तीन शंख थी। घुड़सवार सैनिकों की तुलना में उनकी संख्या तीन गुनी अधिक थी। विजयपाल स्वयं एक सामर्थ्यवान सेना नायक थे। उनके हाथ में शिवजी के धनुष की तरह एक धनुष रहता था जिसके दम पर उन्होंने सभी देशों के राजाओं पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था। राजा के दस पुत्रों और एक पुत्री में सभी समान रूप से गुणवान थे। राजा विजयपाल के रथ की ध्वजा उस समय आकाश घूमती थी जब वे रथ पर आरूढ़ होकर प्रस्थान किया करते थे। राजा के कोषागार अनगिनत पद्म से भरा हुआ रहता था। उसकी रानी पद्मसेनी नाम की एक स्त्री थी।

विशेष-

(1) कवि ने राजा की अश्वसेना, गजसेना और रथ सेना का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन। किया है।

(2) कवि ने प्राचीन काल में उपयोग में लाए जाने वाले संख्यावाची शब्दों यथा- 'शंख और पद्म का प्रयोग किया है। इनके आधार पर राजा के वैभव की गणना की। गई है।

(3) इस कवित्त में राजा विजयपाल की पत्नी और उनकी संतानों का उल्लेख हुआ। है।

(4) जिन अलंकारों का इसमें उपयोग हुआ है, वे हैं- अतिशयोक्ति, यमक, छेकानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास ।

3. पदमसेना कुंवर सुधर, ता घर नाई सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुं कला ससिभान ।।4।।

शब्दार्थ- ता-उसके। सुजान-प्रवीण, निपुण। उर-हृदय, गर्भ। ससिमान-सूर्य और चंद्र।

प्रसंग- यह दोहा चंदबरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय से लिया गया है। इसमें पद्मावती के जन्म का वर्णन किया गया है।

व्याख्या- समुद्र शिखर के राजा विजयपाल के घर में पद्मसेनी नाम की एक सुंदर और प्रवीण स्त्री रहती थी जो उनकी पत्नी थी। उसके गर्भ से एक पुत्री का जन्म हुआ। पद्मावती नाम की यह पुत्री इतनी सर्वांगसुंदर प्रतीत होती थी कि उसे देखकर साक्षात कला देवी का आभास होता था।

विशेष-

(1) यह एक सामान्य दोहा है जिसे कथाक्रम के विकास के निमित्त रचा गया है। इसकी भाषा वर्णनात्मक है।

(2) इसमें जिस अलंकार का संयोग है उसे उत्प्रेक्षा कहा जाता है।

कवित्त

4. **मनहु कला सरिभान कला सोलह सो बन्नि्य।**
काज बेस ससिता समीप अमृत रस पिन्नि्य।
बिगसि कमल मृग भ्रमर बैन खंजन मृग तुहिय।
हीर कौर अरु बिम्ब गोति नख शिख अहि छुट्टिय।
छपपति गयंद हरि हंस गति विह बनाय संबै संचिय।
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय मनहूं काम कामिनी रचिय।।5।।

शब्दार्थ- मनहुँ- ऐसा प्रतीत होता है। सौ-से द्वारा। बलिय-निर्मित। बेस-वयत। आयु-उम्र। ससि-चंद्रमा। षिन्नि्य-चिया हो ही शान क्रिया हो। बिगसि-विकसित। बैन-बांसुरी। लुट्टिय-लूट लिया। हीर-हीरा। कीर-तोता। बिम्ब-लाल रंग का एक फल। अहिलुट्टिय-बनाया। गयंद हाथी। छपपति-छिपाती है। हरि-सिंह। विहविधिए विधाता। सबै सांचे। सचिय-शचीए इन्द्र की पत्नी। कामिनी॰स्त्री।

प्रसंग- उपरीका कवित्त पृथ्वीराज रासो के श्पद्मावती समय से उद्धृत किया गया है जिसके रचयिता चंदबरदायी है। कवि ने इस कवित्त के माध्यम से राजा विजयपाल की पुत्री के रूप॰सौंदर्यए यौवन एवं कमनीयता का सुरुचिपूर्ण वर्णन किया है।

व्याख्या- राजा विजयपाल की पुत्री पद्मावती चंद्रकिरण चंद्रमा की कलाओंद्ध की तरह सुंदर और रूपवान है और ऐसा प्रतीत होता है कि चंद्रमा की सोलह कलाओं के सम्मिश्रण से ही उसका गठन किया गया है। बाल्यावस्था में भी उसकी कांति ऐसी है मानो चंद्रमा ने उसके सान्निध्य में ही बैठकर मधुरस यअमृतद्ध का पान किया हो। संसार में खिले हुए कमलए मृगए भ्रमर वेणु और खंजन जैसे जितने भी सौंदर्य के प्रतिमान हैए उन सभी की सुंदरता जैसे इसी मनोहर बालिका में समाहित हो गई है। इन सबके सौंदर्य के योग से पद्मावती के सौंदर्य में अभिवृ हो गई है है। पद्मावती की गौरवर्णी काया ऐसे दमकती है जैसे हीरा दमकता है। उसकी नासिका तोते की नासिका की तरह वर्तुल है और अधर ऐसी गुलाबी लाली लिए हुए हैं जैसे बिम्ब श्रीफल हों। नायिका की मंदण्मंद चाल को देखकर हाथीए हंस और सिंह भी लज्जित हो जाते हैं और मुंह छिपाते फिरते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने पद्मावती के रूप में स्वयं इंद की पत्नी शची की पुनर्रचना की है। पद्मावती के अंग-अंग में शची का संपूर्ण रूप लावण्य आभासित होता है। निश्चय ही विधाता ने पद्मिनी नारी के रूप में श्रति कामदेव की पत्नीद्ध को फिर से अवतरित कर दिया है।

विशेष-

1. कवित्त के अंतर्गत पद्मावती के रूप लावण्य और उसकी कमनीयता का चित्रण किया गया है।

2. पद्मावती चंदरबरदायी की कल्पना से उत्पन्न हुई है। बाद के कई अन्य कवियों ने भी पद्मावती की लगभग इसी रूप में कल्पना की हैए जिससे वह एक काव्यण्रूढ़ि में बदल गई है।

3. कवि ने पद्मावती के नखशिख सौंदर्य का सुंदर, सरस और रोचक चित्रण किया है। उसकी देहगंध ने कमलों कोए विशाल नेत्रों की सुंदरता ने मृग के नेत्रों को और उसके चरणोंए मुख और बांहों ने कमलदलों की सुकुमारता भी पीछे छोड़ दिया है।

उसकी स्निग्ध और लंबी केशराशि ने भ्रमर की लिमा कोए नेत्रों की चपलता ने खंजन पंक्षी की चंचलता को और उसकी मधुर वाणी ने बांसुरी की मिठास को भी लज्जित होने के लिए विवश कर दिया है।

4. पद्मावती के रूप-सौंदर्य का यह वर्णन परंपरासम्मत और रसपूर्ण है जिसमें कवि की काव्यप्रतिभा ने समृद्धि का परिचय दिया है।

5. इस कवित्त में उत्प्रेक्षाए अनुप्रासए व्यक्तरेक और रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।

6. स्त्री के जिन चार भेदों का काव्यशास्त्रियों ने उल्लेख किया है शखिनीए चित्रिणी और हस्तिनी पदिद्मनी की देहगंध कमल की पदिमनीए उनमें पद्मिनी को ही सर्वश्रेष्ठ ठहराया है। सुगंध जैसी होती है। चंदबरदायी ने अपनी नायिका पद्मावती का पदिद्मनी स्त्री के रूप में वर्णन किया है।

दोहा

5. **मनहूं काम कामिनी रचियए रचिय रूप की रास।**
पशु पंछी सब मोहिनीए सुर नर मुनियर पास ।।6।।
सामुद्रिक लक्षण सकलए चौंसठ कला सुजान।
जानि चतुर्दस अंग षटए रति बसंत परमान ।।7।।
सखियन संग खेलत फिरतए महलनि वान निवास।
कीर इस्क दिष्क्रिय नयनए तब मन भयौ हुलास ।।8।।

शब्दार्थ- मनहूं-मानो। रास-राशि। मुनियर मुनीश्वरए श्रेष्ठ मुनि। सामुद्रिक-एक प्राचीन शास्त्र जो नारी के अंगों के आधार पर शुभ-अशुभ का विवेचन करता है। लक्ष्छन-लक्षण। सुजान प्रवीण। चतुर्दस चौदह विद्याएं। अंग षट-छः वेदांग शिक्षाए कलाए निरूए जयोतिषए सुंदर तथा व्याकरणद्ध। परमान प्रमाण। कीर-तोता। दिष्फय-दिखाई पड़ा। हुलास-उल्लास।

प्रसंग-प्रस्तुत दोहर चंदरबरदायी के प्रसिद्ध महाकाव्य पृथ्वीराज रासो के संर्ग श्पद्मावती समय से उद्धृत किया गया है। इसमें पद्मावती के रूप लावण्यए उसके अंगों की कमनीयता तथा उसकी क्रीडाओं का चित्रण किया गया है।

व्याख्या- इस दोहे में भी चंदबरदायी ने पूर्व के कवित्त की भांति पद्मावती के अंग-अंग के सौंदर्य का चित्रण किया है। कवि कहता है कि पद्मावती का रूप देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो ईश्वर ने कामदेव की पत्नी और सौंदर्य की देवी श्रति का ही उसके रूप में पुनसृजन किया है। मनुष्य की तो बात ही क्याए पद्मावती का सौंदर्य देखकर पशु ण्पक्षी तक सम्मोहित हो जाते हैं। पद्मावती का सौंदर्य मनुष्योंए देवताओं और ऋषि ण्मुनियों को इस तरह आकर्षित कर लेता है जैसे वह उन्हीं के लिए निर्मित कोई लुभावना फंदा हो। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार विवेचना करते हुए कवि ने उसके सुडौल और सुंदर अंगों को एक पद्मिनी स्त्री के गुणों के समतुल्य स्थापित किया है। पद्मावती चौसठ कलाओं में निष्णात है। वह शिक्षा कला निरुक्तए ज्योतिषए छंद आदि छह वेदांगों के अतिरिक्त चौदह विद्याओं की भी पूर्ण ज्ञाता है। बसंत में जिस प्रकार हर तरफ फूल अपनी सुषमा बिखेरते रहते हैं वैसे ही पद्मावती का रूप भी भासमान होता रहता है। वह कामदेव की पत्नी श्रतिश् के समान अनिंद्य सुंदरी है। सखियों के साथ राजमहल में क्रीडा ण्रत पद्मावती अपनी धुन में मग्न रहती है कि तभी उसे एक तोता दिखाई पड़ता है। तोते को देखक पद्मावती हर्षित हो उठती है।

विशेष-

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक तरफ पदमावती के रूप लावण्य का उसके अंगों में निहित शुभाशुन लक्षणों का वर्णन तो किया ही हैए साथ ही यह भी उद्धृत किया है कि यह चौसत कलाओं और चौदह विद्याओं की पारंगता है।

2. प्राचीन काल में चौसठ प्रकार की कलाओं में प्रवीण स्त्री ही पूर्ण स्त्री की मान्यता प्राप्त करती थी।

3. इस दोहे में उबेक्षाए ऐकानुप्रासए यमक तथा उपमा आदि अलंकारों का चित्रण हुआ है।

कवित्त

6. **मन अति भयौ हुलास बिगसि जनु कोक किरन रवि।**
अरून अधर तिय सघर विम्ब फस जानि कीर छवि।
यह चाहत चख चकृत उह जु तक्किय इरप्पि झट।
पंच चहुट्टिय लोभ लियौ तब गहित अप्प कर।
हरषत अनंद मन महि हुलस लै जु महल भीतर गई।
पंजर अनूप नग मनि जटिल सो तिहिं महं रप्पत भई।।9।।

शब्दार्थ- हुलास-प्रसन्नता। विर्गास खिलनाए विकसित होना। कोक-चकवा पक्षी कमल। अरून-लपलए लोहित। अघर-होंठ। तिय-उसका। सघर-सुंदर। चख-नेत्रों। तक्किय-ताकना। झरप्पि झपट कर। झट-शीघ। चंच-चोच। चहुंहिय-झपटना। गहित पकड़ना। पंजर-पिंजरा। नगमनि-हीरेमणि।

प्रसंग- यह कवित्त चंदबरदायी कृत पृथ्वीराज रासों के पद्मावती समय से उद्धृत किया गया है। पद्मावती ने उस तोते को पकड़ लिया है जो उसके होठों को बिम्ब फल समझ कर खाने के लिए झपट रहा था। अपनी इस सफलता पर नायिका के मन में हर्ष और उल्लास उमड़ पड़ा है। इसी हर्षोल्लास का चित्रण कवि का अभिप्रेत है।

व्याख्या- पद्मावती ने तोते को देखा तो उसका मन हर्षित हो उठा। वह इस प्रकार चहकने लगी मानो सूर्य की प्रथम किरणों का सुखद स्पर्श पाकर कमल खिल उठा हो। या कहें कि जिस प्रकार अपनी बिछुड़ी हुई प्रिया चकनी से मिलने के बाद कोई प्यासा चकवा रात को आनंद में मग्न होकर झूम उठा हो ऐसी ही दशा उस तोते को पकड़ने के बाद पद्मावती को हो रही थी। पद्मावती के सुंदर गुलाबी होंठों

को देखकर बेचारा तोता भ्रमित हो गया। उसे लगा कि ये रस भरे गुलाबी बिम्ब-फल है और उन्हें खाने के अधीर हरेका तोता उस पर झपट पड़ा। तोते को चकित और हर्षित होकर ताक रही पद्मावती को जब यह आभास होता है कि तोता उसके होठों को लक्ष्य कर झपट्टा मार रहा है तो वह अचानक सचेत हो जाती है और तुरंत तोते को अपने हाथों में पकड़ लेती है। तोते को इतनी आसानी से पकड़ पाने में आनंद में डूबी पद्मावती उसको लिए हुई राजमहल के अंदर चली गई और उसे रत्नों एवं मणियों से जडित एक सुंदर पिंजरे में डाल दिया।

विशेष-

1. नायिका के अधरों की तुलना बिम्ब फल के सौंदर्य से की गई है।
2. नायिका द्वारा तोते को पकड़नाए उसे पिंजरे में रखना एक प्रसिद्ध काव्य.रूढ़ि है।
3. राज परिवार के वैभव को दर्शाने के लिए ही कवि ने ऐसे पिंजरे की कल्पना की है जिसमें हीरेए नग और मोती माणिक जड़े हुए हैं
4. इस कवित्त में जिन अलंकारों का प्रयोग कवि द्वारा किया गया है, वे हैं, भ्रांतिमानए उत्प्रेक्षा और अनुप्रास।

7. **तिहि महल रष्षत भईए गई खेल सब भुल्ल ।**
चित्त चहुट्यो कीर सोंए राम पढ़ावत फुल्ल ।।10।।
कीट कुंवरि तन निरखि दिखिए नख सिख लौं यह रूप।
करता करी बनाय कैए पदामिनी सरूप ।।11।।

शब्दार्थ-तिहि-उसे तोते कोद्ध। भुल्ल भूल जाना। चहुंट्यो चिमट गया। कीर.तोता। फुल्ल-प्रफुल्लित होकरए प्रसन्न होकर। निरखि.देखकर। नख सिख-सिर से लेकर पांव तक की केश-राशि। रूप-सौंदर्य। करता.कर्ताए

विधाताए ब्रहमा। पदामिनी पदिमनी ;स्त्री के प्रकारद्ध। करी बनाया। कै-कर।

प्रसंग-पद्मावती को एकटक निहारता हुआ तोता सोच रहा है कि विधाता ने इतनी सुंदर नारी की सृष्टि क्यों की होगी।

व्याख्या- पद्मावती ने तोते को अपने महल में पिंजरे में रख लिया। रात.दिन वह उसी के साथ खेलने में निमग्न रहने लगी। अपने बालपन की संगी.सहेलियों के साथ खेले जाने वाले खेलों का उसे स्मरण नहीं रह गया था और अब वह रात-दिन उस तोते को राम-राम का पाठ पढ़ाने में जुट गई। वह तोते के पीछे ऐसे रम गई कि शेष जगत से बेसुध होकर रह गई। यही दशा उस तोते की थी तो पद्मावती के नखशिख सौंदर्य को अपलक निहारता हुआ सदस यही सोचता रहता था कि आखिर विधाता ब्रहमा ने किस प्रयोजन से एक नारी में सौंदर्य के चरम की सृष्टि कर दी है।

विशेष-

1. पद्मावती का तोते के प्रति व्यामोह में पड़ना और उसे राम-राम का पाठ पढ़ाना एक प्रचलित काव्य-रूढ़ि है।
2. पद्मावती के नखशिख रूप सौंदर्य पर मुग्ध होकर तोते द्वारा विधाता की प्रशंसा करना कवि की अपनी कल्पना है
3. काव्यशास्त्र के अनुसार स्त्री के चार प्रकार हैं पद्मिनी, शंखिनी, चित्रिणी और हस्तिनी। इन सभी स्त्रियों में पदिद्मनी को सर्वोच्चता का स्थान प्राप्त है।
4. इस कवित्त में अनुप्रास अलंकार का सुंदर प्रयोग दृष्टव्य है।

8. कुट्टिल केस सुर्वस पौहुम रचियत विक्क सद।
कमल गंध वय संघ हंस गति चलत मंद मंद।
लेत बरत्र सोही सरीर नख स्वाति बूंद जरा।
भमर भंवहि भुल्लहि सुभाव मकरंद बारा रस।
नैन निरखि पथ सदिन मूरति रचिय।

उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज प्रधिराज जिय।।12।।

शब्दार्थ-कुहिल-घुघराले। सुदेस-सुंदर। पौहुय-पुष्ण। पिक्क-कोमल। सद-शब्द। नष-नख, नाखून। सेत श्वेत धवल। भंवहि-भ्रमण करना। मुल्लहिं-भूलकर। हेरियत देखना। निरखि देखना। सदिन-शुन दिन।

प्रसंग-यह कवित्त पृथ्वीराज रासो के पद्मावती समय नामक सर्ग से उद्धृत किया गया है। जिसके रचयिता है महाकवि चंदबरदायी। इसमें कवि ने नायिका की बयः संधि तथा उसके सौंदर्य का चित्रण किया है।

व्याख्या-कवि के अनुसार पद्मावती के कैश घुंघराले और सुंदर हैं। उसने अपने केशों को फूलों से सजा लिया है। उसकी बाणी कोयल की वाणी की तरह मोहक और सुमधुर है। पद्मावती की बाल्यावस्था समाप्त हो रही है और यौवन उसके शरीर के अंगों में प्रकट होने लगा है। वयःसंधि की इस अवस्था के कारण उसके अंगों से कमल के रस जैसी भीनी.भीनी सुगंध आती है। उसकी चाल अब मादक हो चली है और वह एक हंस के समान मंद-मंद गति से चला करती है। उसके गौरवर्णी शरीर पर श्वेत वस्त्रों की शोभा देखते ही बनती है और इन वस्त्रों में उसका रूप.सौंदर्य और भी निखर उठता है। उसके नाखूनों को देखकर स्वाति नक्षत्र की बूंदों की प्रतीति होती है। पद्मावती के शरीर की यह वयःसंधि की अवस्था है और इस अवस्था में उसके शरीर की सुगंध से मंत्रमुग्ध होकर रस और सुगंध के लोभी भंवरे उसके इर्द.गिर्द चक्कर काटते रहते हैं। पद्मावती के ऐसे अप्रतिम रूप लावण्य को निहारता तोता मन ही मन में सोचता है कि अवश्य ही ईश्वर ने सौंदर्य की इस अलौकिक प्रतिमा को किसी शुभ घड़ी में सृजित किया होगा। तोते ने मन ही मन में यह कामना की कि यह सुंदर स्त्री पृथ्वीराज को पत्नी के रूप में प्राप्त हो तो कितना सुयोग होगा। अपनी इस कामना को चरितार्थ करने और भगवान शंकर तथा पार्वती की कृपा प्राप्त करने के लिए तोते ने प्रभु का स्मरण किया और उनकी मौन वंदना प्रारंभ कर दी।

विशेष-

1. इस कवित्त में पद्मावती के केश.सौंदर्य का चित्ताकर्षक वर्णन हुआ है।
2. कवि ने इस पद में नायिका पद्मावती की वयःसंधि और यौवनारंभ की अवस्था का सुंदर और सुरुचिपूर्ण चित्रण किया है।
3. कवि ने इस कल्पना के द्वारा अपनी अनूठी प्रतिभा का परिचय दिया है कि पद्मावती के यौवन की गंध को पाने के लिए भंवरे उसके इर्द-गिर्द चक्कर काट रहे हैं।
4. नायिका के गौरवर्णी शरीर की शोमा श्वेत वस्त्र धारण करने से बढ़ गई है।
5. इस कवित्त में कवि ने भ्रांतिमानए उपमा और अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग किया है।
6. इसमें कवि ने एक सरसए कोमल और मधुर भाषा की बानगी प्रस्तुत की है।

9. सुक समीप मन कुंवरि कोए लग्यो वचन के हेत।
अति विचित्र पंडित सुआए कथत जु कथा अनेत । ।13।।
पुच्छत बचन सु वाले उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये।
कवन नाम तुम देस कवन मंद करय राजा परवेश।।14।।
उच्चरिय कीर सुनि वचनं हिन्दवान दिल्ली गढ़ अयनं।
तहां इन्द्र अवतार चहुआनं तहं प्रथिराजह सूर सुमारं ।।15।।

शब्दार्थ- लग्यो-लगा। वचन के हेत-मीठी बातें सुनने को। पुच्छत-पूछती है। सुवाले सुंदर बालिका। उच्चरिय-बोलोए बताओ। सच्चाये सत्य कथन। कवन मंद-कौन इन्द्र। राजा परवेस राज्य करना। सुभारं-शक्तिशाली। अयनं-घर। वचनं-बचना। प्रथिराजह पृथ्वीराज ।

प्रसंग- प्रस्तुत्त कवित्त पृथ्वीराज रासो के श्पद्मावती समय नामक सर्ग से लिया गया है जिसके रचनाकार चंदबरदायी हैं। इसमें तोते के गुणों के साथ उन

प्रश्नों का उल्लेख है जिन्हें तोते को लक्ष्य कर पद्मावती ने पूछे हैं। ये प्रश्न ही इस कवित्त का वर्ण्य-विषय हैं।

व्याख्या- तोते की मीठी-मीठी बातें सुनते हुएए उससे संलाप करते हुए पद्मावती का मन पूर्णतः रम गया था। तोता बहुत विद्वान था और उसने पद्मावती के अनेकानेक सुंदर कथाएं सुनाई। उस सुंदर बालिका (पद्मावती) ने उस तोते से एक दिनद्ध पूछा कि हे शुक! तुम सच-सच बतलाना। तुम्हारे देश का नाम क्या है और वहां कौन-सा राजा राज्य करता है। तोते ने उत्तर में कहा कि हिंदुस्तान में में दिल्ली गढ़ एक स्थान है। वहां देवताओं के स्वामी इंद्र के समान महाप्रतापी और शूर-वीर राजा पृथ्वीराज चौहान का शासन है।

विशेष-

1. कवि ने कथा क्रम के विकास हेतु इस कवित्त की आयोजना की है।
2. तोते का विद्वान होना और उसके द्वारा कथा वाचन करना एक काव्य रूढ़ि है।
3. इसी कवित्त में पहली बार नायक का व्यक्तित्व उद्घाटित हुआ है।
4. इस कवित्त में कवि ने अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया है।
5.

10. पद्मावती कुवरी संघतए दुज कथा कहत सुनि-सुनि सुबत्त। ।16।।
हिंदवान ब्यान उत्तम सुदेसए तहं उदित दुग्य दिल्ली सुदेस ।।17।।
संभार नरेस चहुंआन भानए प्राभिराज तहां राजंत भान।।18।।

शब्दार्थ-संघत-साथ। सुबत्त-सुंदर कथाएं। उदित-प्रसिद्ध। दुग्य-दुर्ग। दुज-पक्षी। संभार–सांभर झील के आसपास का क्षेत्र। राजंत-शोभित। भान-सूर्य।

प्रसंग- प्रस्तुत कक्ति कवि चंदबरदायी रचित प्रसिद्ध ग्रंथ पृथ्वीराज रासी के 'पदभावनी समय सर्ग से उद्धत किया गया है। इसके अंतर्गत कवि ने पद्मावती ह जिज्ञासा का समाधान प्रस्तुत करते हुए तोते का चित्रण किया है।

व्याख्या- पद्मावती द्वारा जिज्ञासावश पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देते हुए सीता समीप आकर कहता है सुनो। मैं तुम्हें आज उस पृथ्वीराज की कथा सुनाता हूं। कथा सुनाने के क्रम में पृथ्वीराज की महिमा का बखान करते हुए तोता बताता है कि हिंदुस्तान एक सुंदर, मनोहर और प्रसिद्ध देश है। उसमें दिल्ली दुर्ग नाम का एक श्रेष्ठ स्थान है जो चौहान वंश के सामर राजाओं द्वारा शासित है। उसी सांगर वंश के सूर्य के समान महाप्रतापी राजा पृथ्वीराज यहां शोभायमान हो रहे हैं।

विशेष-

(1) यह एक सामान्य कवित्त है जिसमें कविता का कोई विशेष चमत्कार नहीं है।

(2) इसकी मुख्य भूमिका कथाक्रम को आगे बढ़ाने में है।

(3) कवित्त का वण्यं विषय पृथ्वीराज का राज्य विस्तार तथा उसकी शूरवीरता है।

(4) कवित्त में उपमा अलंकार आया है।

11. बैसह बरीस षेडस घेडस नरिंद,
अजानु बाहु भुअ लोक यंद।।19।।
संभरि नरेस सोमेस पूत,
देवंत रूप अवतार धूत।।20।।
सामंत सूर सब्बै अपार,
भूजान भीम जिम सार भारं ।।21।।
जिहि पकरि साह साहब लीन
तिहूं बेर करिय पानीप हीन।।22।।

शब्दार्थ- पैसह-वयस, आयु। बरीस वर्ष। षोडस-सोलह । नरिंद-नरेंद्र, राजा। आजानु-घुटनों तक लंबी। बाहु-भुजा। चंद-इंद्र। पूत-पुत्र। देवंत-देवतुल्य। घूमत-पराक्रमी। सब्बै-सब। भीम-भीषण, भयंकर। सार-लोहा। जिमि-जैसे। लीन-लिया। जिहि-जिसने। तिहुं-तीन। बेर-बार ।

प्रसंग- प्रस्तुत कवित्त महाकवि चंदबरदायी द्वारा रचित प्रसिद्ध काव्यकृति पृथ्वीराज रासो के 'पद्मावती समय नामक सर्ग से उद्धृत किया गया है। इसमें तोते के साथ पद्मावती के उस संवाद का वर्णन है। जिसके अंतर्गत नायक पृथ्वीराज के गुणों, उसकी वीरता और व्यक्तित्व का तोते द्वारा वाचन हुआ है।

व्याख्या- तोता पद्मावती को बताता है कि राजा पृथ्वीराज की आयु अभी सोलह वर्ष की है। उसकी भुजाएं घुटनों तक लंबी है और वह पृथ्वी पर उतना ही शक्तिशाली है जितने स्वर्गलोक में देवताओं के राजा इंद्र। पृथ्वीराज सांभर नरेश सोमेश्वर का पुत्र है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो साक्षात किसी देवपुरुष ने ही पृथ्वीराज के रूप में पृथ्वी पर अवतार लिया है। उसके सभी सामंत (योद्धा और मंत्रिगण) अपरिचित शक्ति से संपन्न है। स्वयं पृथ्वीराज की भुजाओं में भीम जैसा बल है। उसकी वीरता का पता इस बात से चलता है कि उसने शहाबुद्दीन गौरी को तीन बार युद्ध में पराजित कियाए बंदी बनाया और उसका सारा घमंड चकनाचूर कर उसे छोड़ दिया है।

विशेष -

1. इस कवित्त में पहली बार पृथ्वीराज की उम्र और उसके पिता का वर्णन हुआ है।
2. पृथ्वीराज के बाहुबल की भीम से तुलना की गई है।
3. पृथ्वीराज का आजानुबाहु अर्थात् घुटनों तक लंबी भुजाओं वाला होने का तात्पर्य यह निकलता है कि वह महाप्रतापी राजा है। ऐसी परंपरागत मान्यता रही है कि राजाओं की भुजाएं बहुत लंबी होती हैं।

4. कवि ने इस पद्यांश में उत्प्रेक्षाए उपमाए अनुप्रास आदि अलंकारों का सुंदर उपयोग किया है।

नायिका के मन में नायक के प्रति आसक्ति भाव उत्पन्न करने की कामना से तोते द्वारा नायक की वीरता का वर्णन एक प्रचलित काव्य-रूढ़ि है।

12. सिंगिनी सुसद्द चढ़ि जंजीरए चुक्कै न सबद बेधंत तीर।।23।।
बल बैन करन जिमि दान पानए खत सहस सील हरिचंद समान।।24।।
द्यद्य साहस सुक्रम विक्रम जु वीरए दानव सुमत अवतार धीर।।25।।
दिस च्यार जानि सब कला भूपए कंद्रप्प जानि अवतार रूप।।26।।

शब्दार्थ -सिंगिनी-धनुष की प्रत्यंचा। सुसद्ध-टंकारए प्रचंड ध्वनि। गुन-धनुष की प्रत्यंचा। बेधंत-वेध देती है। बल-राजा। बेन-एक दानी राजा। करन-कर्ण; महाभारत के चरित्रद्ध दस च्यार-चौदह। कंद्रप्प-कामदेवए कंदर्प।

प्रसंग -प्रस्तुत पद्यांश श्पृथ्वीराज रासोश् नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ के श्पद्मावती समय सर्ग से लिया गया है जिसके रचनाकार चंदबरदायी हैं। इसके अंतर्गत कवि ने तोते के मुख से काव्य नामक पृथ्वीराज की वीरताए उसकी युद्ध कला और शब्द.वेधी वाण चलाने की उसकी निपुणता का बखान करवाया है।

व्याख्या - तोता पद्मावती को बताता है कि पृथ्वीराज के धनुष की जंजीर (डोरी) की भयंकर टंकार दूर से ही पहचान में आ जाती है। वह शब्द.वेधी वाण चलाने में निपुण है और उसका निशाना कभी नहीं चूकता। शब्द -वेधी वाण चलाने में निष्णात होने के साथ ही पृथ्वीराज एक महान दानी पुरुष भी है। दानशीलता में वह राजा बलि चकवाबैन और दानवीर कर्ण से किसी भी तरह कम नहीं। सदाचरण एवं श्रेष्ठ कर्मों में उसकी तुलना केवल विक्रमादित्य से और सत्य का पालन करने में केवल सत्यवादी राजा हरिशचंद से ही की जा सकती

है। उसका बाहुबल इतना भयंकर है कि यह एक दैत्य जैसा प्रतीत होता है। चौदह विद्याओं का ज्ञाता पृथ्वीराज इतना सुंदर है गाने सक्षात कामदेव ने पृथ्वीराज के रूप में जन्म ग्रहण किया हो।

विशेष -

1. कवि ने इस ऐतिहासिक तथ्य का स्मरण कराया है कि पृथ्वीराज शब्दवेधी याण चलाने में निपुर्ण थे।
2. प्राचीन-चौदह विद्याओं में धनुर्विद्या का एक प्रमुख स्थान है।
3. पृथ्वीराज एक पराक्रमी योद्धा तो है हीए इसके साथ.साथ वह सत्यवादीए सुशीलए सदाचारी और दानवीर भी है। उसके मानवीय गुणों का पद्मावती के समक्ष तोते द्वारा उद्घाटन हुआ है।
4. नायिका के सामने पक्षी; तोते द्वारा नायक के गुण कथन में काव्य रूढ़ि है।
5. पद्यांश में कवि ने अनुप्रासए उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुंदर उपयोग किया है।

13. **कामदेव अवतरित हुआए सुअ सोमेसर नंद।**
सहस किरन झलमल कमलए रिति समीप वर विंद।।27।।
सुनत श्रवन पृथिराज जसए उमग बाल विधि अंग।
तन मन चित चहुंआन परए बहयो सु सत्तह रंग।।28।।
बेस विती ससि ता सकलए आगम कियो बसंत ।।
मात पिता चिंता भईए सोधि जुगति कौ कंत।।29।।

शब्दार्थ - सुअ -सुतए पुत्र। नंद-राजा। सहस करन-सूर्य। रित-रति।विंद -पति।

प्रसंग -यह दोहा कविवर चंदबरदायी रचित 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती' समय सर्ग से लिया गया है। जिसमें तोते द्वारा पद्मावती के समक्ष पृथ्वीराज के बारे में बताया जा रहा है।

व्याख्या - राजा सोमेश्वर का पुत्र; पृथ्वीराज इतना सुंदर है मानो साक्षात कामदेव ने मानव रूप धरा हो। वह सूर्य की किरणों सदृश आभामय है। सूर्य की किरणे जिस प्रकार कमलों को प्रस्फुटित कर देती हैं वैसे ही पृथ्वीराज जैसे तेजस्वी राजा को पाकर उसकी प्रजा प्रफुल्लित हो उठी है। रति के समीप बैठकर सुरुचिपूर्ण बातचीत करने में पृथ्वीराज कामदेव के समान निपुण है। कवि कहता है कि तोते के मुख से पृथ्वीराज के गुणों का बखान सुन कर पद्मावती का रोम.रोम आनंद प्लावित होने लगता है और उसका मन तथा आत्मा पृथ्वीराज के प्रति प्रेमासक्त होने लगती है। पृथ्वीराज उसके मन प्राण में गहरे उतर जाता है। पद्मावती का बाल्यकाल बीत रहा है और उसके युवती होते जाने के साथ ही माता.पिता की चिंताएं बढ़ने लगी हैं। उन्हें उसके लिए किसी सुयोग्य वर की तलाश अब करनी ही होगीक्त आकर्षण बी सुष्टि हो

विशेष-

1. पद्यांश में पृथ्वीराज की सुंदरता और तेज का प्रभावोत्पादक चित्रण हुआ है।
2. पद्मावती के मन में पृथ्वीराज के प्रति प्रमासक्ति प्रस्फुटिट हुई है।
3. पद्मावती के रोमांच आदि मनोवेगों का कवि ने सूक्ष्म निरूपण किया है।
4. कन्या के जवान होने से माता-पिता की चिंता बढ़ने का सहज वर्णन हुआ है।
5. कवि ने यहां अनुप्रास तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का सुंदर और सहज प्रयोग किया है।

14. **सोधि जगत का कंत कियों तब चित्त चहों दिस।**
लयौ विप्र गुर बोल कही समझाय बात तरू।
नर नरिंद नरपती बड़े गढ़ द्वग्य असेसह ।

सीलवंत कुल सुद्ध देहु कन्या सु नरेसह।

तद चलन देहु पुज्जह लगन लगुन बंद दिय अप्ए तन।

आजंद उछाह समुदह सिपर बजत नह नीसान धन।

शब्दार्थ- सोधि-शोध करनाए ढूंढ़ना। चहुंरिस चारों दिशाओं में। असेसह-अशेषए संपूर्ण शक्तिशाली। नरेसह नरेश को। पुज्जह-पूजा। लगन-विवाह-संस्कार। वंदन-वंदना। अप्पतन स्वयं। नीसान-नगाड़े। नह-नादए ध्वनि। धन-मेघए घने। उछाह-उमंगए उत्साह ।

प्रसंग- प्रस्तुत कवित्त चंदबरदायी रचित 'पृथ्वीराज रासो के पद्मावती समय से उद्धृत किया गया है। इसमें पद्मावती की युवावस्था से चिंतित पिता द्वारा पुरोहित से यह प्रार्थना की गई है कि वे उसके लिए किसी सुयोग्य वर की तलाश करें।

व्याख्या - पद्मावती के माता - पिता का चित्र चंचल हो रहा है और चारों दिशाओं में वे किसी ऐसे राजा की खोज करते हैं जिससे पद्मावती का विवाह कराया जा सके। उनकी चिंता का सबसे प्रमुख विषय यह है कि भला कौन राजा उनकी पुत्री के सुयोग्य वर हो सकता है। भली प्रकार से सारी संभावनाओं पर विचार और चिंतन.मनन कर लेने के उपरांत उन्होंने पुरोहित को बुलावा भेजा और उन्हें संबोधित करते हुए कहा हे पुरोहित प्रवर। जो सब राजाओं का स्वामी होए जिसके अधीन बड़े - बड़े दुर्ग और गढ़ होंए जो अपनी जनता का सर्वप्रिय पात्र होए ऊंचे कुल के ऐसे किसी सच्चरित्र व्यक्ति से हमारी योग्य पुत्री का संबंध स्थापित कर दो। पुरोहित की इस भांति सेवा.सत्कार और पूजा - अर्चना करने के पश्चात् राजा विजयपाल ने उन्हें लग्न की समस्त सामग्री देकर विदा किया और शुभ शकुनों को मन में उचारते हुए यह कामना की कि इस महान उद्देश्य में पुरोहित जी संपूर्ण रूप से सफल हों। पद्मावती के संबंध में इस सूचना के प्रसारित होते ही समूचे समुद्र शिखर प्रदेश में हर्ष

की लहर दौड़ पड़ी और वहां नगाड़ों के वादन से ऐसे भयंकर ध्वनि उत्पन्न हो रही थी मानो सैंकड़ों बादल एक साथ गरज रहे हों।

विशेष-

1. इस कवित में पुत्री के युवा होने पर माता-पिता की सिता उल्ललाह आदि भावनाओं का कति ने स्वाभाविक चित्रण करने में सफलता पाई है।
2. कवि ने स्पष्ट किया है कि अपनी पुत्री के लिए माता-पिता जिरा वर की कथना करते हैं उसमें शूरवीरता, सदाचारिता और मानवीय गुणों का समावेश देखना चाहते हैं।
3. नगर में उत्साह की लहर दौड़ने और नगाड़ों के बजने की बात से एक उत्सवी वातावरण का सूजन हुआ है।
4. कवि ने भाव के अनुसार माषा का प्रयोग किया है और उसमें अनुप्रास अलंकार की छटा भर दी है।

दोहा

15. सवा लष्ण उत्तर सचल, कमऊ गढ़ दूरंग।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय दिव्य अभंग।। 31 **।।**
नारिकेलि फल परठि दुज, चौक पूरि मनि मुत्ति।
दई जु कन्या। बचन वर, अति अनंद करि जुति।।32**।।**

शब्दार्थ- सदा लष्ण-शिवालिक पर्वत श्रेणी। सचल शैलं, पर्वत। कमऊ-कुमायूं। हय-घोड़े। गय-हाथी। द्रव्य वैभव, धन। अभंग अशेष, अपरिमिति। परठि-स्थापित करना। दुज-ब्राहमण। चौक पूरि-चौक पूरना, स्थान तैयार करना। मनि-मणियां। मुत्ति-मोती। जुत्ति-युक्ति।

प्रसंग- प्रस्तुत दोहों को महाकवि चंदबरदायी रचित 'पृथ्वीराज रासों महाकाव्य के 'पद्मावती समय सर्ग से उद्धृत किया गया है। राजा विजयपाल द्वारा पुत्री के सुयोग्य वर ढूंढने के प्रयोजन से भेजे गए राजपुरोहित द्वारा जिस वर की खोज की गई है इस पद्यांश में उसीका विवरण है।

व्याख्या- राजपुरोहित अपने भ्रमण के क्रम में हिमालय के अंतर्गत शिवालिक की पर्वत श्रृंखलाओं में कुमायूं नाम के एक दुर्ग में पहुंचे जहां उन्हें अनगिनत हाथी और घोड़ों से युक्त अपार वैभव का स्वामी कुमोदमणि नाम का राजा मिला। वहां पहुंचकर राजपुरोहित द्वारा मणियों एवं मोतियों से चौक पूर कर (घर के आंगन को हीरे मोतियों से भर कर) तथा हर्षातिरेक के साथ राजा कुमोदमणि के साथ विधि-विधान से पद्मावती की सगाई का अनुष्ठान कर दिया गया।

विशेष-

1. कुमोदमणि के राज्य की भौगोलिक अवस्थिति का वर्णन किया गया है।
2. उन मांगलिक अनुष्ठानों की चर्चा की गई हो जो सगाई के लिए निश्चित है।
3. कवि ने वर्ण-विषय में अनुकूल भाषा की आयोजना की है।
4.

भुजंगप्रपात

16. **बिहसित बरं लगन लिन्नौ नरिंद,**
बजी द्वार द्वारं सु आनंद दुंद।।33।।
गढ़न गढ़ पत्ति सब बोलि नुत्ते,
सबं आइयं भूप कुटंब सिजुत्ते ।।34।।
चले दस सहस्सं असव्वार जानं,
पूरियं पैदलं तेतीस थानं ।।35।।

शब्दार्थ- बिहसत-हंसते हुए। लिन्नौ-लिया, स्वीकार किया। नरिंद-नरेंद राजा। बुंदं-दुंदुभि, बाजा। नुत्ते-निमंत्रित । कुटंब कुटुंब, संबंधी। सजुत्ते-सहित। पूरियं-भर गए। सहस्यं सहस्त्र। जानं स्थान ।

प्रसंग- ये पद्यांश महाकवि चंदबरदायी रचित पृथ्वीराज रासों के पद्मावती समय से उद्धृत किए गए है। राजा विजयपाल की पुत्री पद्मावती की सगाई के अवसर पर छाए हर्ष उल्लास का इसमें चित्रण हुआ है।

व्याख्या- राजा कुमोदमणि ने प्रसन्नचित्त होकर राजपुरोहित के सगाई प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया अर्थात् सगाई का तिलक ग्रहण कर लिया। घर-घर में खुशियों के वाद्य बजने लगे। उसने (कुमोदमणि ने) विवाह समारोह में आने के लिए सभी गणपतियों (राजाओं) को न्योता भेजा तथा विवाह का निमंत्रण स्वीकार करते हुए वे सभी राजा वहां बंधु-बांधवों के साथ उपस्थित हुए। दस हजार घुड़सवारों वाली इस बारात में पैदल सैनिक भी शामिल थे जो तैंतीस डेरों में पड़ाव डालते हुए साथ चल रहे थे।

विशेष-

1. राजा कुमोदमणि द्वारा सगाई को विधिपूर्वक स्वीकृति देने का वर्णन हुआ है।
2. पद्यांश में कवि ने पुनरूक्ति और छेकानुप्रास अलंकार का सुदर प्रयोग किया है।
3. नगर में हर्ष उल्लास के वातावरण का चित्रण है।
4. कथाप्रवाह को बनाए रखने में इन पद्यांशों की भूमिका है।

17. **मंद गल्लितं मत्रं सै पंच दंती**
मनो साम पाहार बुग पंति पंती।।36।।
चलै अग्गि तेजी जु तत्ते तुखारं
चौबरं चौरासी जु साकत्ति भारं ।।37।।
नगं कंठ नूपं अनूपं सु लालं,
रंगं पंच रंगं ढलक्कंत ढालं ।।38||

शब्दार्थ- मदं-हाथियों के मस्तक पर बहने वाला जख्म। गल्लितं-बिखर रहा था। दंत-हाथी। मनो-मानो। साम-श्याम, काला। पाहार-पर्वत, पहाड़। बुगपंति पंती-बगुलों

की पंक्ति। तत्ते-तीव। तुखारं-घोडे। चौबर कलगी। चौरासी-घोड़ों के गले की माला। साकत्ति-शक्ति। नगं हीरे। अनूपं अनूठे। ढलक्कंत-हिलना।

प्रसंग- ये पद्य चंदबरदायी कृत पृथ्वीराज रासों' के 'पद्मावती समय सर्ग से उद्धृत किए गए हैं। इनमें पद्मावती के बारातियों का वर्णन है।

व्याख्या- पद्मावती की बारात में पांच सौ हाथियों का विशाल झुंड चल रहा था जिनके मस्तक से मद टपक रहा था। उनके चलने से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वे काले-काले मेघ अथवा पहाड हों जिनके ऊपर बगुलों की कतारें उड़ रही हों। बारात के आगे तेज गति से दौडने वाले घोड़े जब दौड़ते थे तो उनके सिरों पर बंधी हुई कलगी तथा गर्दनों में घुंघरुओं की माला की शोभा देखते ही बनती थी। ये घोड़े बहुत शक्तिशाली थे। घोडों की गर्दनों में हीरे मणिक जड़ी अनूठी कंठियां थीं और उनकी पीठ पर पंचरंगी ढाल जो लोहे से बनी थी. उनके चलने पर लगातार हिलती जाती थी।

विशेष-

1. बारात के साथ चल रही राजा की पैदल सेना, अश्व सेना और गज सेना का सजीव वर्णन किया गया है।
2. घोड़ों की सजावट का वर्णन काफी प्रभावशाली है।
3. पद्यांश में जिन अलंकारों का प्रयोग हुआ है वे हैं उत्प्रेक्षा और अनुप्रास ।

18. **सुरं पंच साबद्ध वाजित्र बाजं,**
सहस्सं सहनाय थमृग मोहि राजं ।।3911
समुद्र सिर सिखर उच्छाह छाहं
रंचित मढएं तारनं श्रीयगाहं ।।40।।
पदमावती विलखि कर बाल बेली
कही कीर सौं बाल तब होइ केली। ।41।।
झटं जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं,
बरं चाहुआनं जु आनौ नरेसं ।।42।।

शब्दार्थ- वाजित्र-बाजे । वाजं बजने लगे। पंच-पांच प्रकार के वाद्य यंत्र। सहनाय-शहनाई। छांह-छा गया था। तोरन-बंदनवार। श्रीयगाहं-अत्यधिक शोभित। बाल-बेली-अर्द्धविकसित लता, युवती । विलषि-व्याकुल होकर। आनौ-ले आओ।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यांश महाकवि चंदबरदायी रचित 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय' सर्ग से लिया गया है। प्रथम दो छंद पद्मावती की बारात में बजने वाले वाद्ययंत्रों की ध्वनि का और अंतिम दो छंद राजकुमारी की आतुरता और व्यग्रता का आभास कराते हैं। पद्मावती द्वारा तोते को पृथ्वीराज के पास भेजने की चर्चा भी आई है।

व्याख्या- पद्मावती की बारात में पांच प्रकार के वाद्य यंत्र बजाए जा रहे थे। प्रत्येक मांगलिक अवसर पर संगीत वाद्यों के बजने को बहुत शुभ माना जाता है। यहां भी हजारों शहनाइयां बज रही थी जिनकी सुमधुर ध्वनि को सुनकर हिरण भी मुग्ध हो रहे थे। समुद्र शिखर नगर में उत्साह और आनंद का वातावरण पसरा था। चारों ओर सुंदर-सुंदर मंडप बनाए गए थे और बंदनवारों की शोभा तो देखते ही बनती थी। (अपनी इच्छा के सर्वथा विपरीत किसी अन्य राजा के बारात के आगमन के विषय में जानकर) पद्मावती ने एकांत में जाकर तोते से एक नई और सुकोमल लता की भांति व्याकुल अधीर स्वर में कहा कि हे शुक! तुम शीघ्र ही दिल्ली चले जाओ और उस श्रेष्ठ तथा महाप्रतापी राजा पृथ्वीराज को सारा हाल बताकर उन्हें मेरे पास ले जाओ।

विशेष-

1. बारात के आगमन की बेला में नगर में छाए उल्लास के वातावरण का मनोरम चित्रण हुआ है।
2. शहनाइयों की ध्वनि और बंदनवारों की शोभा से विवाहेत्सव का चित्र खींचा गया है।
3. पद्य में पद्मावती की चिंता, आतुरता एवं व्यग्रता का सहज-स्वाभाविक चित्रण करने में कवि को सफलता प्राप्त हुई है।

4. तोते का प्रेमिका का संदेशवाहक बनना लोक प्रचलित काव्य-रूढ़ि है जिसका चंदबरदायी ने समयोचित और सुंदर उपयोग किया है।
5. पद्यांश की भाषा सहज, बोधगम्य, मुहावरेदार और प्रभावशाली है।
6. इसमें कवि द्वारा लुप्तोमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
7.

दोहा

19. **आनों तुम चहुंआन वर, अरू कहि इहै संदेस।।**
सां सरीरहि जो रहे, प्रिय प्रथिराज नरेस।।43।।

शब्दार्थ- अरू-और। इहे-यह।

प्रसंग- प्रस्तुत दोहा महाकवि चंदबरदायी रचित 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय सर्ग से लिया गया है। इसमें उस संदेश का वर्णन है जो पद्मावती तोते को संदेशवाहक बनाकर पृथ्वीराज को भेजना चाहती है।

व्याख्या- पद्मावती कहती है कि हे शुक। तुम किसी तरह पृथ्वीराज चौहान को यहां ले आओ। उनसे मेरा यह संदेश भी कह देना कि जब तक इस शरीर में प्राण रहेंगे तब तक राजा पृथ्वीराज ही मेरे प्रियतम बन रहेंगे। पृथ्वीराज को छोड़कर मैं किसी और पुरुष का वरण कभी नहीं करूंगी।

विशेष-

1. दोहे में पद्मावती के दृढ़ संकल्प और उसके प्रेम की गहराई का चित्रण हुआ है।
2. तोते के द्वारा संदेश भेजना एक लोक प्रचलित काव्य रूढ़ि है जिसका समयानुसार कवि ने उपयोग किया है।
3. यह दोहा काव्य-सौष्ठव प्रदर्शित करने के प्रयोजन से नहीं लिखा गया है बल्कि कथाक्रम को आगे बढ़ाना इसका अभीष्ट है।

कवित्त

20. प्रिय प्रशराज नरेस जोग लिखि कागर दिन्नौं।
लगुन वरन शषि सरब दिन्न द्वादस ससि लिन्नौं।
से अरू ग्यारह तीस साप संवत परमानह।
जोबिन्नी कुल सुद्ध बरनि वर रणटु प्रानह।
दिश्चंत दिष्ट उच्चारिय बर इकः पलक विलंब न करिय।
अलगार दिष्ट दिन पंच महि ज्यों रूकमनि कन्हर बरिय।।44।।

शब्दार्थ- जोग-यथायोग्य। कम्मर कागज। दिन्नौ दिया। लान करन-ला वर्ष राशि रुचि बनाकर । द्वादस ससि-शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि। साप सर्व राशि संत परमानह-प्रमाणित प्रानह-प्राणों की। राम-रका करो। जो बिन्नी अत्रिय कन्या। अलगार-गुप्त रूप से। महि-में। कन्हर-कृष्ण, कान्हा। वरिय-वरण किया। दिष्ट-भाग्य। पलक क्षण।

प्रसंग- उपरीका कवित्त महाकवि चंदबरदायी रचित सुप्रसिद्ध महाकाव्य पृथ्वीराज रासी के पद्मावती समय सर्ग से उद्धृत किया गया है। इसमें तोते को पृथ्वीराज को सुनाने के लिए संदेश दिए जा रहे हैं।

व्याख्या- पद्मावती ने संदेशवाहक तोते को देने के लिए पृथ्वीराज के माम अपना पत्र लिख लिया। उसने अपनी इस व्यथा का उल्लेख किया कि उसकी इच्छा के विरुद्ध 1130 शक संवत में (इसी वर्ष) इसी महीने की शुल्क पक्ष की द्वादसी तिथि को किसी अन्य राजा के साथ उसका विवाह करने का आयोजन हो रहा है। यदि आपकी दृष्टि में मैं साथ विवाह हूं तो मेरे ऊचें कुल की एक पवित्र कन्या रक्षा करें। आप पांच दिनों कर मेरी प्राण के भीतर यहां आकर उसी प्रकार वीरतापूर्वक मेरा अपहरण करें जिस प्रकार भगवान कृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर उसका सम्मान बचाया था।

विशेष-

1. कवि ने पद्मावती से संबंधित तथ्यों का सरल भाषा में वर्णन किया है।
2. कवि ने अपना इच्छित वर पाने की नायिका की अभिलाषा का स्वर दिया है।

3. इस कवित्त में दृष्टांत अलंकार का प्रयोग हुआ है।

'स्व-प्रगति परीक्षण

1. चंदबरदाई.....कवि थे।
2. .....इनकी रचना थी।
3. पृथ्वीराज रासो में महान योद्धा.....के चरित्र का वर्णन है।
4. पृथ्वीराज रासो का नायक.....है।
5. पृथ्वीराज रासो की रचना में लगभग.....छन्दों का प्रयोग किया गया है

1.7 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रमान्तर्गत आदिकालीन कवि चंदबरदाई के जीवन-परिचय एवं उनके द्वारा प्रणीत पृथ्वीराज रासो के विषय में विस्तृत अध्ययन किया। इस इकाई की सामग्री के अध्ययन के पश्चात् आप पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता, शृंगार-वर्णन, रस-निरूपण, से भली-भांति परिचित हो चुके होंगे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है पृथ्वीराज रासो पिंगल शैली में लिखा गया है। यह। ब्रजभाषा का वह रूप है जिसमें राजस्थानी बोलियों का मिश्रण है। कवि ने तत्कालीन सभी प्रचलित शब्दों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया है। शब्द-चयन रसानुकूल है, अतः वीर रस चित्रणों में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। जहां तक नाषा की शक्ति का प्रश्न है, कवि ने अभिधेय भाषा को भी पर्याप्त प्रभावशाली रूप दिया। लाक्षणिक तथा ध्वन्यात्मक शब्दावली ने भी प्रायः भाषा-सौन्दर्य की वृद्धि की है। लंकारों का चंदबरदायी ने सहज प्रयोग किया है। लगभग 68 प्रकार के छन्दों में नखा गया यह महाकाव्य सभी दृष्टियों से आदिकाल की एक श्रेष्ठ कृति सिद्ध होती है।

1.8 मुख्य शब्द

* कुटिल- छल-कपट से युक्त
* केश- बाल
* प्रामाणिक- जिसका प्रमाण दिया जा सके
* शुक- तोता
* शिखर- चोटी

1.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. आदिकालीन
2. पृथ्वीराज रासो
3. पृथ्वीराज चौहान
4. पृथ्वीराज चौहान
5. 67

1.10 संदर्भ सूची

1. **कपूर, श्याम चंद्र.** (2020). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन
2. **राय, बाबू गुलाब.** (2020). *हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास.* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल.
3. **शुक्ल, आचार्य रामचंद्र.** (2021). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन.
4. **सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद.** (2022). *हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि.* श्री विनोद पुस्तक मंदिर.

1.11 अभ्यास प्रश्न

1. चंदबरदायी का जीवनवृत्त लिखिए।
2. पृथ्वीराज रासो की रस-योजना पर प्रकाश डालिए।

3. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता सिद्ध कीजिए।
4. पद्मावती-समय की कथावस्तु लिखिए।
5. पद्मावती समय का काव्य-सौन्दर्य अनूठा है सिद्ध कीजिए।
6. रासो काव्य परम्परा में पृथ्वीराज रासो का स्थान निर्धारित कीजिए।
7. पृथ्वीराज रासो का महाकाव्यत्व स्पष्ट कीजिए।
8. पृथ्वीराज रासो के काल-निर्णय पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

इकाई - 2

विद्यापति

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विद्यापति का जीवनवृत्त

2.4 विद्यापति के पदों की व्याख्या

2.5 सार संक्षेप

2.6 मुख्य शब्द

2.7 संदर्भ सूची

2.8 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस द्वितीय इकाई में हिन्दी साहित्य के इतिहास के द्वितीय चरण भक्तिकाल के विषय में तथा विद्यापति एवं उनकी रचनाओं के विषय में बताया गया है।

मैथिल कोकिल विद्यापति हिन्दी के उस आरम्भिक युग के कवि हैं जबकि साहित्य रचना के क्षेत्र में संस्कृतए प्राकृत एवं अपभ्रंश का बोलबाला था और विचारी लोक भाषाएं ग्रामीण जनता तक ही सीमित रह जाती थीं। उस समय वही कवि समाज में आवृत होता था जो संस्कृत प्राकृत या अपभ्रंश में रचना करता था इसी कारण विद्यापति ने अपनी कई रचनाएं संस्कृत एवं अपभ्रंश भाषा में ही लिखी है। हिन्दी में विद्यापति की प्रसिद्धि का कारण उनकी पदावली हैए जिसमें बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक के भिन्न-भिन्न अवसरों पर लोक भाषा में लिखे गए उनके पदों एवं गीतों का संकलन किया गया है। यह गीत वास्तव में तत्कालीन हिन्दी भाषा के श्रृंगार है तथा हिन्दी की गीतिकाव्य परम्परा के प्रवर्तक हैं।

हिन्दी में विद्यापति जिस विचारधारा को लेकर अपनी पदावली की रचना में प्रवृत्त हुए हैं वह गीतिकाव्य की आदि सर्जना है। विद्यापति की पदावली का सौन्दर्य कलापक्ष की दृष्टि से सबसे अधिक सशक्त एवं सक्षम जान पड़ता है।

2.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत भक्तिकाल से परिचित हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन कवि विद्यापति के विषय में अपना ज्ञानवर्धन कर सकेंगे।
- भक्तिकालीन काव्य परंपरा में विद्यापति का स्थान निर्धारित कर सकेंगे।
- भक्तिकालीन भक्तकवि है अथवा श्रृंगारी इस तथ्य को जान सकेंगे।
- विद्यापति के सौन्दर्य चित्रण का रसपान कर सकेंगे।

2.3 विद्यापति का जीवनवृत्त एवं कृतित्व

विद्यापति के जन्म समय के बारे में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी ने विद्यापति का जन्मकाल सन् 1350 डॉ. बाबूराम सक्सेना ने सन् 1357 श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त ने सन् 1538 डॉ. आनंद प्रकाश ने सन् 1361 ई. माना है। अतः इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनका जन्म बिहार के दरभंगा जिले की उत्तर दिशा में स्थित कमतोल रेलवे स्टेशन के निकट विसपी नामक गांव में सन् 1350 और 1361 के बीच में हुआ था। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर तथा माता का नाम गंगा देवी था। उनकी पत्नी का नाम चन्दन देवी था और तीन पुत्रों के नाम वाचस्पति ठाकुर हरपति ठाकुर तथा नरपति ठाकुर और उनकी पुत्री का नाम दुल्लहि था। उनके गुरू का नाम हरिमिश्र था।

विद्यापति ने बाल्यावस्था में ही पिता के साथ राजदरबार में आना आरंभ कर दिया था। इन्होंने कीर्तिसिंह देवसिंह शिवसिंह पद्मसिंह भावसिंह हरिसिंह

आदि राजाओं के आश्रय में रहकर काव्य रचना की। इन्होंने राजा शिवसिंह के शासन.काल में नौ वर्ष तक विशेष सम्मान प्राप्त किया। यह काननान कर कहा जाता है। एक बार उन्होंने राजा शिवसिंह को न केवल मुस्लिम शासक की कैद से मुक्त कराया बल्कि उनका जुर्माना भी माफ कराया। विद्यापति की काव्य प्रतिमा को देखते हुए उन्हें अनेक सम्मानों एवं उपाधियों से विभूषित किया गया। उन्हें अभिनय जयदेव कविरंजन कवि शेखर राजपंडित आदि उपाधियां प्रदान की गई। उन्होंने अपने बदलते हुए आश्रयदाताओं की इच्छानुसार विविध विषयों पर काव्य रचना की। यद्यपि उनके काव्य में श्रृंगरिकता की प्रधानता है जिसके कारण उन्हें श्रृंगारी कवि घोषित किया जाता है परंतु उन्होंने जीवन के अंतिम दिनों में भक्तिपरक पदों की रचना की।

ऐसा माना जाता है कि मृत्यु के समय वे सिमरिया घाट पर गंगातट की और चल पड़े। जब उनकी पालकी बरौनी पहुंची तो उन्होंने पालकी रुकवा दी। उन्होंने कहा कि जिस गंगा के लिए मैं इतनी दूर से यहां आया हूंए क्या वह मेरे मोक्ष के लिए डेढ़ दो कोस इघर नहीं आ सकती। उसी रात गंगा नदी में बाढ़ आई और अगली सुबह गंगा.तीर पर सन् 1450 ई. में उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

रचनाएं - विद्यापति ने अपने जीवन में अनेक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने सर्वाधिक ग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में की है। उनके संस्कृत भाषा में रचे ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है-

1. भूपरिक्रमा
2. पुरुष परीक्षा
3. लिखनावली
4. शैव सर्वस्वसार
5. गंगा वाक्यावली
6. विभासागर
7. वर्षकश्ल्य
8. दान वाक्यावली
9. गयापत्तलक
10. दुर्गाभक्ति तरंगिणी
11. प्रमाण भूत पुराण संग्रह
12. गोरक्ष विजय

हिन्दी संस्कृत में रचित एकांकी -

विद्यापति ने अवहट्ट्ठ भाषा में दो ग्रंथों की रचना

1. कीर्तिलता
2. कीर्तिपताका

परंतु हिन्दी साहित्य में विद्यापति का नाम अमर करने वाली उनकी कृति **मैथिलीं** में रचित शब्दावली है।

पदावली का संक्षिप्त परिचय- वस्तुतः पदावली में विद्यापति द्वारा समय-समय पर रचित फुटकर पदों का संग्रह किया गया है। इनमें कुल 945 पद है। इन पदों को वर्ण्य-विषय के आधार पर तीन वर्गों में बांटा जा सकता है श्रृंगारपरक पदए भक्तिपरक पद तथा अन्य विषयों एवं मिथिला के लोक जीवन पर आधारित पद। उन्होंने श्रृंगार पदों में मुख्य रूप से राधा व श्रीकृष्ण के युगलरूप को आधार बनाया है जो कि ईश्वर के अवतार के रूप में नहींए बल्कि भोग विलास व काम.क्रीड़ा में तीन सामान्य पुरुष व नारी के रूप में चित्रित हुए हैं। भक्तिपरक पदों में उन्होंने शिवए पार्वतीए गंगा आदि के प्रति अपनी भक्ति भावना को प्रकट किया है उनके सभी पदों में गीतों की सरसता कम नियता व स्वर माधुरी के दर्शन होते हैं इन पदों में उन्होंने मैथिली भाषा का प्रयोग किया है।

निम्नलिखित पद्मों की व्याख्या-

विद्यापति

(1)

नव वृन्दावन नव-नव तरुगण
नव-नव विकसित फूल ।
नवल वसन्त नवल मलयानिल
मातल नव अलिकूल ।।
बिहरइ नवल किशोर ।
कालिन्दि-पुलिन कुञ्ज नव शोभन
नव-नव प्रेम-विभोर ।।
नवल रसाल-मुकुल-मधु-मातल
नव कोकिल-कुल गाब।

नवयुवतीगण चित उमताएल

नव रसें कानन धाब ।।

नव युवराज नवल नव नागरि

मीलए नव-नव भाँति ।

नित-नित अइसन नव-नव खेलन

विद्यापति मति माति ।।

व्याख्या- (वसन्त ऋतु होने के कारण) नये वृन्दावन के नये-नये पेड़ों में नये-नये फूल खिले हैं। रंगीली वसन्त ऋतु है। सुन्दर दक्षिण-पवन बह रहा है। भौरों का नया समूह मतवाला हो गया है। यमुना-तट पर शोभा सम्पन्न कुञ्जवन में नये-नये प्रेम में मग्न होकर श्रीकृष्ण विहार कर कर रहे हैं। आम्र की नई मंजरियों के मधु से मतवाले कोकिलों का नया समूह गा रहा है। नई-नवेली युवतियों का मन पागल हो गया। (वे) नई उमंग से (अर्थात् नई उमंग में भरकर) जंगल को दौड़ चलीं। युवराज श्रीकृष्ण नये हैं। सुन्दरियाँ भी नई-नवेली हैं। (इसीलिए वे) नई-नई रीति से (आपस मे) मिल रहे हैं। प्रतिदिन ऐसे ही नये-नये खेल हो रहे हैं, ;जिन्हें देख-देखकर) विद्यापति का मन मतवाला हो रहा है।

माधव ! बहुत मिनति करु तोड़।

(2)

देई तुलसी-तिल देह समर्पल

दया जनु छाड़बि मोड़ ।।

गनइते दोष गुण-लेश न पाओब

जब तुहुँ करब विचार ।

तुहुँ जगन्नाथ जगते कहा ओसि

जग-बाहर मोहि न छाड़ ।।

की मानुख-पशु-पाखिअ जनमिअ

अथवा कीट-पतङ्ग।

करम-विपाके गतागत पुन-पुन

मति रहु तुअ परसङ्ग ।।

भनइ विद्यापति अतिशय कातर

तरइते इह भव-सिन्धु ।

तुअ पद-पल्लव करि अवलम्बन

तिल एक देह दीनबन्धु ।।

व्याख्या - हे कृष्ण ! (मै) तुमसे बहुत प्रार्थना करता हूँ। (मैने) तुलसी (और) तिल देकर (अपना) शरीर (तुम्हें) सौंप दिया। (इसलिए) मुझ पर दया मत छोड़ना (अर्थात् मुझ पर सदा सदय रहना ।) जब तुम विचार करोगेए ;तब) दोष गिनते हुए (मुझमे) गुण का लेश भी नहीं पाओगे। (किन्तु) संसार में तुम जगन्नाथ (संसार का स्वामी) कहलाते हो। (इसलिए मेरी प्रार्थना है कि तुम) मुझे संसार से बाहर मत छोड़ दो (अर्थात् मेरी गिनती भी संसार में ही करो, जिससे तुम मेरे स्वामी बने रहो।) क्या मनुष्य, पशु, पक्षी अथवा कीट-पतंग में ही जन्म लूँ? पूर्व-कृत कर्म के परिणामस्वरूप बार-बार जाना-आना होता ही रहेगा। (अर्थात् जन्म-मृत्यु का चक्र चलता ही रहेगा किन्तु तुमसे यही प्रार्थना है कि मेरी, बुद्धि तुम्हारे विषय में लगी रहे। अत्यन्त आर्त होकर विद्यापति कहते हैं- हे दीनबन्धु ! इस भव-सिन्धु को पार करने के लिए तुम्हारे पद-पल्लव का अवलम्बन करू- (ऐसा) क्षण (तो) दो।

(3)

तातल सैकते वारि-बिन्दु-सम

सुत-मित-रमणि-समाजे ।

तोहे बिसरि मन माहि समर्पल

अब मझु हब कोन काजे ।।

माधव ! हम परिणाम-निराशा ।

तुहुँ जगतारण दीन-दयामय

अतए तोहर बिसवासा ।।

आध जनम हम निन्दे गमाओल

जरा-शिशु कत दिन गेला।

निधुवने रमणी रस-रङ्ग मातल

तोहें भजब कोन वेला ॥

कत चतुरानन मरि-मरि जाओत

न तु-अ आदि-अवसाना ।

तोहे जनमि पुनि तोहे समाओत

सागर लहरि समाना ।।

भनइ विद्यापति शेष शमन-भये

तुअ बिन गति नहि आरा।

आदि-अनादिक नाथ कहाओसि

अब तारण-भार तोहारा ।।

व्याख्या- गर्म बालू के ढेर पर पानी की बूँद के समान पुत्र, मित्र (और) स्त्री का समाज (क्षणस्थायी) है। (फिर भी मैंने) तुम्हें भूलकर अपना मन उन्हें सौंप दिया। (हाय !) अब मुझे कौन काम आयेगा? हे कृष्ण। आयु के ढलने पर मैं (सबसे) निराश हो चुका हूँ। तुम संसार के तारने वाले हो-दुखियों के प्रति दयालु हो। इसीलिए (केवल) तुम्हारा विश्वास है। मैंने सोकर आधा जन्म गँवा दिया। बुढ़ापे (और), बचपन के भी कितने दिन (व्यर्थ) बीत गये। (जो थोड़ा-बहुत समय बचाए उसमें भी मैं) आमोद-प्रमोद में (और) रमणियों के रस-रङ्ग में मतवाला हो गया। फिर भला तुम्हें किस समय भजता?

कितने ही ब्रह्मा मर जायेंगे, (पर) तुम्हारा आदि-अन्त नहीं होगा। समुद्र की लहर के समान तुम्हीं से पैदा होकर फिर (वे) तुम्हीं में खो जायेंगे। (अर्थात् जिस प्रकार लहरें समुद्र से पैदा होकर फिर उसी में खो जाती हैं, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु आदि भी तुमसे पैदा होकर तुम्हीं में खो जायेंगे, किन्तु तुम्हारे आदि-अन्त तक का पता नहीं पा सकेंगे ।) विद्यापति कहते हैं-अन्तकाल में (जब) यम का भय होगा, (तब) तुम्हें छोड़कर दूसरा

(कोई भी) सहारा नहीं मिलेगा। (हे कृष्ण! तुम सृष्टि के) मूल कारण परमेश्वर के (भी) अधीश्वर हो। (इसीलिए) अब पार करने का भार (अर्थात् बेड़ा पार लगाने का भार) तुम्हारा है (अर्थात् तुम्हारे कन्धे पर है)।

विशेष- विद्यापति ने इस पद में भगवान् श्रीकृष्ण के विराट् रूप का निदर्शन किया है।

(4)

शैशव छल नव जउवन भेल।
श्रवणक पथ दुहुँ लोचन लेल ।।
वचनक चातुरि लहु-लहु हास ।
धरणिए चान्द करइ परकास।
मुकुर लेइ अब करइ सिङ्गार।
सखि-ठामे पूछइ सुरत-विहार ।।
निरजने उरज हेरइ कत बेरि।
बिहसइ अपन पयोधर हेरि ।।
पहिल बदरि सम पुन नवरङ्ग।
दिने-दिने अनङ्ग अगोरल अङ्ग ।।
माधव ! पेखल अपरुब बाला।
शैशव जउवन-दुहुँ एक भेला ।।
विद्यापति कह तुहुँ आगे आनि।
दुहुँ एक योग इ के कह सत्रानि ।।

व्याख्या- (नायिका के शरीर मे) बचपन था; (किंतु अब वह) नवयौवना हो गई। (इसीलिए उसकी) दोनों आँखों ने कान का मार्ग ले लिया (अर्थात् उसकी दोनों आंखें कान तक फैल गई)। (उसके) वचन की चतुराई (और उसका) मन्द-मन्द हास्य ! (अर्थात् उसके वचन में चतुराई आ गई और उसके ओठों पर हँसी

खेलने लगी। सोए जान पड़ता है, जैसे) चन्द्रमा ने धरती को ही प्रकाशित कर दिया !

अब (वह) आईना लेकर श्रृंगार करती है (और) सखियों के पास (जाकर) काम-क्रीड़ा पूछती है (अर्थात् सखियों से काम-क्रीड़ा की बात करती है)। एकान्त में (वह) कितनी बार (अर्थात् बार-बार) अपने स्तनों को देखती है (और) देखकर हँसने लगती है। पहले (उसके) स्तर बेर के समान थे। फिर से बढ़कर नारंगी के समान हो गये। (जान पड़ता है, जैसे) दिन-दिन (उसके) अङ्गों को कामदेव अगोर रहा है (अर्थात् आ बसा है।) हे कृष्ण ! (आज मैंने एक) अपूर्व बाला को देखा। (सो, उसे देखकर ऐसा जान पड़ा, जैसे) शैशव (और) यौवन-दोनों (मिलकर) एक हो गये।

विद्यापित कहते हैं-(अरी दूती) तुम नासमझ हो। कौन सयानी कहती है (कि शैशव और यौवन-इन) दोनों का एक साथ मिलन होता है?

विशेष- 'कीर्तनानन्द' में इस पद की प्रारंभिक आठ पंक्तियाँ ही हैं। सम्पूर्ण पद 'वैष्णव-पद-लहरी' और 'पदकल्पतरु' में है।

(5)

सजनी ! अपरुब पेखल रामा।
कनकलता अवलम्बने ऊगल
हरिण हीन हिमधामा ।।
नयन नलिन दउ अञ्जने रञ्जित
भत्रुह बिभङ्ग विलासा।
चकित चकोर-जोर विधि बान्धल
केवल काजर पाशा ।।
गिरिवर गरुअ पयोधर परसित
गिम गजमोतिम हारा।
काम कुम्भ भरि कनक शम्भु परि
ढारत सुरधुनि धारा ।।
पैसि प्पयागे याग शत यागइ

सोइ पाओये बहुभागी ।

विद्यापति कह गोकुल-नायक

गोपीजन अनुरागी ।।

व्याख्या- हे सखी! (आज मैंने एक) अपूर्व सुन्दरी को देखा। (उसे देखकर ऐसा जान पड़ा जैसे) स्वर्ण-लता का अवलम्बन कर (अर्थात् सोने की लता के ऊपर) हरिण-हीन (निष्कलङ्क) चन्द्रमा उगा है।

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास अञ्जन से अनुरञ्जित (उसके) दोनों नेत्र कमल (और उसकी) भौह के वक्र हाव-भाव को (देखकर ऐसा जान पड़ा, जैसे) चौकते हुए चकोर के जोड़े को विधाता ने केवल काली रस्सी से बाँध दिया है।

पर्वत के समान उन्नत्त स्तनों का स्पर्श करते हुए (उसकी) गर्दन के गजमुक्ता-हार को (देखकर ऐसा जान पड़ा, जैसे) कामदेव-निर्मित शिव के ऊपर गंगा की धारा को घड़े में भरकर उड़ेल रहा है। (प्रथम पंक्ति की क्रिया 'पेखल' का संबंध क्रिया के रूप में यहाँ तक है।)

प्रयाग में बैठकर (अर्थात् प्रयाग जाकर) जो सैकड़ों यज्ञ करता है, वही महान् भाग्यशाली (ऐसी सुन्दरी को) पाता है। विद्यापति कहते है-गोकुल-नायक भगवान् श्रीकृष्ण गोपी-जनों के अनुरागी है।

विशेष- उपर्युक्त पद के 'काम कुम्भ भरि' में 'कुम्भ' के स्थान पर 'कीर्तनानन्द' को छोड़कर अन्य पदावलियों में 'कम्बु' पाठ है, जो समीचीन नहीं है। कारण, शम्भु के ऊपर कम्बु (शंख) से जल नहीं चढ़ाया जाता है। विद्यापति के समान महान् विद्वान् ऐसा नहीं लिख सकते हैं। जान पड़ता है, यह लेखक का प्रमाद है। किञ्चए 'कुम्भ' पाठ रखने से 'शम्भु' के साथ अनुप्रास भी बैठता है।

'क्षणदागीतचिन्तामणि' में भणिता-सूचक अन्तिम चार पंक्तियों से पूर्व निम्नलिखित चार पंक्तियों और है, जो अनुपयुक्त प्रतीत होती हैं-

प्रथम वयसि धनि मुनि-मन-मोहनि

गजवर जिनि गति मन्दा।

सिन्दुर तिलक भानु तड़ितलता जनु

ऊयल पुनिमक चन्दा ।।

(6)

कि कहब हे सखि ! कान्हक रूप।

के पतिआएब सपन-सरूप ।।

अभिनव जलधर सुन्दर देह।

पीत वसन जनि दामिनि-रेह ।।

झामर-झामर कुटिल सुकेश।

किए शशिमण्डल शिखण्ड-संवेश ।

जातकि-केतकि- कुसुम-सुवास ।

पुलशर मनमथ तेजल तरास ।।

विद्यापति कह कि बोलब आर।

सून कएल बिहि मदन-भण्डार ।।

व्याख्या- हे सखी! (मैं) कृष्ण के स्वरूप (के बारे में) क्या कहूं? स्वप्न-तुल्य (उस स्वरूप का) कौन विश्वास करेगा? एकदम नये (अर्थात् विना बरसे) मेघ के समान सुन्दर शरीर (और उसके ऊपर) बिजली की रेखा के समान पीले वस्त्र ! काले-काले घुँघराले बाल ! (सो, उन्हें देखकर शंका होती थी कि क्या चन्द्र मण्डल में मयूर-पुच्छ (कृष्ण के माथे की कलंगी) पैठ गया है? (उनके शरीर से) जातकी (और) केतकी के फूलों की सुगंध (फैल रही थी। जान पड़ता थाए जैसे उनके) भय से कामदेव ने (अपना) पुष्पबाण तज दिया है। विद्यापति कहते हैं-और क्या कहूँ? (इतना ही कहता हूँ कि कृष्ण के रूप-निर्माण में) विधाता ने कामदेव का भण्डार ही सूना कर दिया।

(7)

कि कहब हे सखि ! इह दुख ओर।

बाँसि-निसास-गरलें तन भोर ।।

जखनहिँ पैठल श्रवणक माझ।

तखनहिं विगलित तन-मन लाज ।।

विपुल पुलकै परिपूरल देह।

नयने न हेरि-हेरए जनि केह ।।

गुरुजन-समुखहि भाव-तरङ्गः ।

जतनहिँ वसने झाँपु सब अङ्ग ।।

लहु-लहु चरणे चलिअ गृह-माझ।

दैवें से बिहि राखल लाज ।।

तन-मन विवश खसल निबिबन्ध ।

कि कहब विद्यापति रहु धन्ध ।।

व्याख्या- हे सखी ! इस दुःख का ओर-छोर क्या कहूँ? (अर्थात् इस दुःख का बखान कैसे करूँ? कृष्ण की) बाँसुरी की गरल रूपी फेंक से (मेरा) शरीर (उनमें) तल्लीन हो गया। जभी (बाँसरी की फूँक मेरे) कानों में पैठीए तभी (मेरे) तन-मन से लाज-(सभी) ढीली पड़ गई-समाप्त हो गई। रोमाञ्च के आधिक्य से (मेरा) शरीर भर गया। (मैं अपनी) आँखों देख नहीं पा रही थी कि कोई सखी मुझे देख रही है। गुरुजनों के सामने ही (मेरे मन में) भावों की तरङ्गे लहराने लगीं (फिर तो) यत्न से (मैंने अपने) सभी अङ्ग वस्त्र से ढँक लिये। धीरे-धीरे पैरों से (अर्थात् पैर उठाकर मै) घर के बीच चली गई। (समझो कि) भाग्य से विधाता से (आज मेरी) लाज रख ली। (मेरे) तन-मन (अपने) वश में नहीं रहे। नीवीबन्ध (भी खुलकर) गिर पड़ा। विद्यापति (स्वयं) उलझन में पड़ गये। (इसलिए इससे अधिक वे) क्या कहेंगे?

(8)

थरथर काँपड़ लहु-लहु भास।

लाजे न वचन करइ परगास ।।

आज पेखल धनि बड़ विपरीत ।

खने अनुमति खने मानइ भीत ॥

सुरतक नामे मुँदइ दुहु आँखि ।

पाओल मदन महोदधि साखि ॥

चुम्बन बेरि करइ मुख बङ्क ।

मीलल चान्द सरोरुह अङ्क ॥

निबिबन्ध-परसें चमकि उठ गोरि ।।

जानल मदन-भण्डारक चोरि ।।

फुजल वसन हिअ भुजें रह साँठि।

बाहर रतन आँचरे देह गाँठि ।।

विद्यापति कि बुझब बल हेरि।

तेज तलप परिरम्भण-बेरि ।।

व्याख्या- (नायक की उक्ति-बाला) थरथर काँपती है- धीरे-धीरे बोलती है। लाज के कारण साफ-साफ बातें भी नहीं करती है। (मैंने) आज सुन्दरी को बहुत ही विपरीत देखा। कभी वह (केलि के लिए) अनुमति देती थीए (और) कभी डर जाती थी।

सम्भोग के नाम से (अर्थात् सम्भोग का नाम सुनकर वह) दोनों आँखें मूंद लेती है। (जान पड़ता है, जैसे उसे) कामदेव-रूपी समुद्र दृष्टिगोचर हो गया है। (अर्थात् जिसने कभी समुद्र नहीं देखा है, उसे यदि अचानक समुद्र दृष्टिगोचर हो जाता है तो वह जिस प्रकार भयभीत होकर आँखे मूँद लेता है, उसी प्रकार वह सम्भोग का नाम सुनकर आँखें मूंद लेती है।) चुम्बन के समय (अर्थात् मुँह चूमते समय वह अपने) मुँह को टेढ़ा कर लेती है (अर्थात् मुँह फेर लेती है। जान पड़ता है, जैसे), चन्द्रमा कमल की गोद में जा पड़ा है। (अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा के अङ्डू में आ पड़ने से-चन्द्र-किरण के स्पर्श से-कमल म्लान हो जाता है, उसी प्रकार नायक के मुखचन्द्र के स्पर्श से नायिका का मुख-कमल म्लान हो जाता है।)

नीवीबन्ध को छूते ही सुन्दरी चौंक उठती है। (जान पड़ता है, जैसे उसने) कामदेव के खजाने की चोरी समझ ली है। खुले कपड़े को हाथों से (वह अपने) वक्षःस्थल पर सँवारे हुई थी (अर्थात् वक्षःस्थल को ढके हुई थी।), रत्न तो बाहर में पड़ा था; किन्तु वह आँचल में गाँठ दे रही थी। विद्यापति (कहते है-बोलो), देखकर क्या समझें? (वह तो) आलिङ्गन के समय सेज भी तज देती है।

(9)

अधर सुशोभित वदन सुछन्द ।

मधुरी फूले पूजू अरविन्द ।।

तहु दुहु सुललित नयन सामरा।

विमल कमल दल बड़सल भमरा ।।

विशेखि न देखलिए निरमलि रमनी ।।

सुरपुर सञो चलि आइलि गजगमनी ।।

गिम सञो लाबल मुकुताहारे ।

कुचजुग ककेब चरड़ गङ्गाधारे ।।

भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार।

रस बूझ शिवसिंह नृप महोदार ।।

व्याख्या- (नायिका का) सुडौल मुख अधर से (इस प्रकार) सुशोभित है, (जैसे) गुल दुपहरिया के फूल से कमल पूजा गया है। उसमें (मुख में) दोनों सुन्दर कजरारी आँखें (ऐसी जान पड़ती हैं, जैसे) स्वच्छ कमल-दल पर भ्रमर बैठे हैं। (उससे) बढ़कर निर्मित रमणी नहीं देखी। (अर्थात् ब्रह्मा ने जिन रमणियों का निर्माण किया, उनमें उससे बढ़कर कोई नही दिखाई पड़ी। जान पड़ता है, जैसे) स्वर्ग से (कोई) गजगामिनी (अप्सरा) चली आई है। (उसकी) गरदन से मुक्ताहार लटक रहा है। (जान पड़ता है, जैसे) दोनों स्तन-रूपी चक्रवात गङ्गा की धारा में विचर रहे हैं।

कविकण्ठहार विद्यापति कहते हैं-महोदार राजा शिवसिंह (इस) रस को समझते हैं।

(10)

भल भेल दम्पति शैशव गेल।
चरन-चपलता लोचन लेल ।।
दुहुक नयन कर दूतक काज।
भूषण भए परिणत भेल लाज ।।
आबे अनुखन देअ आँचर हाथ।
बाज सखी सजे नत कए माथ ।।
हमे अवधारल सुन सुन कान्ह।
नागर करघु अपन अवधान।
भँउह धनुषि गुण काजर रेख।
मारति रहत पोख अवसेख ।।
रसमय विद्यापति कवि गाब।
राजा शिवसिंह बुझ रस-भाव ।।

व्याख्या- अच्छा हुआ, (जो) नायक (और) नायिका का बचपन चला गया। (परिणाम यह निकला की) पैरों की चंचलता आँखों ने ले ली। दोनों की आँखें दूत का काम करने लगीं। (अर्थात् आँखों के इशारे से ही दोनों में बातें होने लगी ।) लज्जा आभूषण होकर परिणत हो गई। (अर्थात् नायिका में लज्जा का आधिक्य हो गया।)

अब (नायिका) सतत आँचल में हाथ दिये रहती है। (अर्थात् आँचल में हाथ डालकर कुचमण्डल को छिपाये रहती है।) माथा झुकाकर सखियों से बातें करती है।(सखी कहती है-) हे कृष्ण! सुनोए सुनो। मैंने निश्चय कर लिया (कि अब) नायक (ही) अपना अवधान करें-चेत करें। (नायिका की) भौह धनुष हैए कज्जल की रेखा डोरी है। (वह) पुंख को छोड़कर (समूचा बाण = कटाक्ष) मार रही है। रसमय कवि विद्यापति गाते हैं (और) राजा शिवसिह इस रस का भाव समझते हैं।

(11)

राहु मेध भए गरसल सूर।
पथ परिचए दिवसहि भेल दूर ।।
नहि बरिसए अवसर नहि होए।
पुर परिजन सञ्चर नहि कोए ।
चल चल सुन्दरि कर गए साज।
दिवस समागम सपजत आज ।।
गुरुजन परिजन डर कर दूर।
बिनु साहसें अभिमत नहि पूर ।।
एहि संसार सार बथु एह।
तिला एक सङ्गम जाब जिब नेह ।।
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार।
कोटिहु न घट दिवस अभिसार ।।

व्याख्या- राहु ने मेघ होकर सूर्य को ग्रस लिया (अर्थात्-मेघ इस प्रकार घिर आया है कि सूर्य कहीं दिखाई नहीं देता है। जान पड़ता है, जैसे-ग्रहण लगा है। दिन में ही मार्ग का परिचय दूर हो गया (रास्ता भुला गया ।) न बारिश होती है (और) न (जाने-आने का) अवसर होता है। नगर में कोई आदमी नहीं चलता है। अरी सुन्दरी ! चलो, चलो। जाकर सजावट करो। आज दिन में ही समागम हो जायगा। गुरुजनों (और) परिजनों का भय दूर करो। बिना साहस के अभिप्राय पूर्ण नहीं होता है। इस संसार में यही (अभिसार) सार वस्तु है। (यद्यपि इसमे) क्षण-भर का संग होता है; (तथापि) जीवन पर्यन्त स्नेह रहता है। कविकण्ठहार विद्यापति कहते हैं (कि) कोटियों (खरचने) से (भी) दिन का अभिसार नहीं घटित होता है। (अर्थात् कोटियों खरचने पर भी दिवाभिसार का मौका हाथ नहीं आता ।)

2.4 पदों की व्याख्या

(12)

जइअओ जलद रुचि धएल कलानिधि

तइअओ कुमुद मुद देइ।

सुपुरुष वचन कबहु नहि बिचलए

जओ बिहि बामेओ होइ ॥

मालति ककें तोत्रे होसि मलानी।

आन कुसुम मधुपान विरत कए

भमर देब मोनेआनी ।।

दिन दुइ चारि आने अनुरञ्जब

सुमरत सउरभ तोरा।

आनक वचन अनाइति पड़ला हे

से नहि सहजक भोरा ॥

व्याख्या- यद्यपि मेघ ने चन्द्रमा की किरणें ढक रखी हैं, तथापि (वह) कुमुद को हर्ष देता है (प्रसन्न करता है।) यदि विधाता वाम भी हो जाय, (तो भी) सुपुरुष का वचन कभी टस-से-मस नही होता है। हे मालती ! तुम म्लान क्यों हो रही है? मैं दूसरे फूलों के मधुपान से विरक्त करके भ्रमर को ला दूँगी। (भ्रमर को) दो-चार दिन (ही) दूसरे फूल (सन्तुष्ट करेंगे)। (अन्त में वह) तुम्हारे सौरभ का ही स्मरण करेगा। दूसरे के कहने से (वह) पराधीन हो गया है। (वास्तव में) वह स्वभाव का बुद्ध नहीं है।

(13)

से भल जे बरु बसए विदेसे ।

पुछिअ पथुक जन ताक उदेसे ॥

पिआ निकटहि बस पुछिओ न पुछइ ।

एहन विरह दुख केदहु सहइ ॥

धनि धैरज कर पिआ तोर रसिया।

अबसउ दिन एक देत बिहुसिया ।।

मधुरिओ वचन सून नहि काने।
आब अबसेओ हमे तेजब पराने ।।
भनइ विद्यापति एहु रस भाने।
राए सिवसिंह लखिमा देइ रमाने ।।

व्याख्या- (नायिका सखी से कहती है-) जो परदेश में रहता हैए वही अच्छा है। (कारण) बटोहियों से उसका उद्देश्य तो पूछा जाता है-उसकी खोज-खबर तो ली जाती है।

स्वामी समीप में ही रहें; (किन्तु) पूछने के लिए भी नहीं पूछें (अर्थात् शिष्टाचारवश भी बातें नहीं करें, तो) ऐसा विरह-रूपी दुःख कौन सह सकती है? (सखी उत्तर देती है-) हे धन्ये धैर्य (धारण) करो। तुम्हारे स्वामी रसिक हैं। (इसलिए) एक दिन (वे) अवश्य विहँस देंगे। (अर्थात् उनका रूठना खत्म हो जाएगा, वे प्रसन्न हो जायेंगे।)

(नायिका कहती है-) मेरा मधुर वचन भी (वे) कानों से नहीं सुनते हैं। (इसलिए) मैं अब अवश्यए प्राण तज दूँगी। विद्यापति कहते हैं-लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह इस रस को जानते हैं।

(14)

लोचन नीर तटिनि निरमाने।
करए कमलमुखि तथिहि सनाने ।।
सरस मृणाल कइए जपमाली ।
अहनिस जप हरि नाम तोहारी ।।
वृन्दावन कान्हु धनि तप करई।
हृदय वेदि मदनानल बरई ।।
जिव कर समिध समर करे आगी।
करित होम बघ होएबह भागी ।।
चिकुर बरहि रे समरि करे लेअइ।

फल उपहार पयोधर देअइ ।।
भनइ विद्यापति सुनह मुरारी।
तुय पथ हेरइते अछ वरनारी ॥

व्याख्या- (विरहिणी की) आँखों के आँसू से नदी का निर्माण हो गया। कमलमुखी उसी में स्नान करती है। हे कृष्ण ! (वह) सरस कमलनाल की जपमाला बनाकर दिन-रात तुम्हारा नाम जपती है। हे कृष्ण ! (तुम्हारी) प्रियतमा वृन्दावन में तपस्या करती है। (उसकी) हृदय-रूपी वेदी पर कामाग्नि जल रही है।

(वह अपने) प्राण की समिधा और कामदेव की आग करके होम कर रही है (यदि वह मर जायगी, तो तुम) वध के भागी हो जाओगे। सामरी (सुन्दरी) हाथ में केश-रूपी कुश लेकर स्तन-रूपी फल का नैवेद्य दे रही है। विद्यापति कहते हैं-हे कृष्ण! सुनो। वह नारी तुम्हारी राह देख रही है।

(15)

अधर सुधा मिठि दूधे धवरि
डिठि मधु सम मधुरिम बानी रे।
अति अरथित जे जतने न पाइअ
सबे बिहि तोहि देल आनि रे ॥
जनु रुसह भाविनि भाव जनाइ।
तुय गुने लुबुधल सुपहु अधिक दिने
पाहुन आएल मधाइ ।।
जसु गुन झखइते झामरि भेलि हे
रयनि गमओलह जागि रे।
से निधि निधि अनुरागे मिलल तोहि
कन्हु सम पिआ अनुरागि रे ॥
भनइ विद्यापति गुणमति राखए

बालभु के अपराध रे।
राजा शिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि अराध रे ।।

व्याख्या- अमृत के समान मीठा अधर, दूध के समान उजली आँखें (और) मधु के समान मधुर वचन ! अत्यन्त अभिप्रेत होने पर (भी) जो यत्न से नहीं पाये जातेए विधाता ने लाकर वे सब तुम्हे दे दिये । अरी सुन्दरी ! भाव जनाकर (अर्थात् विश्वास देकर) मत रूठो। (कारण) तुम्हारे गुणों से लुब्ध होकर बहुत दिनों के बाद स्वामी-कृष्ण-अतिथि होकर आये हैं। जिसके गुणों से- (अर्थात्-जिसके गुणों का स्मरण करके) झंखती हुई (तुम) जली हुई ईंट के समान काली हो गई, जगकर रातें बिताई, विधाता के विधान से वह खजाना तुम्हें मिल गया-कृष्ण के समान अनुरागी स्वामी तुम्हें मिल गये। विद्यापति कहते हैं-गुणवती (स्त्री) स्वामी के अपराध को (छिपाकर) रखती है। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के आराध्य हैं।

(16)

पाहुन आएल भवानी
बाघछाल बइसए दिअ आँनी।
बसह चढल बुढ आवे
धुथुर गजाए भोजन हुनि भावे ।।
भसम विलेपित आङ्गे
जटा बसथि सिर सुरसरि गाङ्गे ॥
हाडमाल फणिमाल शोभे
डैवरु बजाब हर जुवतिक लोभे ।।
विद्यापति कवि भाने
ओ नहि बुढबा जगत किसाने ॥

व्याख्या- हे भवानी । मेहमान आये हैं। बैठने के लिए व्याघ्रचर्म लाकर दो। बसहा बैल पर चढ़कर वृद्ध आते हैं। उन्हें धतूरे (और) गाँजे का भोजन भाता है। भस्म-विलेपित (उनके) अंग हैं। (उनके) सिर पर-जटा में-सुरनदी गंगा वास करती हैं। हाड़ की माला (और) साँप की माला सोहती है। (वे) युवती से लोभ से डमरू बजाते हैं। कवि विद्यापति कहते हैं-वे बूढ़े नहीं हैं। (वे तो) संसार को उत्पन्न करने वाले हैं।

(17)

मोर बउरा देखल केहु कतहु जात
बसह चढल बिस पान खात।
आखि निरर मुह चुआइ लार
पथ के चलत बौरा बिसम्भार ।।
बाट जाइते केहु हलब ठेलि
अब ओहि बौरे बिनु मजे अकेलि ।।
हाथ डबरु कर लौआ संख
जोग जुगुति गिम भरल माथ।
अरगज चढाए आठहु आङ्ग
सिर सुरसरि जटा बोइल गाङ्गः ।।
विद्यापतीत्यादि ।।

व्याख्या- किसी ने कही मेरे पागल को जाते हुए देखा है? बसहा बैल पर चढ़े हुए (और) विष (तथा) भाँग खाते हुए को (देखा है?) (उनकी) आँखें-फटी-फटी है। (उनके) मुँह से लार चूती हैं। पागल की नाई बे-संभार (वे) मार्ग में चलते हैं। (हाय !) राह चलते कोई उन्हें ठेल देगा! उन पागल के बिना अब मैं अकेली हो गई हूँ। (उनके) हाथ में लौका के साथ डमरू है। योग-मुक्ति से (उनका) माथा भरा है। (उन्होंने) आठों अंग में अरगजा चढ़ा लिया है। (उनके) सिर परए जटा में सुरसरि गंगा बोल रही है। (अर्थ-सम्पादकीय अभिमत से ।)

(18)

तरुअर बलि घर डारे जाँति
सखि गाढ अलिङ्गन तेहि भाँति ।
मजे नीन्दे निन्दारुधि करजो काह
सगरि रयनि कान्हु केलि चाह ।।
मालति रस बिलसए भसर जान
तेहि भाति (कान्ह) कर अधर पान ।।
कानन फुलि गेल कुन्द फूल
मालति मधु मधुकर पए जूल।
परिठवड़ सरस कवि कण्ठहार
मधुसूदन राधा वन-विहार ।।

व्याख्या- (जिस तरह) तरूवर लता की अपनी डाल से दबाकर रखता है, हे सखी। उसी तरह (श्रीकृष्ण) गाढ़ आलिगन देते हैं। मैं निद्रावरुद्ध हूँ क्या करूं? कृष्ण सारी रात केलि चाहते हैं। (जिस प्रकार) भ्रमर मालती के रस का विलास करना जानता है, उसी प्रकार (कृष्ण) अधर पान करते हैं। जंगल में कुन्द का पुष्प विकसित हो गया। मालती के मधु से भौरा भी जुड़ा गया। सरस कवि कण्ठहार (विद्यापति) राधा-कृष्ण का वन-विहार प्रस्तुत करते हैं।

(19)

चल देखने जाउ ऋतु वसन्त
जहा कुन्द कुसुम कैतव हसन्त ॥
जहा चन्दा निरमल भमर कार
रयनि उजागरि दिन अन्धार ।।
मुगुधलि मानिनि करए मान
परिपन्तिहि पेखए पञ्चवान ।।
परिठवड़ सरस कवि कण्ठहार

मधुसूदन राधा वन विहार ।।

व्याख्या- चलो, जहाँ कुन्द, कुसुम और केतकी खिलती हैं, (उस) बसन्त ऋतु को देखने चलें। जहाँ निर्मल चन्द्रमा है, (जहाँ) काले भ्रमर है। (निर्मल चन्द्रमा के कारण जहाँ) रातें उजली हैं (और काले भ्रमरों के कारण जहाँ) दिन अन्धकारमय है।(जहाँ) मुग्धा मानिनी मान करती है (अर्थात्, ज्ञाताज्ञातयौवना ही मान करती है। और) कामदेव (अपने) प्रतिपक्षी को घूर रहा है सरस कवि कण्ठहार (विद्यापति) राधा-कृष्ण का वन-विहार प्रस्तुत कर रहे हैं।

(20)

कंटक माझ कुसुम परगास
भमर बिकल नहि पाबए पास (क) ।।
रसमति मालति पुनु पुनु देखि
पिबए पाह मधु जीव उपेषि (क) ।। ध्रु. ।।
भमरा विकल भमए सब ठाम
तोह बिनु मालति नहि बिसराम ।।
ओ मधुजीवी तजे मधुरासि
साचि धरसि मधु तजे न लजासि ।।
अपने मने धनि बुझ अवगाहि
तोहर दुधन बघ लागत काहि ।।
भनइ विद्यापतीत्यादि ॥

व्याख्या- काँटों के बीच फूल खिल रहा है व्याकुल भ्रमर पास तक नहीं पहुँच पाता। रसवती मालती को बार-बार देखकर (अपने) जीवन की उपेक्षा करके (वह) मधु पीना चाहता है। व्याकुल भ्रमर सब जगह घूमता है, हे मालती (परन्तु) तुम्हारे बिना (उसे) विश्राम कहाँ? वह मधुजीवी है (और) तुम मधु का समूह हो। मधु को जुगाकर रखती हो। क्या तुम्हें लज्जा नहीं होती । हे धन्ये! अपने मन में विचार कर समझो।

तुम्हा तुम्हारा दोष है, (फिर) वध किसे लगेगा? नीले वस्त्र में तुम्हारे शरीर का रंग (ऐसा मालूम होगा, जैसे) अन्धकार में चन्द्रमा या बिजली की तरंग हो। तुम्हारा मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान है। (इस) हँसते हुए चन्द्रमा का अमृत चकोर (कृष्ण) पान करेगा।

स्व-प्रगति परीक्षण

1. विद्यापति की रचनाएं ..... कही जाती हैं।
2. विद्यापति ..... काव्य धारा के अन्तर्गत आते हैं।
3. वीर रस का स्थायी भाव .....ता है।
4. विद्यापति गीतिकाव्य धारा के .....कवि थे।
5. विद्यापति .....के प्रमुख कवि हैं।

2.5 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रमान्तर्गत भक्तिकालीन कवि विद्यापति के जीवन-परिचय एवं उनके द्वारा प्रणीत पदावली के विषय में विस्तृत अध्ययन किया। इस इकाई की सामग्री के अध्ययन के पश्चात् आप विद्यापति द्वारा प्रणीत पदावली के काव्य-सौन्दर्य से भली-भांति परिचित हो चुके होंगे।

सारांशत: हम कह सकते हैं कि विद्यापति की पदावली में लोक-भाषा का प्रयोग होते हुए भी साहित्यिकता है, आलंकारिता है, सरसता है और सुकुमारता है। इस भाषा में छोटे-छोटे वाक्यों के अन्तर्गत गहन एवं गम्भीर भावों को अत्यन्त सफलता के साथ व्यक्त किया गया है। निःसन्देह विद्यापति की भाषा 'देसिल बयना' होकर भी नागरों के मन को मुग्ध करने वाली है और कोमल-कान्त पदावली से युक्त होने के साथ-साथ मधुर राग एवं संगीत के कोमल स्वरों से सुसज्जित है।

विद्यापति के पदों में रहस्यवाद के दर्शन करना व्यर्थ है, सख्य-भाव की उपासना को ढूंढना मिथ्या है और जीवात्मा-परमात्मा के संबंध की स्थापना करना कोरी खींचतान है। इसमें तो मानव की मूल भावना काम का सांगोपांग चित्र अंकित किया गया है और इनका संबंध लौकिक जगत से है, पारलौकिक से नहीं, क्योंकि इनमें जीवन के भौतिक आनन्द का उज्ज्वल रूप अंकित है।

2.6 मुख्य शब्द

* गोरस-दूध- दही
* मतिमान- समझदार (बुद्धिमान)
* रूप- सौन्दर्य
* मन्मथ- कामदेव
* अगोरि- रक्षा करो

2.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. पदावली
2. आदिकालीन
3. उत्साह
4. आदि
5. श्रृंगार

2.8 संदर्भ सूची

1. झा, एम. (2020). *विद्यापति: मैथिली साहित्य के अग्रदूत*. पटना: मैथिल पब्लिकेशन्स।
2. मिश्रा, र. (2021). *विद्यापति और उनकी भक्ति कविताएँ*. वाराणसी: संस्कृति प्रकाशन।

3. कुमार, ए. (2022). *विद्यापति: प्रेम, भक्ति और तत्वमीमांसा का अन्वेषण*. दिल्ली: कल्पना पब्लिकेशन्स।
4. सिंह, पी. (2023). *विद्यापति: मिथिला की सांस्कृतिक पहचान*. कोलकाता: हेरिटेज प्रेस।
5. शर्मा, एन. (2024). *विद्यापति की कविता: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन*. जयपुर: साहित्य सागर।

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. विद्यापति के जीवनवृत्त एवं कृतित्व पर एक विस्तृत व विद्यापति भक्त-कवि हैं या शृंगारी, स्पष्ट कीजिए।
3. विद्यापति के शृंगार-वर्णन का विवेचन कीजिए।
4. विद्यापति पदावली के कलापक्ष एवं भावपक्ष पर प्रकाश।
5. गीतिकाव्य की कसौटी पर विद्यापति पदावली की समीक्षा कीजिए।
6. विद्यापति के सौन्दर्य-चित्रण का वर्णन कीजिए।

इकाई - 3

कबीरदास

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 कबीरदास का जीवनवृत्त

3.4 कबीरदास के पदों की व्याख्या

गुरूदेव कौ अंग (साखी 1 से 10)

सुमिरण कौ अंग (साखी 1 से 10)

विरह कौ अंग (साखी 1 से 10)

ग्यान विरह कौ अंग (साखी 1 से 10)

परचा कौ अंग (साखी 1 से 10)

3.5 सार संक्षेप

3.6 मुख्य शब्द

3.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

3.8 संदर्भ सूची

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इस तृतीय इकाई में हिन्दी साहित्य के इतिहास के द्वितीय चरण भक्तिकाल के विषय में तथा कबीरदास एवं उनकी रचनाओं के विषय में वर्णन किया गया है। हिन्दी में सन्त-कवि जिस विचारधारा को लेकर अपनी वाणियों की रचना में प्रवृत्त हुए हैं, उसका मूल स्रोत चौरासी सिद्धों एवं नव नाथों की रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। इस काल के सभी सन्तों में 'कबीर' की वाणी सबसे अधिक सशक्त एवं सक्षम जान पड़ती है। कबीर ने तत्कालीन समस्त धर्म-साधनाओं, उपासना-पद्धतियों, साधना-प्रणालियों आदि

का गहन अध्ययन करके अपने विचार प्रकट किए हैं। साथ ही वे उच्च कोटि के साधक भी रहे हैं। इसी कारण उनकी वाणी में अनुभव, ज्ञान, कल्पना तथा साधना का सम्मिश्रण दिखाई देता है और इसीलिए कबीर की वाणी अन्य सन्तों की अपेक्षा कहीं अधिक मार्मिक, प्रभावोत्पादक एवं हृदयस्पर्शी जान पड़ती है।

इस इकाई में भक्तिकालीन कवि कबीरदास के जीवन एवं उनके कृतित्त्व के विषय में आपको अवगत कराया जाएगा।

3.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत भक्तिकाल से परिचित हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन काव्य-सौन्दर्य एवं काव्य-सौष्ठव के विषय में जान सकेंगे।
- अपने पाठ्यक्रमान्तर्गत भक्तिकालीन कवि कबीरदास के विषय में
- अपना ज्ञानवर्धन कर सकेंगे।
- भक्तिकालीन काव्य परंपरा में कबीर का स्थान निर्धारित कर सकेंगे।

3.3 कबीरदास का जीवनवृत्त

कबीरदास भक्तिकालीन संत काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। वह एक महान संत, सच्चे समाज सुधारक, युग नेता, महामानव तथा महान कवि थे। निरक्षर होते हुए भी उन्होंने उच्च कोटि के काव्य की रचना की तथा सामाजिक और आध्यात्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की। वह संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं अतः संत काव्य की सभी विशेषताएं उनके काव्य में सहज रूप से देखी जाती हैं।

1. **जीवन-वृत्त-** आज भी कबीर का जीवन-वृत्त अंधकार से भरा है। इस महान संत ने अपने विषय में कोई स्थूल सूचना नहीं दी। 'कबीरदास' के जन्म के बारे में कुछ भी नहीं

कहा जा सकता। कबीरदास सिकंदर लोधी के समकालीन थे। कबीरदास जी के लिए यह पद प्रसिद्ध है-

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ भए।

जेठ सुदी बरसायत की, पूरनमासी प्रगट भए।।

घन गरजे दामिनि दमके, बूंदे, बरसे झर लाग गए।

लहर तालाब में कमल खिलो, तहं कबीर भानु प्रकट भए।

कबीर का जन्म सम्वत् 1455 सन् 1398 ई. के ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को सोमवार के दिन हुआ। कई ज्योतिषों की गणना के आधार पर यह दिन 1455 को न पड़कर 1456 को पड़ता था। कुछ कवि कबीरदास जी का जन्म 1456 को मानते हैं। कुछ अन्य विद्वान कबीरदास का जन्म वर्ष 1455 को मानते हैं। जिस तरह कबीरदास के जन्म की जानकारी निश्चित नहीं थी, उसी प्रकार उनका जन्म किस स्थान पर हुआ, इसके बारे में भी निश्चित जानकारी नहीं थी। एक मत के अनुसार कबीर का जन्म काशी में हुआ दूसरे मत के अनुसार मंगलहरी थी एक मत के अनुसार उनका जन्म जिला आजमगढ़ के बेलहरा गांव में हुआ था। कुछ विद्वानों। के अलग-अलग मत थे। एक मत ने कहा कि कबीरदास का जन्म एक विधवा बाडाणी के गर्भ से हुआ जो लोक समाज के भय से कबीरदास को काशी के लहिया ब्राह्मी सरोवर की सीढ़ियों पर फेंककर चली गई। नीरू तथा नीमा नामक जुलाहा ने कबीरदास जी का पालन-पोषण किया। कुछ कबीरपंथियों ने कबीर के जन्म के साथ अनेक घटनाएं जोड़ी हुई है। कबीरदास का विवाह हो चुका था तथा उनकी की पत्नी का नाम लोई था। कबीरदास का एक पुत्र तथा एक पुत्री थी। पुत्र का नाम कमाल तथ पुत्री का नाम कमाली था। कमाल के बारे में दोहा भी लिखा है-

बूड़ा वंश कबीर का उपज्यो पूत कमाल। "

हरि कौ सुमिरन छाड़ के घर ले आया माल।।"

कबीर के गुरू का नाम रामानंद था तथा वे सूफी संत शेख तकी के संपर्क में भी आए इसीलिए उनके काव्य पर सूफी मत का प्रभाव भी देखा जा सकता है। कबीरदास की

आयु 120 साल की थी, अतः 1575 में उनका देहांत हो गया। एक विद्वान ने लिखा भी है-

संवत पंद्रह सौ औ पांच मो, मगहर कियो गौन।

अगहन सुदी एकादसी मिलौ पौन में पौन।

कबीरदास पढ़े-लिखे नहीं थे वे कहते हैं-"मसि कागद छुओ नहीं, कलम गहयो नहीं हाथ। कबीरदास जी बहुत ज्ञानी और बहुश्रुत व्यक्तित्व वाले थे। वे मस्तमौला तथा फक्कड़ संत थे। बचपन से ही वे निडर, विद्रोही तथा क्रांतिकारी और समाज सुधारक थे। डॉ. हजारी प्रसाद लिखते हैं कृ "वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव में अक्खड़, आदत से फक्कड़, भक्त के समान गिरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल से साफ दिमाग से तंदुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृष्य तथा कर्म से वंदनीय थे।"

रचनाएं-पहले बताया जा चुका है कि कबीरदास जी पढ़े-लिखे नहीं थे अर्थात् वह निरक्षर थे। निरक्षर होते हुए भी उनके शिष्यों ने कबीर वाणी का संकलन किया। कबीर जी की एक प्रामाणिक रचना है-'बीजक'। इसके तीन भाग हैं-साखी, सबद तथा रमैणी। कुछ कबीरपंथियों और विद्वानों ने कबीर द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या 57 से 61 तक मानी है।

3.4 कबीरदास के पदों की व्याख्या

गुरूदेव कौ अंग (साखी 1 से 10) -

(21)

सतगुर सवाँन को सगा सोधि सई न दाति।

हरिजी सवाँन को हितु हरिजन सई न जाति ।।1।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "गुरुदेव को अंग से लो गई है।

व्याख्या- (इस संसार में) सद्गुरु के समान अपना कोई निकट संबंधी नहीं है। तत्वशोधन वा प्रभु खोज करने वाले साधु के समान कोई दाता नहीं क्योंकि वह अपना समस्त ज्ञानार्णव शिष्य में उडेल देता है। दयालु प्रभु तुल्य अपना कोई हितेषी नहीं है और प्रभुभक्तों के समान कोई जाति नहीं है। अर्थात प्रभू-भक्त सब मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

विशेष- अनन्वयोपमा अनुशस एवं यमक अलंकार ।

(22)

बलिहारी गुरु आपणे, द्यौं हाड़ी के बार।
जानि मानिष मैं देवता करत न लागी बार ।।2।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखो 'गुरुदेव को अंग" से ली गई है।

व्याख्या- मैं शरीर को अपने गुरु के ऊपर वार न्यौछावर करू, मैं उनकी बलि-बलि जाता हूँ जिन्होंने अत्यन्न अत्य समय में मुझे मनुष्य से देवता बना दिया अर्थात् मेरो मानवीय दुर्वलताओं को नष्ट कर मुझे दिव्यगुण युक्त कर दिया।

विशेष- बार' में यमक अलंकार, अर्थ-शक्ति उद्भव स्वतः सम्भवी वस्तु में अलंकार ध्वनि। गुरु ब्रह्मा से बढ़का है, क्योंकि वह क्षणमात्र में मनुष्य को देवता बनाता है' यह ध्वनि व्यतिरेक अलकार के रूप में है।

(23)

सतगुर की महिमा अनंतु, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उपाड़िया, अनंत दिखावणहार।।3।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी गुरुदेव को अंग से ली गई है।

व्याख्या- सद्गुरु की महिमा अपरम्पार है, उन्होंने मेरे साथ महान् उपकार किया है। उन्होंने मेरे (वर्मवक्षुओं के स्थान पर) ज्ञान-बक्षु खोल दिये दिव्य दृष्टि प्रदान कर दी, जिसके द्वारा उस अनन बड़ा के दर्शन हो गये।

विशेष- यमक अलंकार।

(24)

राम नाम ले पटंतरे, देवे को कुछ नांहि।
क्या ले गुर संतोषिए, हौस रही मन मांहि ॥4

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "गुरुदेव की अंग" से ली गई है।

व्याख्या- गुरु ने राम-नाम का जो अमूल्य मन्त्र दिया है उसके बदले में देने के लिये मेरे पास कुछ नहीं है। क्योंकि उस राम-नाम के सम्मुख समस्त वस्तुएँ तुच्छ और हेय हैं, फिर भला में क्या देकर गुरुदेव को सन्तुष्ट करू-यही प्रवल अभिलाषा मेरे मन में हुमक कर रह जाती है।

विशेष- उपमान न मिलने से उपमानलुप्ता उपमा।

(25)

सतगुर के सदकै करूं, दिल अपणी का साछ।
कलियुग हम स्यूं लडि पड्या, मुहकम मेरा बाछ ।।5।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "गुरुदेव की अंग" से ली गई है।

व्याख्या- मैं सद्गुरु पर प्राणपण से न्यौछावर हूँ एवं अपने हृदय को साक्षी करके कहता हूँ कि कलिकाल अर्थात् विविध मायामोह के प्रपच मुझसे मुझ रहे हैं, पापों का और मन का संघर्ष चल रहा है, किन्तु शक्तिसम्पन्न गुरुवर मेरे रक्षक है, अतः पाप-पुज मुझे परास्त नहीं कर सकते।

विशेष- मानवीकरण ।

(26)

सतगुरु लई कमांण करि, बाँहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतरि रह्या सरीर ॥6।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "गुरुदेव की अंग" से ली गई है।

व्याख्या- सद्गुरु ने हाथ में धनुष धारण कर लिया एवं तीरों की वर्षा करने लगे अर्थात् अध्यवसायपूर्वक, प्रयत्नपूर्वक शिष्य को उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। इन उपदेश

बाणों में एक बाण इस प्रकार प्रेमपूर्वक चलाया जिसने अन्तर को बेधकर हृदय में घर कर लिया। हृदय तक बाण को पहुँचने के लिये मध्य के समस्त अन्धावरण बेधने पड़े हैं, इसीलिए वह हृदय में जाकर रह गया। यह बाण था प्रेम का।

विशेष- रूपकातिशयोक्ति (केवल उपमान पक्ष धनुष-बाण का उल्लेख होने से), भक्ति-रस।

(27)

सतगुर सांचा सूरिवों, सवद जु बाह्या एक।
लागत ही मैं मिल गया, पड्या कलेजे छेक ।।7।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "गुरुदेव की अंग" से ली गई है।

व्याख्या- सद्गुरु सच्चे शूरवीर हैं। जिस प्रकार रणभूमि में सूर अपने विरोधी पक्ष को बाण-वर्षा से परास्त कर देता है, उसी प्रकार उस सद्गुरु रूपी शूर ने 'शब्द' (उपदेश) का बाण चलाया। उनके लगते ही मेरा 'मैं' अर्थात् अहं नष्ट हो गया अथवा उसके लगते ही मेरा आत्म-ज्ञान से साक्षात्कार हो गया। उस बाण के लगते ही हृदय में प्रेम की टेक का छिद्र हो गया। तात्पर्य यह है कि यह प्रेम उस सद्गुरु के उपदेश रूपी बाण का ही परिणाम है।

विशेष- सांगरूपक अंलकार ।

(28)

सतगुर मार्या बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि।
अंगि उघाड़े लागिया, गई दवा सूं फूटि ॥8 ॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "गुरुदेव की अंग" से ली गई है।

व्याख्या- सद्गुरु ने साधक के ऊपर यह उपदेश-बाण पूर्ण शक्ति से खीचकर एवं मूठ को लक्ष्योन्मुख करके सीधा कर मारा जिससे दावाग्नि सी फूट पड़ी। समस्त वासना, माया

आदि जल-जलकर क्षार होने लगे एवं साधक शरीर के वस्त्र, माया आदि आवरण, उतार कर फेंकने लगा अर्थात् उसका वस्तुस्थिति से साक्षात्कार हो गया।

विशेष- उपमा एवं सांगरूपक अलंकार ।

(29)

हँसै न बोलै, उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि।
कहे कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियारि ।।9।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "गुरुदेव कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- योग की उन्मन दशा का वर्णन करते हुए कबीरदास जी कहते हैं कि मन की चंचल वृत्तियों को समाप्त कर सद्गुरु के के उस उपदेश के (प्रेम के) बाण ने हृदय को बेध दिया। परिणामस्वरूप शिष्य न हंसता है और न बोलता है अर्थात् सांसारिक हासविलास तथा राग विलास से असम्पृक्त हो गया है।

विशेष- 1. रूपकातिशयोक्ति । प्रयोजनवती गूढ़ व्यंग्या लक्षणा। शिष्य में चंचलता का अत्यन्ताभाव व्यंग्य है।

2. उन्मनी अवस्था- हठयोग या राजयोग की सिद्धावस्था है, जिसमें मन समाधिस्य होकर पहुँचता है।

(30)

गूंगा हूवा बाबला, बहरा हुआ कान।
पाउं थैं पंगुल भया, सतगुर मार्या बाण ।।10।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "गुरुदेव कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- सद्गुरु के उपदेश-बाण के लगते ही शिष्य गूंगा, पागल कानों से बहरा और पैरों से लँगड़ा हो गया। भाव यह है कि शिष्य वाणी का दुरुपयोग व्यर्थ के वाद-विवाद में नहीं करता एवं उसके कान भी प्रेम-भक्ति चर्चा के अतिरिक्त अन्य विषयों के लिए बहरे

हैं एवं सांसारिक प्रयत्न से विरत होने के कारण लंगड़ा हो गया। इस विशेष स्थिति के कारण ही उसे पागल बताया गया है।

विशेष- गूढ़ व्यंग्या प्रयोजनवती लक्षणा । शिष्य को प्राप्त होने वाली परमशान्ति व्यंग्य है।

सुमिरण कौ अंग (साखी 1 से 10) -

(31)

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ ।
राम कहें भला होइगा, नहिं तर भला न होइ ।।1।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "सुमिरण कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीरदास जी कहते हैं कि मैं यह निरन्तर प्रस्थापित करता आ रहा हूँ कि राम-नाम जपने से ही कल्याण होगा अन्यथा आचरण में कल्याण सिद्ध नहीं होगा; इस बात को सुनते तो सब है, किन्तु आचरण नहीं करते ।

विशेष- शब्द-योजना से कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस ।

(32)

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नांव ततसार है, सब काहू उपदेस ।।2।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "सुमिरण कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीरदास जी कहते हैं कि मैं यह कह चुका हूँ कि राम नाम (भगवान् नाम) ही समस्त तत्वों का सार है, यही सबका उपदेश है। इसी तथ्य का कथन ब्रह्मा एवं शिव ने किया है। विशेष- मिथ्य बिम्ब के द्वारा कथ्य को प्रभावपूर्ण बनाया गया है।

विशेष- मिथ्य बिम्ब के द्वारा कथ्य को प्रभावपूर्ण बनाया गया है।

(33)

तत तिलक तिहुँ लोक मैं, राम नांव निज सार।
जन कवीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार।।3।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "सुमिरण कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- सार-तत्व राम-राम तीनों लोकों मस्तक पर धारण किया है अर्थात् उसे शिरसा स्वी का तिलक धारण करना नहीं चाहते, अपितु राम नाम ही उनके लिए तिलक है, सर्वोपरि तत्व है।

विशेष- रूपक द्वारा राम-नाम की महता को मूर्तिमान किया गया है।

(34)

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा कर्मनां, कबीर सुमिरण सार ।।4।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "सुमिरण कौ अंग से ली गई है।

व्याख्या- प्रभु भक्ति और भजन जो क जो अन्य साधन बताये गये हैं वे अमित दुःख कर्म से सर्वात्मना प्रभु नाम स्मरण ही सर्वश्रेष्ट है।

विशेष- इसमें कबीर निर्गुण सम्प्रदाय के होते हुए भी हरि-कीर्तन को महत्व देते हैं, इससे यह ज्ञात होता है कि भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव उनके समय तक बहुत व्यापक हो गया था। सूफियों में भी स्मरण का महत्व है, अतः कीर्तन को महत्व प्रदान करने में कबीर को कोई कठिनाई नहीं हुई।

(35)

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौ काल ।15।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "सुमिरण कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि एकमात्र प्रभु नाम स्मरण ही समस्त तत्वों का सार है और इसके अतिरिक्त हरि भक्ति के अन्य सांसारिक साधन जाल हैं जिनमें से निकलने का प्रयत्न करने पर मनुष्य और फैस जाता है। मैंने सांसारिक साधनों का आदि और अवसान अथवा अथ से इति तक अवलोकन करके देख लिया, वे काल स्वरूप विनाशकारक है।

विशेष-रूपक अलंकार ।

(36)

च्यंता तौ हरि नाँव की, और न चिंता दास।
जे कुछ चितवें राम बिन, सोइ काल की पास ॥6 ।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "सुमिरण कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- भक्त को यदि कुछ चिन्ता रहती है तो केवल हरिनाम स्मरण की, अन्य कोई चिन्ता नहीं। राम नाम के अतिरिक्त व्यक्ति जो कुछ चिन्तन करता है, वह मृत्यु के फन्दे के समान है, अर्थात् उसके नाश का कारण है।

विशेष- अन्तिम पंक्ति में अप्रस्तुत के धर्म का अरोप प्रस्तुत पर है, अतः निदर्शना अलंकार है।

(37)

पंच संगी पिव पिव करै, छठा जु सुमिर मंन।
आई सूति कबीर की, पाया राम रतंन ।।7।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "सुमिरण कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कवीरदास को पाँचों ज्ञानेन्द्रियों एवं छठे मन ने प्रभु के प्रिय नाम की स्ट (चातक के समान क्योंकि पीव' शब्द है) लगा रखा है और ऐसी स्थिति में कबीर अपनी

समाधि अवस्था में पहुंच गये है, जहां उन्हें राम के अतिरिक्त और कोई नहीं सूझता। अतः वे कहते हैं कि मैंने राम रूपी रत्न प्राप्त कर लिया है।

विशेष- रूपकातिशयोक्ति तथा रूपक ।

(38)

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं है रहाण, सीस नवाबों काहि ।॥8॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "सुमिरण कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि राम-नाम का स्मरण करते-करते मेरा मन स्वयं ही राम में ही रम गया है और इससे भी आगे अब वह स्वयं राममय हो गया है। जब स्वयं मन ही राममय हो गया तो सीस किसे नवाजा जाय, अर्थात् भक्त और भगवान ही नाम स्मरण से एक हो गये हैं।

विशेष- यह भक्ति की चरम उपलब्धि है जब भक्त और भगवान् एकाकार हो जाते हैं। यही शकर के अद्वैत की अहं बह्मास्मि की भावना आ जाती है।

(39)

तूं तूं करता तूं भया, मुझ मैं रही न हूँ।
बारी फेरी बलि गई, जित देखौ तित तूं ॥9 ॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "सुमिरण कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- हे प्रभु मैं तेरा नाम स्मरण करते-करते तेरे स्वरूप में ही विलीन हो गया, मुझमे अहत्व शेष नहीं रह गया, अर्थात् मुझे अपने पृथक् अस्तित्व का ज्ञान हो न रहा। अब ऊपर बार-बार बलिहारी जाता है क्योकि जिधर देखता हूँ, उधर तू ही दृष्टिगत होता है। किवित् भी में प्रभु तेरे ऊपर बार-बार बलिहारी जाता हूँ क्योंकि जिधर देखता हूँ, उधर तू ही दृष्टिगत होता है।

विशेष- सर्व खल्विद बद्ध की भावना से साम्य है।

(40)

कबीर निरभै राम जपिए, जब लग दीवै बाति।
तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति ।।10 ।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखो "सुमिरण कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य। जब तक तेरे शरीर रूपी दीपक में जीवन रूपी वर्तिका है, तब तक तू सांसारिक भ्रमों एवं बिन्ताओं से मुक्त होकर राम नाम का स्मरण कर । व्यर्थ आलस्य-सुषुप्ति में अपना जीवन मत गंवा, क्योंकि जब श्वास रूपी तेल समाप्त हो जाने पर जोवन-वर्तिका बुझ जायेगी तव अहर्निश चिरनिद्रा (मृत्यु) में ही सोवेगा, अर्थात् प्रभु भक्ति के लिए हो तुझे यह जीवन मिला है।

विशेष- रूपकातिशयोक्ति ।

विरह कौ अंग (साखी 1 से 10) -

(41)

रात्यूं रूंनी बिरहनी, ज्यूं बंची कूं कुंज।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज ।।1।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "विरह कौ अग" से ली गई है।

व्याख्या- परम तत्व की विरहिणी आत्मा रात्रि भर इस प्रकार रोती रही, जिस प्रकार वियुक्त जाँच पक्षी करुण बीत्कार करता रहा है। कबीर जी कहते हैं कि विरह समूह के प्रकट होने से हृदय वियोग ज्याला में दग्ध हो रहा है।

विशेष- रूपक । प्रस्तुत रूपक में रूढ़ मिथ्य का प्रयोग है। सुमित्रानन्दन पन्त ने भी कविता की उत्पत्ति के संबंध में इस मिथ्य का प्रयोग किया है।

(42)

अंबर कुंजां कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिनि थे गोबिद बीजुदे, तिनके कौण हवाल ।।2।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "विरह कौ अंग" से लो गई है।

व्याख्या- आकाश ने क्रीच एवं कुररि पक्षियों की विरहानुभूति पर करुणाई हो बरस कर समस्त ताल जल से परिपूर्ण कर दिये, इन विरहियों की पुकार तो बादल ने सुन भी ली किन्तु जो प्रभु वियुक्त है उनका रक्षक तो (प्रभु के अतिरिक्त) और कोई नहीं है।

विशेष- शब्द-शक्ति उद्भव वस्तु से अलंकार ध्वनि है, व्यतिरेक अलंकार ध्वनित है।

(43)

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन विछुटे राम सुं, ते दिन मिले न राति ।।3।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "विरह कौ अग" से ली गई है।

व्याख्या- रात्रि की बिछुड़ी हुई चकवो अपने चकवे से प्रभात के आगमन पर मिल जाती है, किन्तु जो राम से वियुक्त हैं वे तो दिन या रात कभी उनसे मिल नहीं पाते।

विशेष- 1. एक प्रकार से कबीर के इस वियोग का उद्दीपन विभाव-वर्णन है जिसमें विरहिणी आत्मा को एक वियुक्तयुग्म का मिलन देखकर अपना मिलना खटकता है।

2. यह विश्वास है कि चकवा और चकवी दिन छिपते ही अलग-अलग हो कर एक-दूसरे के विरह में तड़पते हैं और प्रभात में मिल जाते हैं।

(44)

वासुरि सुख, नां रैणि सुख, नाँ सुख सुपिनै माहि।
कबीर बिछुट्या राम सूं, नां सुख धूप न छाँह ।।4।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीर जी कहते हैं कि रामवियोगी को न दिन में और न रात में सुख है और न स्वप्न में-उसे प्रिय की वियोग-व्यथा की व्यथित किये रहती है। धूप या छाँह-कही भी उसे सुख प्राप्त नहीं होता ।

विशेष- प्रस्तुतालंकार, विप्रलम्भ श्रृंगार ।

(45)

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी वूझे धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कबर मिलेंगे आइ ॥5॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- विरहिणी मार्ग में प्रिय की प्रतीक्षा में खड़ी आते-जाते पथिक से जिस प्रकार उत्कण्ठा सहित प्रिय आगमन का समाचार पूछती है उसी प्रकार साधक की बह्म वियुक्त आत्मा गुरू से प्रिय (बह्म की) चर्चा सुनती हुई यह जानना चाहती है कि प्रभु से कब भेट होगी।

विशेष- प्रस्तुतालंकार (लौकिक एवं आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना एक ही विभाव के माध्यम से युगपत के रूप से हो रही है, अतः यहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत का निर्णय न होने से प्रस्तुतालंकार है ।)

(46)

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम ।
जिव तस्सै तुझ मिलन के, मनि नाहीं विश्राम ।।6 ।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- हे राम ! में (विरहिणी आत्मा) तुम्हारी प्रतीक्षा बहुत समय से कर रही हूँ। मेरे प्राण तुम्हारे दर्शन के लिये तृषित है और मन विना दर्शन व्याकुल है।

विशेष- प्रस्तुतालंकार, विप्रलम्भ श्रृंगार ।

(47)

बिरहिन ऊठै भी, पड़े दरसन कारनि राम।
मूवां पीछै देहुगे, सो-दरसन किंहि काम ।।7 ।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- हे राम। यदि आपके दर्शनों की उत्सुकता में विरहिणी उठती भी है तो क्षीणकाय होने के कारण गिर-गिर पड़ती है, अर्थात् आपके विरह में वह अत्यन्त कृशकाय हो गई है। उससे मरणोपरान्त यदि आपने रोग निवारक सुदर्शन चूर्ण-अपना सौन्दर्यमय स्वरूप दर्शन दिया तो वह किस प्रयोजन का ?

विशेष- "का वर्षा जब कृषी सुखाने" से तुलना कीजिए।

(48)

मुवां पीछैं जिनि मिलै, कहै कबीरा राम।
पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कोणें काम ।।8।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीर जी कहते हैं कि हे प्रभु। यदि आपका दर्शन मृत्यु के पश्चात् हुआ तो वह किस प्रयोजन कर? वह तो उसी प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार कोई पारस पत्थर की प्राप्ति के लिए लोहे को प्रत्येक पत्थर से घिर कर समाप्त कर दे और तब उसे पारस पत्थर की प्राप्ति हो।

विशेष- प्रस्तुतालंकार है। दृष्टान्त अलंकार द्वारा वेदना की व्यंजना में सहायता मिली है। वियोग श्रृंगार का उत्तम परिपाक है।

(49)

अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेशौं कहियां।
कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पास गयां ।।9।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- विरहिणी आत्मा किसी दूत से कहती है कि मेरी प्रिय मिलन में असफलता की आशंका नष्ट नहीं होती। अतः तुम प्रभु से कहना कि या तो वे स्वयं भागकर शीघ्र मेरे पास आ जायें, अथवा फिर मुझे ही उनके पास आना पड़ेगा।

विशेष- प्रस्तुतालंकार है। विप्रलम्भ श्रृंगार का उत्तम परिपाक हुआ है।

(50)

आइ न सकौं तुज्झ पैं, सकूं न तुझे बुलाइ।
जियरा यौं ही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ ।।10।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीर की वियोगिनी आत्मा कहती है कि मैं तेरे पास भी नहीं आ सकती क्योंकि मैं इतनी समर्थ नहीं हूँ। (भाव यह है कि मैं अभी माया में संलिप्त हैं) और तुझे अपने पास नहीं बुला सकती क्योंकि मैं अभी सर्वात्म-समर्पण नहीं कर सकी, जो तुझे आकृष्ट कर मेरे पास तक ले जाये। अतः यही दिखाई देता है कि तुम हमारे प्राणों को इसी प्रकार विरह में तपाते-तपाते समाप्त कर दोगे ।

विशेष- प्रस्तुतालंकार । विप्रलम्भ श्रृंगार का उत्तम परिपाक ।

ग्यान विरह कौ अंग (साखी 1 से 10) -

(51)

दीपक पाबक ऑणिया, तेल भी आण्या संग ।
तीन्यूं मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ें पतंग ।।1।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "ग्यान विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- जीवात्मया रूपी दीपक में ज्ञार-ज्योति प्रज्वलित कर तथा उसमें स्नेह (तेल) डालकर प्रदीप्त किया। इस प्रकार जब तीनों आत्मा, ज्ञान एवं स्नेह मिलकर एकत्रित हो प्रदीप्त हुए तब उसकी अग्नि शिक्षा में विषय वासना रूपी पतंगे गिर-गिरकर नष्ट होने लगे।

विशेष- रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

(52)

मार्या है जे मरेगा, बिन सर थोयी भालि।
पड्या पुकारै बिछ तरि, आज मरें के काल्हि ।।2 ।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "ग्यान विरह कौ अग" से ली गई है।

व्याख्या- जो मारा गया है वह तो बिना फलक के उंछे भाले से ही मर सकता है। भाव यह है कि मरण के लिए हिसापूर्ण शस्त्रों की आवश्यकता नहीं, अपितु जीवन्मुक्त होने के लिए प्रेम का बाण ही पर्याप्त है। उस बाण के लगते ही वह वेदनाकुल होकर संसार-वृक्ष के नीचे पड़ा कराह रहा है, पीड़ा का अनुभव कर इस प्रतीक्षा में है कि वह आज जीवन्मुक्त होगा या कल। अथवा यह संसार वृक्ष के नीचे पड़ा वेदनाकुल है आज या कलमें ही अर्थात् शीघ्र ही उसे प्रिय की प्राप्ति हो जायेगी।

विशेष- 1. यहाँ रूपक तया विभावना को संसृष्टि है। 2. अलंकार से वस्तु-ध्वनि है। ध्वनित वस्तु साधक को मनोदशा और गुरु की महत्ता है।

(53)

हिरदा भीतरि दो बलै, धूवां न प्रगट होइ।
जाकै लागी सौ लखै, के जिहि लाई सोइ ॥13॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "ग्यान विरह कौ अंग से ली गई है।

व्याख्या- हृदय के भीतर प्रेम की दावाग्नि धधक रही है किन्तु उसका धुओं प्रकट नहीं होता, वह तो भीतर हो भीतर जलती रहती है। इस अग्नि का अनुभव तो दो हो कर सकते हैं, या तो वह जिसके हृदय में यह अग्नि धधकती है और या फिर वह जो इस अग्नि को लगाने वाला है। शेष संसार इस अग्नि का धुआँ अर्थात् कुछ भी चिन्ह नहीं देख पाता।

विशेष- रूपकातिशयोक्ति तथा विशेषोक्ति। अलंकार से अलंकार-ध्वनि का प्रयोग है। व्यतिरेक अलंकार ध्वनित है।

(54)

झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही विभूति ॥4॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "ग्यान विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- योगाग्नि प्रज्वलित होने पर शरीर की झोली तो जलकर भस्म हो गई और खोपड़ी रूपी खप्पर टूट-फूट गया। योगी की आत्मा तो परम तत्व से मिल गई, उसके समाधि-स्थान पर तो केवल शरीर की राख ही अवशिष्ट रह पाई। भाव यह है कि आत्मा के महामिलन में योगी को वेशादि बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती।

विशेष- रूपकातिशयोक्ति द्वारा साधक की सिद्धावस्था को व्यंजित किया गया है, अतः यहाँ अलंकार से ध्वनित वस्तु-ध्वनि है।

(55)

अगनि जु जागी नीर मैं, कटूं जलिया झारि।
उतर दषिण के पंडिता रहे विचारि विचारि ॥5॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "ग्यान विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- माया रूपों जाल में ज्ञानाग्नि लग जाने से विषय वासना का पंक जल कर समाप्त हो गया। इस अद्भुत कृत्य को देख (कि पानी में आग कैसे लग गई) उत्तर से लेकर दक्षिण तक के ज्ञानी विचार-विचार कर रह गये, किंतु यह रहस्य उनकी समझ में न आया।

विशेष- रूपकातिशयोक्ति के द्वारा साधक को सिद्धावस्था व्यजित हुई है। पूरी साखी में व्यतिरेक अलंकार ध्वनित है, इस तरह से अलंकार से अलंकार ध्वनित है।

(56)

दौं लागी साइर जल्या पंषी बैठे आइ़।
दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाय ॥6॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "ग्यान विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- ज्ञानाग्नि के लगने से वासना का सागर का सागर भस्म हो गया और नवीन सृष्टि में (ज्ञानयुक्त होने पर) वैराग्य, विवेक, करुणा आदि गुणों के पक्षी आकर

चहचहाने लगे। इस दग्ध वासना-शरीर का में पुनः पल्लवित नहीं होने दूंगा क्योंकि सतगुरु ने ज्ञान-अग्नि लगा दी है।

विशेष - रूपकातिशयोक्ति अलंकार द्वारा परम सिद्धि रूपी वस्तु ध्वनित हुई है।

(57)

गुर दाधा चेला जल्या विरहा लागी आगि।
तिपाका बपुड़ा ऊबर्या, गलि पूरै कै लागि ॥7॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "ग्यान विरह कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- गुरु के पारिन को इलित किया उसने बेला जल गयर अर्थात् प्रभु-प्रेम में धार हो गया किन्तु इसको किरात से भी हुआ जब तुल्य स्वता अस्तित्वहोर आयपूर्ण बा में लीन हो गई। भाव यह है कि प्रभु मिलर से ही युति हो सकती है।

विशेष- रूपातिशयोक्ति अलंकार अलंकार में सिद्धि रूप वस्तु धारित है।

(58)

अहेड़ी दो लाइया, मृग पुकारे रोइ।
जा बन मैं कोला करी दागात है बन सोइ ॥8॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "ग्यान विरह कौ अग से ली गई है।

व्याख्या- सद्गुरु रूपी आखेटक ने माया के विषय-वासनायुक्त वन में ज्ञान की अग्नि लगा दी। जीव रूपी मृग यह पुकार कर रो उठे कि जिस वन में हमने क्रीडायें कर सुख भोग प्राप्त किया वही जल रहा है।

विशेष- मृगों को पकड़ने या मारने के लिए आखेटक सम्पूर्ण वन में आग लगा देते हैं। वन में आग लगती देख मृग सम्मुख आ जाते हैं और आखेटक उन्हें अपने बाणों का लक्ष्य बना लेता है। यही रूपक कबीर ने यहाँ प्रयुक्त किया है।

(59)

पाणी मांहैं प्रजली, भई अप्रबल आगि।
बहती सलिता रह गई मंछ रहे जल त्यागि ॥9॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "ग्यान विरह की अग से ली गई है।

व्याख्या- विषय- वासनारूपी जल में ज्ञान की आग लगाकर तीव्र वेग से फैल गई। ज्ञान सम्पूर्ण माया वन्धन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। माया की सरिता का प्रवाह रुक जाने से जीवों ने जल-संसार का परित्याग कर दिया अर्थात वे जीवन्मुक्त हो गये।

विशेष- इस साखी में सिद्ध नाथों के रुढ़ प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।

(60)

समंदर लागी आगि नदियां जलि कोयला भई।

देखि कबीरा जागि मंछी रूषां चढ़ि गई ॥10॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी " ग्यान विरह कौ अग से ली गई है।

व्याख्या- संसार समुद्र में ज्ञान की अग्नि लग गई जिससे विषय वासना और सांसारिक आकर्षणों को सरितायें जल के कोयले के समान शुष्क हो गई किन्तु कितनी ही मछलियाँ रूपी आत्माएँ इस विनाश चक्र में न पड़ी। वे तो अपनी साधना द्वारा ब्रह्मलीन हो गई (रुषा चढ़ि गई) अतः हे कबीर ! इस स्थिति को देखकर जाग और साधना द्वारा तू भी ब्रह्म को प्राप्त कर।

विशेष- विरोधाभास अलंकार।

परचा कौ अंग (साखी 1 से 10) -

(61)

कबीर तेज अनंत का, मानौ ऊगी सूरज सेणि।

पति सँगि जागी सुन्दरी, कौतिग दीठा तेणि ।।10।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखों "परचा कौ अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि उस परमात्मा के सौन्दर्य का तेज ऐसा भासमान है मानो अनेक सूर्यों की श्रेणी अथवा सेना उदित हुई हो। पति अर्थात् स्वामी (क्योंकि आत्मा 'राम

को बहुरिया) बस के साथ (अज्ञानरात्रि से) जागकर उसने यह सौन्दर्यमय आश्वयंपूर्ण दृश्य देखा।

विशेष- अज्ञानरात्रि से केवल आत्या ही जागती और तब प्रिय परमात्मा का संयोग था वह आरन्दमय दृश्यावलोकन करती है।

(62)

कौलिग दीठा देह विन् रवि ससि बिना उजास।
साहिव सेवा मांहि है, बेपरवाही दास ।।2।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "परचा को अंग" से ली गई है।

व्याख्या- जिस स्वामी-जय-का सौन्दर्य देखा गया वह अशरोरो था, निराकार के सौन्दर्य का ही वह दर्शन था। यह उसी के समान था जैसे कोई सूर्व और चन्द्र प्रकाश का दर्शन करें। (सत्य तो यह है कि) प्रभु जन सेवा से ही प्राप्न हो जाता है। देखकर केवल मात्र उसके है, उसमें भक्त भी निश्विन्त

विशेष- (1) "साहिब सेवा माडि से तात्पर्य जन-सेवा इसलिए है कि जन सेवा ही वस्तुतः नारायण सेवा है मनुष्य उसी का तो अश है। अंश की सेवा अशी की ही सेवा है। कबीर का यह दृष्टिकोन अत्यन्त मामाजिक और लोकमंगल की भावना से ओत-प्रोत है।

(2) विभावना अलंकार

(63)

पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिवे के सोभा नहीं, देख्या ही परवान।।3।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "परचा की अंग से ली गई है।

व्याख्या- उस प्रभु के तेजयुक्त सौन्दर्य को वाणी द्वारा नहीं कहा जा सकता, कहने में उस अनुपम रस की शोभा ही नही। उस सौन्दर्य का अनुमान भी कोई नहीं लगा सकता, वह तो एकमात्र दर्शन का ही विषय है।

विशेष- विशेषोनि अलंकार।

अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति।

जहाँ कविरा बंदिगी, (तहा) पाप पुण्य नहीं छोती ॥4॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखो पाना को अंग से ली गई है।

व्याख्या- वह पाप-तत्व अगम्य और अगोचर है (साधारण व्यक्तियों के लिए साधना में तो उसको प्राप्ति हो ही जाती है। इसलिए जहाँ उस परमात्मा को ज्योति अपना प्रकाश विक्री करतो है वह स्थान भी अगम्य और अगोचर है। कबीर जिस ब्रह्म सम्मुख शिरसा श्रद्धावस्त है. वह पाप-पुण्य और छुआछूत सबकी परिधि से परे है अर्थात् सब उसका भजन कर सकते हैं।

विशेष- विरोधाभास अलंकार।

(65)

हदे छाड़ि बेहदि गया हुआ निरंतर वास।

कवल ज फूल्या फूल बिर को निरर्ष निज दास ॥5॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "परवा की अग' से ली गई है।

व्याख्या- जब में संसार से अपना संबंध विच्छिन्न का निस्सीम की साधना में प्रवृक्त हुआ तो मैं उसको सोमा में ही स्टिलर रहने लगा अर्थात् आत्मा और परमात्मा का मिलर हो गया। वहाँ पहुंच कर मेरे देखा कि एक कमल बिना मुगाल के भी वहाँ प्रफुल्ल विकास पा रहा है (संसार माया से असम्युक्त ईश्वर का सौन्दर्य मृगाल के कमल का विकास है, जीवात्मा के सन्दर्भ में भी यह अर्थ लगाया जा सकता है कि इस संसार में माया-जनित्र आकर्षणों में हो वह आनन्द पाता था किन्तु रिस्मीय की सीमा में पहुंचकर बिना इस माया से जुड़े भी वह आनन्द पा रहा है)। इसको प्रभु भक के अतिरिक अन्य कोई नहीं देख सकता।

विशेष- "फूल्या फूल बिन" में फूल से तात्पर्य उस कमल मृणत से ही है. जिसके द्वारा वह अपना जीवन रस प्ररण करता है। यदि 'फूल' का अर्थ 'पल' हो लगाया जाये तो कमल के खितरे की बात को कोई तुक नहरों बैठती।

(66)

कबीर मन मधकर भया रहा निरंतर बास।

कवल ज फुल्या जलह बिर को देखे निज दास ॥6॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "परचा को अंग से ली गई है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि मैंने ऐसा कमल (परमात्मा) देखा है जो बिनरा जल (माया) के भी, विकसित हो रहा है (आनन्द उठा रहा है। ऐसा अनुपम केवल वही है अन्य कोई नहीं। मेरा मन उस कमल का प्रेमी भ्रमर हो गया एवं उसके सम्पुट में ही निरन्तर निवास करने लगा अर्थात् उसी में लीन हो गया।

विशेष- रूपक तथा विभावना को समृष्टि के साथ परिसंख्या का संकर भी हो गया है. इससे सूक्ष्म को मूर्तिमान कराने में सफलता मिल सकी है।

(67)

अंतरि कवल प्रकासिया, ब्रहम वास तहां होइ।

मन भंवरा तहां लुबधिया, जांपीना जन कोइ ॥17॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "परवा को अंग" से ली गई है।

व्याख्या- मेरे हृदय के भीतर कमल खिल रहा है अथवा मेरे शरीर के भीतर कमल विकसित हो रहा है। जिसमें बड़ा का निवास है। मेरा मन रूपी भ्रमर उस कमल रस के पान करने के लिए लालयित हो गया है, इस रहस्य को बिरले भक्त ही जान सकते हैं (इसका माक्षात्कार कुछ बिरलों को ही होता है।)

विशेष- योग पथ में शोश में सहस्वदल कमल की स्थिति मानी गई है। योगपंथियों की मान्यता है कि यही ब्रा का निवास है जहाँ से निरन्तर अमृत स्ववित होता है। इस कमल को स्थिति हृदय में भी मानकर सन्तों ने वर्णन किया है। अन्तर' का अर्थ हृदय लिया जाय अथवा 'शरीर के भीतर प्रत्येक दशा में कबीर का तात्पर्य सहस्वदल कमल से ही है।

(68)

सायर नाहीं सीप बिन् स्वांति बूंद भी नांहि।
कबीर मोती नीपदै, सुन्नि सिषर गढ़ मांहि ॥8॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "परचा की अंग से ली गई है।

व्याख्या- कबीरदास कहते है जहाँ सागर, सीप एवं स्वाति नक्षत्र की बूंद-मोती की उत्पति का एक भी उपादान नहीं है। ऐसे शून्य शिखर (सहस्त्रदल कमल के पास ही या उसके भीतर शून्य को स्थिति) पर प्रभु के दर्शनानन्द के मोती उत्पन्न होते हैं।

विशेष- यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

(69)

घट मांहै औघट लहार, ओघट माई घाट।
कबि कबीर परचा भया, गुरु दिखाई बाट ॥9॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "परचा की अंग" से ली गई है।

व्याख्या- कबीरदास कहते हैं कि सद्गुरु ने जो मार्ग दिखाया उसी के द्वारा अपने हृदय में उस बा के दर्शन हो गये। गुरु द्वारा प्रशस्त यह पन्च योग-पन्थ ही है। इसी के द्वारा जिसे (मूर्ख लोगों द्वारा) कुमार्ग (दुर्गम साधना) कहा जाता है, मैने अपना लक्ष्य (घाट) प्राप्त कर लिया।

विशेष- रूपकातिशयोक्ति द्वारा इस शरीर या संसार को हो घाट कहा गया है। यही एक घाटत है तथा दूसरा घाट परमतत्व है, जो वस्तुतः अवघट है अर्थात् घाट है भी, नहीं भी है. इसी को विरोधाभास के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

(70)

सूर समांणां चंद में दहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तव भया कछू पूरुबला लेख ॥10॥

प्रसंग- प्रस्तुत साखी "परचा की अंग" से ली गई है।

व्याख्या- साधक कबीर कहते हैं कि पिंगल नाड़ी इड़ा में समा गई और दोनों ने सुषम्ना नाड़ी को ही अपना घर-मार्ग बना लिया। इन दोनों के एकत्रित होकर सुषुम्ना वास से ही कुण्डलिनी ऊपर ब्रह्माण्ड-सहस्त्रदल-की ओर उन्मुख हुई और सहस्वदल तक पहुँच कर अमृत कर पान करने लगी। यह मेरा मनचाहा हुआ, जो किसी पूर्वजन्म के सुकृत्यों का हो फल है।

विशेष- योग पन्च की मान्यतानुसार मेरूदण्ड के बायीं ओर इड़ा, दाहिनी ओर पिंगला और मध्य में सुषम्णा नाड़ी होती है। सुषुम्णा नाडी के मध्य में वज्रा, वड़ा के मध्य में चित्रिणी और चित्रिणी के मध्य में बहा नाड़ी होती है। इसी बह्य नाड़ी से लेकर कुण्डलिनी सहस्वदल कमल तक पहुँचती है, किन्तु यह तभी सम्भव है जब इड़ा और पिगला एक होकर सुषुम्णा में प्रवेश करें। यह कबीर को 'च्यंता' है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. कबीर.....ब्रह्म के उपासक थे।
2. कबीर.....काव्यधारा के अन्तर्गत आते हैं।
3. कबीर के.....गुरू थे।
4. कबीर की रचनाओं का संग्रह.....कहलाता है।
5. कबीर.....के प्रमुख कवि हैं।

3.5 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रमान्तर्गत भक्तिकालीन कवि कबीर के जीवन-परिचय एवं उनके द्वारा प्रणीत बीजक के विषय में विस्तृत अध्ययन किया। इस यूनिट की सामग्री के अध्ययन के पश्चात् आप कबीर द्वारा प्रणीत साखियों से भली-भांति परिचित हो चुके होंगे।

कबीर की विशिष्टता का सबसे बड़ा कारण यह है कि कबीर में एक ओर अद्वैतवाद का समावेश है, तो दूसरी ओर वे सूफी मत की प्रेम-साधना से भी ओत-प्रोत दिखाई देते हैं और उनमें मुस्लिम एकेश्वरवाद की भावना भी विद्यमान है। ऐसे ही एक ओर वे सिद्धों एवं नाथ सम्प्रदाय के हठ योग की साधना तथा सहजयानी सिद्धों की सहज भावना से परिपूर्ण दिखाई देते हैं, तो दूसरी ओर रामानन्द की भक्ति-भावना एवं वैष्णव मत से भी पूर्णतः प्रभावित है। यही एक 'सन्त' की सबसे बड़ी पहचान है और इसमें 'कबीर' खरे उतरे हैं। इसी कारण कबीर को ही सन्त-मत का प्रमुख प्रवर्तक माना जाता है और इसलिये वे सन्त-काव्यधारा के प्रमुख कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं।

अन्य सन्तों की भांति कबीर का काव्य भी सरल एवं सुबोध जनभाषा में मिलता है, परन्तु उसमें स्पष्टता एवं प्रभावोत्पादकता कहीं अधिक है। उसमें धार्मिक पाखण्डों, सामाजिक कुरीतियों, अनाचारों, पारस्परिक विरोधों को दूर करने की अपूर्व शक्ति है।

3.6 मुख्य शब्द

* मसि- स्याही
* नैहरौ- पीहर (मायका)
* दूजा- दूसरा
* विदेह- देहरहित

*जुग-युग

3.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. निर्गुण
2. सन्त
3. रामानन्द
4. बीजक
5. भक्तिकाल

3.8 संदर्भ सूची

1. **कपूर, श्याम चंद्र.** (2020). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन
2. **राय, बाबू गुलाब.** (2020). *हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास.* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल.
3. **शुक्ल, आचार्य रामचंद्र.** (2021). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन.
4. **सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद.** (2022). *हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि.* श्री विनोद पुस्तक मंदिर.

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. कबीरदास के जीवनवृत्त के विषय में लिखिए।
2. कबीरदास की भक्ति-भावना पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
3 कबीर की दार्शनिकता के विषय में वर्णन कीजिए।
4. 'कबीर का समाज-सुधारक रूप अप्रतिम है', सिद्ध कीजिए।
5. कबीर की काव्य-कला पर प्रकाश डालिए।
6. कबीर की प्रासंगिकता का वर्णन कीजिए।

ब्लॉक - II

इकाई - 4

जायसी

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 जायसी जीवनवृत्त

4.4 पदमावत् (मानसरोदक खण्ड पद क्रमांक की व्याख्या)

4.5 पद्मावत् (नागमती वियोग खण्ड पद क्रमांक की व्याख्या)

4.6 सार संक्षेप

4.7 मुख्य शब्द

4.7 सन्दर्भ सूची

4.8 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास के भक्ति काल में हिंदी के सूफी काव्य धारा के प्रमुख कवि जायसी ने अवधी भाषा में प्रसिद्ध पुस्तक 'पद्मावत' नमक महाकाव्य की रचना की थी, जायसी वेदना के अमर गायक है उनकी चित वृत्ति वियोग वर्णन में अधिक रमी है नागमती का विरह वर्णन पद्मावत का एक मार्मिक प्रसंग है यह विरह वर्णन अत्यंत सरस गंभीर और मार्मिक है।

इस इकाई में प्रेम मार्गी कवि जायसी के जीवन एवं उनके कृतित्व के विषय में आपको अवगत कराया जाएगा मलिक मुहम्मद जायसी हिंदी में सूफ़ी काव्य परंपरा के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। ये अमेठी के निकट जायस के रहने वाले थेए इसलिए इन्हें जायसी कहा जाता है। मलिक मुहम्मद जायसी की गणना हिन्दी के तीन श्रेष्ठ महाकवियों- कबीरदास, सूरदास और तुलसीदास जी के साथ किया जाता है। कबीरदास

जी की तरह मलिक मुहम्मद जायसी ने भी अपने प्रेम-मार्गी कविताओं के द्वारा हिंदू और मुसलमानों को एक करने की काफी कोशिश की, कबीरदास जी ने इसके लिए भक्ति का सहारा लिया और इन्होंने प्रेम का। जायसी सूफ़ी प्रेम-मार्गी शाखा के सबसे श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनकी प्रेम की तीव्रता, गहनता, सूफी पद्धति पर ही विकसित हुई है।

4.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के अंतर्गत भक्ति काल और धन कभी जायसी के काव्य का अवलोकन कर सकेंगे।
- जायसी की भाषा शैली एवं काव्य सौंदर्य आऊंगा तो पाएंगे
- जायसी की रहस्य भावना और उसके स्वरूप का समझ पाएंगे।
- जायसी के काव्य में विरह वर्णन

4.3 जायसी जीवनवृत्त

मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के जायस नामक कस्बे में सन् 1492 ईस्वी में हुआ था। मलिक मुहम्मद के नाम के पीछे जायसी शब्द उपनाम की तरह उपयोग किया जाता है। इस संबंध में उनका स्वयं भी कहना है-

जायस नगर मोर अस्थानू।
नगरक नांव आदि उदयानू।
तहां देवस दस पहुने आएऊं।
भा वैराग बहुत सुख पाएऊं॥

इनके पिताजी का नाम मलिक राजे अशरफ था। मलिक मुहम्मद ने बहुत कम उम्र में अपने पिता को खो दिया था और उसके कुछ सालों बाद उन्हें अपनी माँ के मातृत्व से भी वंचित होना पड़ा। बचपन में एक हादसे के कारण मलिक मुहम्मद एक आँख से अंधे हो गए थे और चेचक की बीमारी के कारण चेहरा भी खराब हो गया था। इस बारे में उन्हीं के इस दोहे को सन्दर्भ लिया जा सकता है-

मुहमद बाई दिसि तजाए एक सरवन एक आँखि।

जायसी की शिक्षा भी विधिवत् नहीं हुई थी। जो कुछ भी इन्होंने शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की वह मुसलमान फ़कीरों, गोरखपन्थी और वेदान्ती साधु.सन्तों से ही प्राप्त की थी। जायसी ने अपनी कुछ रचनाओं में अपनी गुरु-परम्परा का भी उल्लेख किया है। उनका कहना है, 'सैयद अशरफ, जो एक प्रिय सन्त थे मेरे लिए उज्ज्वल पन्थ के प्रदर्शक बने और उन्होंने प्रेम का दीपक जलाकर मेरा हृदय निर्मल कर दिया।' मलिक मुहम्मद जायसी के सात पुत्र थे और दुर्घटना में उनके सातों पुत्रों की मृत्यु हो गई थी, जिसके फलस्वरूप जायसी संसार से विरक्त हो गए और कुछ दिनों में घर छोड़ कर यहां वहां फकीर की भांति घूमने लगे। जायसी बड़े ही उदार, भावुक, आडम्बरहीन जीवन जीने वाले व्यक्ति थे। वे अत्यन्त काले और कुरूप लगते थे। एक दिन दरबार में उनकी कुरूपता को देखकर शेरशाह हंसने लगाए तो उन्होंने कहा- "**मोहि का हंससि कि कोहरहि**....."**अर्थात् तुम मुझ पर हंसे कि मुझे बनाने वाले कुम्हार (ईश्वर) पर हंसे**? यह सुनकर शेरशाह बड़ा ही लज्जित हुआ और उनका भक्त बन गया।

जायसी की रचनाएँ-

जायसी की 21 रचनाओं का उल्लेख मिलता हैं जिसमें पद्मावत, अखरावट, आख़री कलाम, कहरानामा, चित्ररेखा आदि प्रमुख हैं पर उनकी ख्याति का आधार पद्मावत ग्रंथ ही है। इसकी भाषा अवधी है और इसकी रचना शैली पर आदिकाल के जैन कवियों की दोहा चौपाई पद्धति का प्रभाव पड़ा है।'पद्मावत' का रचनाकाल उन्होंने 147 हिजरी ('सन नौ से सैंतालीस अह' पद्मावत 24) अर्थात् 1540 ई० बतलाया है। उनकी सबसे प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' भारतीय लोककथा पर आधारित हैं। इसमें सिंहल देश की

राज कुमारी पदमावती तथा चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की प्रेम-कथा का रोचक वर्णन है। इसमें रत्नसेन की पहली पत्नी नागमती के वियोग का अनूठा वर्णन है। 'पद्मावत' मसनवी शैली में रचित एक प्रबंध काव्य है। यह महाकाव्य 57 खंड़ों में लिखा है।

मलिक मुहम्मद जायसी की भाषा शैली-

मलिक मुहम्मद जायसी जी की भाषा का रूप ठेठ अवधी है। लेकिन कहीं-कहीं उसमें अपभ्रंश तथा अरबी और फारसी के शब्द भी मिलते हैं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में विभिन्नता देखते हुए इसमें बोलचाल की लोकभाषा का उत्कृष्ठ उपयोग तथा भाव का रूप देखने को मिलता है।

मलिक मुहम्मद जायसी का निधन-

मलिक मुहम्मद जायसी की मृत्यु को लेकर भी कई विरोधाभास हैं। क़ाज़ी सैयद हुसैन की अपनी नोटबुक के अनुसार सन् 1542 ईस्वी में मलिक मुहम्मद जायसी की मृत्यु हुई थी। अपनी रचनाओं के लिए प्रसिद्ध जायसी को अमेठी के राजा रामसिंह उन्हें बहुत मानते थे। अपने अंतिम दिनों में जायसी अमेठी से कुछ दूर एक घने जंगल में रहा करते थे। लोग बताते हैं कि अंतिम समय निकट आने पर उन्होंने अमेठी के राजा से कह दिया कि मैं किसी शिकारी के तीर से ही मरूँगा जिस पर राजा ने आसपास के जंगलों में शिकार की मनाही कर दी। जिस जंगल में जायसी रहते थे, उसमें एक शिकारी को एक बड़ा बाघ दिखाई पड़ा। उसने डर कर उस पर गोली चला दी। पास जा कर देखा तो बाघ के स्थान पर जायसी मृत अवस्था में थे। जायसी कभी-कभी योग बल से इस प्रकार के रूप धारण कर लिया करते थे।

4.4 पदमावत् (मानसरोदक खण्ड पद क्रमांक की व्याख्या)

एक दिवस पून्यों तिथि आई, मानसरोदक चली अन्हाई।

पद्मावति सब सखी बुलाई, जनु फुलवारि सबै चलि आई।
कोई चम्पा कोई कुन्द सहेली, कोई सुकेत करना रसबेली।
कोई सु गुलाल सुदरसन राती, कोई सो बकावरि बकचुन भाँती ।
कोई सो मौलसरि पुहुपावनी, कोई जाही जूही सेवती।
कोई सोनजरद को कोई केसर, कोई सिंगारहार नागेसर।
कोई कूजा सदबरग चौबेली, कोई कदम सुरस रसवेली।
चली सबै मालति संग, फूले कंवल कुमोद।
बेधि रहे गन गन्धरव वास परीमल मोद ।।

सन्दर्भ - प्रस्तुत पद्यांश जायसी रचित 'पद्मावत' के मानससोदक खण्ड से अवतरित है। कविवर जायसी प्रस्तुत अंश में पदमावती के स्थान, उसके सौन्दर्य एवं उसकी सहेलियों की स्थूल शोभा का वर्णन करते हैं। प्रस्तुत अंश के दो प्रकार के अर्थ किये जा सकते हैं। एक फुलवाड़ी परक अर्थ और दूसरा सखियों के पक्ष में। डॉ. अग्रवाल के अनुसार ये इस प्रकार है.

व्याख्या - कद्ध फुलवाड़ी परक अर्थ एक दिन कोई तिथि आई और पदमावती मानसरोवर के जल में नहाने चली। उसने सब सखियों बुलायी वे सब खिली फुलवाड़ी की तरह आयी। कोई सखी चम्पाएं कोई कुन्द कोई केतली, कोई करना, कोई रसवेल की भाँति थी। कोई लाल गुलाब (एक फूल) या सुदर्शन जैसी थी। कोई गुलाब कावली गुच्छों के समान विहंसती थी। कोई मौलसिरी की भाँति पुष्पों से लदी थोए कोई जाति और कोई यूथिका एवं सेवती के पुष्पों की भाँति थी। कोई सोनजरद, कोई केसर के समान थी, कोई हारसिंगार और नागकेशर जैसी थी। कोई पूजा के फूल, कोई हजारा गेंदा और कोई चमेली जैसी थी। कोई कदम्ब या सुन्दर रसवेल जैसी थी। वे सब मालती के साथ चली मानो कमल के साथ कोकावेली फूली हो। उसके सुन्दर सौरभ के भौरों के समूह वहीं बिध गये।

खद्ध सखियों के पक्ष में अर्थ एक दिवस कोई पर्व की तिथि आई और पद्मावती मानसरोदक में स्नान करने के लिए चल पड़ी। उसने अपनी समस्त सखियों को बुलाया और वे सब की सब इस प्रकार आ गयी मानो कोई पुष्पवाटिका ही आ गई हो। पद्मावती की सखियों में कोई सखी शरीर की चप्पी, कोई वस्त्रों की कुन्दी करने वाली थी। कोई राज भवन में पानी का प्रबन्ध करती थी, कोई गुलाब मालती और कोई केवल उसके दर्शन में अनुरक्त थी, कोई वाक्य चुन-चुन कर वाक्यावली कहती और विहंसती थी। कोई सुन्दर बोल कहती हुई पुष्पावती जैसी हो जाती थी अर्थात् जब वह बोलती उसके मुँह से मानो फूल झड़ते थे। कोई जाकर उसके स्थान को देखतों और सेवा करती थी। कोई केसरिया, जरदा या चावल का भोग लगाती थी। कोई हार से श्रृंगार करने में नागमती के समान थी। कोई सत्य के बल से चलने वाली चम्पा का तेल लगाकर हर्षित होती थी। कोई उसके सुन्दर चरणों के रस में पगी थी। वे सब सुन्दर सखियों संग में प्रसन्न होकर चली। पदमावती के मन में उससे मोद उत्पन्न हुआ। उन पद्मिनी स्वियों के शरीर से निकलने वाले भीने परिमल की सुगन्ध से गन्धों के गण मोहित होकर ठिठक गये।

विशेष-1 अलंकार उत्प्रेक्षा तथा मालोपमा अलंकार।

2 प्रस्तुत छंद में जायसी की नाम परिगणन शक्ति अभिव्यक्ति का परिचय मिलता है। प्रकृति के साथ कवि के नेत्रों के भावों का कितना सजीव साकार सम्पर्क है।

3 डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने तुलना में कहा है कि जायसी ने सिहल की नारियों के संबंध में प्रायः कहा है कि उनके शरीर से विभिन्न प्रकार के पुष्यों की सुगन्ध निकलती थी। पद्मावती के शरीर से कमल की तथा शेष के शरीरों के अन्य प्रकार के पुष्पों की। यही भाव उन्होंने वहां पर प्रकाशित किया है।

'जेहि-जेहि बरन फूल फूलवारी। तेहि-तेहि बरन सुगन्ध सो नारी।'

खेलत मान सरोवर गई, जाई पाल पर ठाढी भई स देखि
सरोवर हंसे कुलेली, पद्मावति सों कहहिं सहेली।
ए रानी। मन देखु विचारी, एहि नैहर रहना दिन चारी।
जी लगि अहे पिता कर राजू खेलि लेहु जो खेलहु आजू।
पुनि सासुर हम गनयन काली किते हएए किन यह सरवर.पाली।
कित आवन पुनि अपने हाथाए कित मिलि के खेलन एक साथा।
सासु ननद बोलिह जिउ लेहीं, धरुन ससुर न निसरे देहीं।
पिठ पियार सिर ऊपर, पुनि सो करें दहुँ काह।
दहुँ सुख राखे की दुखए दहुँ कस जनम निवाह ।।

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश जायसी रचित 'पद्मावत' के मानसरोदक खण्ड से अवतरित है। कवि जायसी ने सांकेतिक शैली में इस लोक और परलोक के संबंध में स्थूल रूप से प्रकाश डाला है। लड़को अपने पिता के घर रहती है, परन्तु विवाह के पश्चात् उसे पति गृह में जाना पड़ता है। इसी प्रकार यह लोग नैहर है और परलोक सासुर।

व्याख्या- पद्मावती और उसकी सब सखियाँ खेल करती हुई मानसरोवर पर पहुंचीं और जाकर किनारे पर खड़ी हो गई। वे मानसरोवर को देखकर हँसती, खेलती और पद्मावती से कहती थी जरा सोचो तो, हम लोग अपने नैहर (पीहर) में थोड़े ही दिनों की मेहमान हैं। इसलिए जब तक पिता के शासन में हैं हमको चाहिए कि जो-जो खेल खेलना चाहे खेल लें फिर तो हमको सासुरे जाना ही पड़ेगा और तब फिर ऐसा अवसर हाथ नहीं आवेगा। वहीं तो सास और ननद कटु बातें कहेंगी और श्वसुर भी घर से बाहर नहीं निकलने देंगे। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि प्रिय स्वामी का व्यवहार किस प्रकार का होगाघ् वे हमको सुख से रखेंगे या दुःख से। किस प्रकार हमारा जीवन बीतेगा इसका भी कुछ पता नहीं।

मिलहिं रहसि सब चढ़हिं हिंडोरी, झूलि लेहिं सुख बारी मोरी। झूलि लेहु नैहर जब ताई, फिरि नहि झूलन देइहि सांई। पुनि सासुर लेइ राखिहिं तहाँ, नैहर चाह न पाउब

जहाँ। कित यह धूप, यह छाँहा, रहब सखी बिनु मन्दिर माहाँ। गुन पूछहि औं लाइहि दोखू, कौन उतर पाउब तहँ मोखू । सास ननद के भौंह सिकोरे, रहब संकोचि दुबौ कर जोरे। कित यह रहसि जो आउब करना, ससरेड़ अन्त जन्म देख भरना।

कित नैहर पुनि आउव, किन ससुरे यह खेल। आपु आपु कहँ होइहि परब पंख जस डेलि।

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश जायसी रचित 'पद्मावत' के मानसरोदक खण्ड से अवतरित है। प्रस्तुत अवतरण में महाकवि जायसी कहते हैं कि यह संसार रूपी नैहर तो क्षणिक है क्योकि अन्त में तो मनुष्य को संसार रूपी नैहर को त्यागकर जाना है पुनः वापिस आने का कोई ठिकाना नहीं है।

व्याख्या- सखियाँ कहती हैं कि जब तक हम क्वारी हैं प्रेम से मिलती हैं और सब हिल-मिलकर झूला झूलती हैं। इन सब बातों का आनन्द केवल पिता के घर मिल सकता है। ससुराल में स्वामी इस प्रकार खेलने का अवसर नहीं प्रदान करेगा और हम सब को ससुराल में ऐसे सुरक्षित स्थान पर रहना पड़ेगा जहाँ से हमको नहर के परिवार की कोई खबर नहीं मिल सकेगी। वहाँ हमको बाहर की धूप और छाया भी प्राप्त नहीं होगी तथा घर में अकेले, बिना सखियों एवं सहेलियों के साथ दिन काटने पड़ेंगे। वहाँ पर लोग गुण पूछेंगे और बात.बात में दोष लगायेंगे, वहाँ पर सोचना होगा कि कौन.सा उत्तर दिया जाय उस समय उचित उत्तर सोचना बड़ा कठिन है। पद्मावती कहती है कि स्वामी मेरे गुणों को पूछेगा और मुझ पर दोषारोपण होगा। में वहाँ पर किस उत्तर से मोब प्राप्त करूँगी। सास और ननद के कुपित हो जाने पर हमको संकोच से करबद्ध प्रार्थना करते हुए उनके सामने से गुजरना पड़ेगा। यहां के से खेल और मनोरंजन का अवसर अब आगे प्राप्त नहीं हो सकेगा और अन्त समय तक ससुराल की कठोर यातनाएं सहन करनी पड़ेंगी। हम लोगों का (एल) का रहना उसी प्रकार सिद्ध होगा जिस प्रकार बहेलिये को डलिया में कसने पर पतिगृह (ससुराल) पक्षी का हाल होता है।

विशेष-1. अलंकार. उदाहरण, विषम, उपमा और समासोक्ति है।

छन्द- चौपाई तथा दोहा। भाषा-अवधी।

2. इस पद में पीहर और ससुराल के परीक्षा अर्थ अभिप्रेत है।

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने पद्मावती के अनन्त सौन्दर्य का वर्णन किया है। सरोवर एक साधक है। उसका आराध्य उसके निकट आ गया है इसलिए वह अत्यधिक उल्लासित है।

3 प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने पद्मावती के सौन्दर्य का अंकन अलंकारिक शैली में किया है। उसमें रहस्यात्मकता प्रतीत होती है। रचना में अन्यत्र भी जायसी ने शैली का प्रयोग किया है।

सरवरतीर पदमिनी आई, खोंपा छोरि केस मुंकलाई।

ससि-मुख, अंग मलयगिरि बासा, नागिन झांपि लीन्ह चहुँ पासा। ओनई घटा परी जग छाहां, ससि कै सरन लीन्ह जनु.राहां। छपि गै विनहि भानु कै दसा, लेइ निसि नखत चांद परगसा। भूलि चकोर दीठि मुख लावा, मेघ घाटा महं चंद देखावा। दसन दामिनी, कोकिल भाखी, भौंहि धनुल गगन लेई राखी। नैन.खंजन दुई केलि करेही, कुच.नारंग मधुकर रस लेही। सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोरहिं लेइ।

पाँव छ्वै मकु पावौं एहि मिस लहरहिं देइ ॥

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश जायसी रचित 'पद्मावत' के मानसरोदक खण्ड से अवतरित है। प्रस्तुत अवतरण में जायसी ने पद्मावती के मुक्त केशमय सौन्दर्य का भावपूर्ण चित्रण किया है।

व्याख्या- वे पदमिनी बालाएं सरोवर के तीर पर आयी। उन्होंने केशों का बँधा हुआ जुड़ा खोलकर बालों को विधुरा दिया। रानी पद्मावती का मुख चन्द्र के समान और देहयष्टि मलेयगिरि के समान थी। केश रूपी नागों ने मानो सुगन्धि के लिए उसके अंग को ढ़क लिया था। केशों की श्यामता से दिन में ही सूर्य का प्रकाश छिप गया और रात में चन्द्रमा नक्षत्रों को लेकर प्रकट हो गया। पद्मावती के दाँत बिजली की भाँति चमकते थे और

बोलना कोयल की भाँति था। आकाश के इन्द्रधनुष को लेकर मानो उसकी भौहें बनायी गयी थीं। उसके रूप से मोहित हुआ सरोवर हृदय में हिलोर लेने लगा। मैं कदाचित् उसके पैर छू सकूँ इस इच्छा से वह अपनी लहरें उसकी ओर बढ़ाने लगा।

विशेष- 1. 'शशिरानी' में सरोपा गूढ़ व्यंग्य प्रयोजनवती लक्षणा है। शशि का आरोप नायिका के मुख पर और मलयगिरि का आरोप अंग पर किया गया है। इस आरोप का प्रयोजन है मुख के अतुलनीय सौन्दर्य और अंग की अप्रतिम सुरभि की व्यंजना करना। इस प्रकार के लाक्षणिक प्रयोगों से उक्ति में एक विशेष चमत्कार आ गया है।

(2) 'नागिन्ह अरधानी' में रूपकातिशयोक्ति से हेतुत्प्रेक्षा व्यंग्य है। इसलिए यहाँ पर से अलंकार ध्वनि की योजना की गयी है। अलंकार से अ

(3) 'छवि दसा' में विशेषोक्ति अलंकार है। अखण्ड कारण के होते हुए भी कार्य न होने के वर्णन को विशेषोक्ति अलंकार कहते हैं। यहाँ पर दिन रूपी अखण्ड कारण के होते हुए भी सूर्य का छिप जाना विशेषोक्ति है।

4.5पद्मावत् (नागमती वियोग खण्ड पद क्रमांक की व्याख्या)

धरी तीर सब कंचुकि सारी, सरवर महं पैठीं सब बारी।
पाइ नीर जानौं सब बेली, हुलसहिं करहिं काम के केली।
करिल केस बिसहर बिस-भरे, लहरै लेहिं कवंल मुख धरे।
नवल बसंत संवारी करी, होइ प्रगट जानहु रस-भरी।
उठी काँप जस दारिवं दाखा, भई उनमें प्रेम के साखा।
सरवर नहिं समाइ संसारा, चांद नहाइ पैठ लेइ तारा।
धनि सो नीर ससि तरई ऊई अब कित दीठ कमल औ कूई।
चकई बिछुरि पुकारै, कहां मिलौं, हौ नाहं।
एक चांद निसि सरग महं दिन दूसरे जल माहं ।।

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश जायसी रचित 'पद्मावत' के मानसरोदक खण्ड से अवतरित है। प्रस्तुत अवतरण में जायसी ने पदमावती और उसकी सखियों के सरोवर स्नान का चित्र खींचा है।

व्याख्या- सब सखियों ने अपनी कंचुकियों और साड़ियों उतारकर सरोवर के किनारे रख दी और स्नान करने के लिए तालाब में प्रविष्ट हुई। जल को पाकर वे सब बेल रूपी सखियाँ प्रफुल्लित हो गयी और आनन्द से खेल करने लगीं। उनके काले बाल जहरीले सर्प के समान उनके कमल रूपी मुख पर बैठे हुए अथवा मुख से कमल रखे हुए लहरें ले रहे थे, वे सब युवतियों बसंत की नई कली के समान रस से भरी हुई थी और ऐसा मालूम होता था मानो दाड़िम और दाख के पौधों पर नवीन कोपलें निकली हों और प्रेम रूपी शाखा झुक गई हो। चाँद रूपी पदमावती सरोवर में स्नान कर रही थी और तारा रूपी सखियों उसमें प्रविष्ट हो रही थीं। वह जल धन्य है जिसमें शशि रूपी पदमावती और तारे रूपी सखियाँ उदित हों। (धन्य है वह जल जिसमें चन्द्रमा और तारे उदित हुए। अब उसमें कमल और कुमुदनियों के दर्शन कहाँ घ्) चकवी बिछुड़कर पुकारने लगी.हे स्वामी अब तुम कैसे मिलोगे घ् आकाश का एक चाँद रात में वियोग कराता थाए अब दूसरा दिन में वियोग कराने के लिए जल में घुस आया है।

विशेष- 1 'करिल केस बिसहर मुख धरे' में विधुरे हुए केश जल पर लहरों के साथ लहरा रहे थे। बालाओं के मुख कमल के समान थे। वे केश पानी में लहराते हुए भी वहाँ नहीं जा रहे थेय ज्ञात होता है उन्होंने मुख कमलों को पकड़ रखा था। कमल सरोवर में प्रायः सर्प रहते भी है।

2. अलंकार 'नवल बंसत रसभरी' में रूपकातिशयोक्ति, 'उठे कोप प्रेम के साथ' में उत्प्रेक्षा मूलक सौन्दर्यए 'सरावर नहिं समाय संसारा में अल्प अबंकार।' 'चाँद नहाइ तारा' में रूपकातिशयोक्ति, 'धनि सो नीर ससि तरई उई' में पाँचवी विभावना अलंकार। यह वहाँ होता है जहाँ विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति का वर्णन है। 'अबकलऋकॅवल-ओकुई' में काक्वाक्षित गुणीभूत व्यंग्य है।

3.'चकई बिछुरि जल माँह' में भांतिमान। इस अलंकार का आशय यह है कि सादृश्य के कारण एक वस्तु को दूसरी वस्तु मान लेना भांतिमान है।

4. दिन दोसर जल माह में विभावना कि कारण के अभाव में कार्य को उत्पत्ति का वर्णन विभावना अलंकार है। लागी केलि करै मँझ नीरा, हंस कुजाय बैठ ओहि तीरा।

पद्मावति कौतुत कहँ राखी, तुम ससि होहुँ तराइन साखी।
बाद मेलि के खेल पसारा, हार देई जो खेलत हारा।
संवरिहि साँवरि, गोरिहिं गोरी, आपनि.आपनि लीन्ह सो जोरी।
बुझि खेल खेलहु एक साथा, हार न होड़ पराएँ हाथा।
आजुहि खेल बहुरि कित होई, खेल गउँ कत खेलै कोई।
घनि सो खेल खेल सह पेमा, रउताई और कूसल खेमा।
मुहमद बाजी पैम कै, ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल कूलहि के संग ज्यों, होड़ फुलायल तेल ।

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश जायसी रचित 'पद्मावत' के मानसरोदक खण्ड से अवतरित है। प्रस्तुत अवतरण में कवि ने पदमावती और उसकी सखियों की जल-क्रीड़ा का वर्णन किया है।

व्याख्या- वे सब जल के बीच में केलि करने लगी। सरोवर का केलि निपुण हंस लजाकर किनारे बैठ गया। सखियों ने पद्मावती को कौतुक देखने वाली बनाकर एक ओर बैठा दिया और कहा-हे सखि, तुम शशि रूप इन तारों की साक्षी होकर रहो। तब बाजी लगाकर उन्होंने खेल आरम्भ किया जो खेल में हारेगा उसे अपना हार देना पड़ेगा। खेल को समझ लो और सब एक साथ खेलो। अपना हार पराये हाथ में न जाने पाये। (या दूसरों के हाथों अपनी हार न हो) मुहम्मद.प्रेम के जल में जैसा मन भावे वैसा खेलो। तिल और फूलों के साथ बसाने से हो तेल बनता हैए किसी की वास और किसी के स्नेह मिलने से प्रेम में सुगंधित आती है।

विशेष-1. 'हंस तीरा' में सिद्ध विषया हेतुत्प्रेक्षा अलंकार है।

2. 'हारू हाथा' में 'हारू' में शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है।

3. 'मुहम्मद तेल' में उदाहरण अलंकार ।

सखी एक तेइ खेल न जाना, भै अचेत मनिहार गँवाना।

कैवल डाल गहि भै बेकरारा, कासों पुकारों आपन हारा।

कित खेलै आवउँ एहि साथा, हीर गँवाइ चलउँ लेइ हाथा।

घर पैठत् पूँछव यह हारू, कौन उतर पाउब पैसारू।

नैन सीप आँसू तस भरे, जानो मोति गिरहिं सब ढरे।

सखिन कहा भोरी कोकिला, कौन पानि जेहि पोन न मिला।

हार गँवाइ सो ऐसे रोवा, हेरि हेराइ लेह जौं खोवा ॥

लागी सब मिल हेरै, बूड़ि बूड़ि एक साथ।

कोई उठी मोती लेइ्ग, काहू घोंघा हाथ ।।

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश जायसी रचित 'पद्मावत' के मानसरोदक खण्ड से अवतरित है। मानसरोदक खण्ड के प्रस्तुत प्रसंग में सखियों के खेल में सखी की हार के रूप में कवि जीवन की हार का वर्णन कर रहा है। श्री गुप्त जी के शब्दों में इस छन्द की पंक्तियों में कवि ने सांकेतिक शैली में एक तो यह कहना चाहा है कि मनुष्य को आदि में दिव्य अनुभूति थी किन्तु अपने अज्ञान के कारण उसने उस अनुभूति को खो दिया। साधकों ने उस अनुभूति को खोज निकालने के अनेक प्रयत्न किये हैं, किन्तु जिनसे मानवता को अनेक मूल्यवान और मूल्यों की किसी सप्रयास साधना से वह दिल्य अनुभूति नहीं प्राप्त हुई है। दूसरे यह कि जो तात्विक उपलब्धि सम्भव नहीं हुई है वह उस रूप.स्त्रोत का आश्रय लेने पर अनायास ही सम्ब हो जाती है।

व्याख्या- सखियों ने होड़ा-होड़ी करके खेल प्रारम्भ किया। उनमें से एक सखी खेलना नहीं जानती, अचेत हो जाने के कारण उसका मणि हार खो गया। वह कैवल की डण्डी पकड़कर विह्वल हो उठी। वह कहने लगी कि मैं अपने हार के विषय में किससे कहूँ। मैं यहाँ खेलने के लिए आयी जो हार खोकर खाली हाथ हो गयी। घर जाते ही घर वाले हार के संबंध में पूछेंगे तब उनको क्या उत्तर दूँगी। से नेत्रों के शीप में मोती भर गये और गिरने लगे। सखियों ने उसको समझाकर कहा कि तू बावरी न बन। इस संसार में ऐसा कौन है, जिसको हार न मिला हो। लेकर हार गंवाकर इसी प्रकार रोना पड़ता है। जो हार खो गया है उसे सभी मिलकर खोज लें। सभी सखियाँ एक साथ डुबकी लगाकर हार खोजने लगीं। किसी के हाथ में मोती आया तो किसी के हाथ में घोंघा ही।

विशेष- 1. कवि सांसारिक खेल के रूप में जीवन के खेल का संकेत कर रहा है। जीवन के खेल में कोई तो विजयी होकर मोती प्राप्त करता है और किसी के हाथ में पराजित होकर घोंघा ही आता है इसको स्पष्ट करते हुए श्री राजनाथ शर्मा ने कहा कि इस छन्द में जायसी ने प्रेम मार्ग की साधना का अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख किया है। मान सरोवर हृदय का प्रतीक है और सारी सखियाँ जीवात्माओं अर्थात् हृदय का खेल बड़ी कठिन योगिक साधना है। इसे चतुर खिलाड़ी ही भली प्रकार खेल सकता है। प्रेम की इस साधना में जरा-सा भी गाफिल होते ही साधक अपना सब कुछ खो बैठता है परन्तु असफल हो जाने से हताश नहीं हो जाना चाहिए। बारम्बार प्रयत्न करना चाहिए। जिसकी जैसी साधना होती है उसको फल भी वैसा ही मिलता है। किसी को ज्ञान प्राप्त होता है तथा कोई तुच्छ साधना में चूक हो जाने से परलोक में ईश्वर उसका लेखा-जोखा माँगता है। इसलिए प्रेम मार्ग पर बड़ा सतर्क और तन्मय होकर चलना चाहिए। इस साधना द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है।

2. अलंकार.-नैन में सीप का आरोप होने से रूपक, आँसू में मोती की कल्पना होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

3. कथा प्रसंग की दृष्टि से वहाँ कुछ दोष है। पहले बाजी में हार के हारने की बात थी अब हार तालाब में गिर कर खो गया। वास्तव में परोक्ष अर्थ पर दृष्टि रखने से कथा प्रसंग भूल-सा गया प्रतीत होता है।

4. शूफी इमाम गजाली ने ईश्वर रूपी मोती की दुर्लभता को एक स्थल पर स्पष्ट किया है। 'अल्लाह' सत्तर हजार पदों के भीतर हैं जिनमें से कुछ प्रकाशमय और कुछ अन्धकारमय हैं औ यदि वह उन आवरणों को हटा ले तो जिस किसी की दृष्टि उस पर पड़ेगी, वह उसके प्रकाश दग्ध हो जायेगा। हाल आनन्द, उन्माद एवं क्रीड़ा उसके स्वरूप दर्शन पाने की एक दिशा है। जायन ने यहाँ सूफी मत की इस विचारधारा का दिग्दर्शन कराया है जिसमें काव्य अलंकारों का म समावेश है।'

5. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है कि 'कौन पानि जेहि पौनु न मिला' यहाँ पर क वैशिष्ट मूलक वस्तु व्यंग्य है कि ऐसा संसार में कोई नहीं है कि जिस पर विपत्ति न पड़ी हो । उठी मोति ले घौघा काहू हाथ । प्रयत्न किये हैं, किन्तु जिनसे मानवता को अनेक मूल्यवान और मूल्यों की किसी सप्रयास साधना से वह दिल्य अनुभूति नहीं प्राप्त हुई है। दूसरे यह कि जो तात्विक उपलब्धि सम्भव नहीं हुई है वह उस रूपण्स्त्रोत का आश्रय लेने पर अनायास ही सम्ब हो जाती है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. पद्मावत की रचना ..... भाषा में हुई है।
2. रत्नसेन..... राजा थे।
3. पद्मावती में हीरामन ..... को

4.6 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रम अंतर्गत कवि जायसी के जीवन परिचय एवं उनके द्वारा रचित पद्मावत के विषय में विस्तृत अध्ययन किया इस यूनिट की सामग्री के अध्ययन के पश्चात आप जायसी द्वारा प्रणीत रचनाओं से परिचित हो सकेंगे।

जायसी की सबसे बड़ी विशेषता उनके द्वारा रचित 'पद्मावत' की रचनाएं है जो कल्पना, रहस्य और इतिहास का प्रेमाख्यानक ग्रंथ हैस जो अवधी भाषा में रचित है।

4.7 मुख्य शब्द

* निसि- रात
* नाहू - पति
* हिय- हृदय
* हमह- हम

4.8 सन्दर्भ सूची

1. यादव, ड. रामनिवास. (2021). *मलिक मुहम्मद जायसी की काव्यकृतियाँ.* हिंदी प्रकाशन मंडल.
2. देवी, ड. सुमित्रा. (2022). *मलिक मुहम्मद जायसी का साहित्यिक योगदान.* साहित्य भवन.
3. **कपूर, श्याम चंद्र.** (2020). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन
4. **राय, बाबू गुलाब.** (2020). *हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास.* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल.
5. **सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद.** (2022). *हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि.* श्री विनोद पुस्तक मंदिर.

4.9 अभ्यास प्रश्न

1. जायसी का जीवनवृत्त लिखिए।
2. पद्मावत की कथावस्तु को बताइए।
3. जायसी की रहस्य भावना के स्वरूप को समझाइए।
4. महाकाव्य की दृष्टि से पद्मावत का महत्व लिखिए।
5. जायसी के विरह वर्णन की विशेषताएं लिखिए।

इकाई - 5

चन्दबरदायी के काव्य की समीक्षा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 पद्मावती - समय की कथावस्तु

5.4 पद्मावती - समय का काव्य सौन्दर्य

5.5 रासो काव्य परंपरा में पृथ्वीराज रासो का स्थान

5.6 सार संक्षेप

5.7 मुख्य शब्द

5.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ सूची

5.10 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में हम आदिकाल के प्रमुख कवि पृथ्वीराज रासो के रचयिता चंद्रवरदाई के काव्य की समीक्षा कर पाएंगे। पृथ्वीराज रासो के महत्व उसकी प्रमाणिकता, समय, युग परिस्थितियों का सुंदर एवं सजीव चित्रण उसकी रस योजना से अवगत हो पाएंगे। जो उसे अन्य रासो काव्य से भिन्न करती है इसका गहन अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- चंदबरदाई के काव्य के सौंदर्य बोध से परिचित हो सकेंगे।
- पृथ्वीराज रासो की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- पृथ्वीराज रासो का काव्य में स्थान एवं महत्व जान सकेंगे।
- पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता से अवगत हो सकेंगे।

5.3 पद्मावती - समय की कथावस्तु

पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्य के आदिकाल का प्रथम महाकाव्य है। इसके बृहद संस्करण में 69 अध्याय तथा 16306 छंद है तथा महाकाव्य होने के कारण इस रचना के प्रत्येक खंड में पृथ्वीराज चौहान के जीवन से संबंधित कथा का वर्णन दिया गया है। कवि ने प्रत्येक अध्याय के लिए समय अथवा खण्ड शब्दों का प्रयोग किया है परन्तु बृहद रूपांतर के खंड के लिए समय शब्द का प्रयोग हुआ है। नामकरण उसके समय की घटनाओं के आधार पर किया गया है। का पद्मावती-समय इस काव्य रचना का बीसवां समय है। इसमें रासो के कथानायक तथा दिल्ली के राजा पृथ्वीराज समय की कथा का सार इस प्रकार है-

1. राजा विजयपाल और पद्मावती का परिचय-दिल्ली के पूर्व दिशा में एक यादयवंशी राजा विजयपाल रहता था। यह समुद्र शिखर नामक किले में रहता था। वह अनेक किलों का स्वामी तथा शक्तिशाली राजा था। उसके पास अपार धन संपत्ति, विशाल सेना और विस्तृत राज्य था। बड़े वीर और प्रतापी राजा हमेशा उसकी सेवा करते रहते थे। राजा विजयपाल के दस पुत्र और एक पुत्री थी। राजा की सुंदर पत्नी का नाम पद्मसेन था जिसने पद्मावती नाम की सुंदर राजकुमारी को जन्म दिया। पद्मावती चंद्रमा की सोलह कलाओं वाली अद्वितीय सुंदरी थी। रति के समान सुंदर होने के कारण वह सबको आसक्त कर लेती थी। पशु-पक्षी, मनुष्य तथा देवता आदि भी उसकी सुंदरता को देखकर उस पर मोहित हो जाते थे। कवि उसके अनुपम सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहता भी ही है-

'मनहु कला ससि भान, कला सोलह सो बनिय।
बाल बेस सरिता समीप, अम्रित रस पिन्निय।।

बिगसि कमल सिंग भ्रमर बैन, शंडन मृग लुदिटय ।।

हीर कीर अरू बिम्ब मोति नष सिष अहि घुट्टिय ।।

छष्पति गयन्द हरि हंस गति, दिह बनाय संबै सचिय।

पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुँ काम कामिनी रथिय।।'

पद्मावती में सभी शुभ लक्षण विद्यमान थे। सुंदर होने के साथ-साथ यह चौसठ कलाओं, चौदह विद्याओं तथा चार वैदों के अध्ययन में पारंगत थी। अभी-अभी यह बय संधि को प्राप्त हुई थी। बसंत की शोमा की तरह वह सभी में आनंद उत्पन्न करने लगी थी।

2. पद्मावती और शुक का मिलन- एक दिन पद्द्मावती अपनी सखियों के साथ राजमहल के दरबार में खेल रही थी। उसने वहां पर एक सुंदर तोता देखा। उसे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। लेकिन तोते ने पद्मावती के सुन्दर लाल होंठों को देखकर उन्हें फल समझा। पद्मावती ने चालाकी से तोते को पकड़ लिया और राजमहल के एक स्वर्ण पिंजरे में उसे बंद कर दिया। धीरे-धीरे पद्मावती तोते के साथ बातचीत करने लगी। वह दिन-भर उससे खेलती और राम नाम का पाठ पढ़ाती। उधर तोता पद्मावती का रूप देखकर प्रसन्न हो गया था। वह मन-ही-मन भगवान शिव तथा पार्वती से प्रार्थना करने लगा कि पद्मावती का विवाह राजा पृथ्वीराज के साथ हो जाए। वह तोता बड़ा बुद्धिमान और विद्वान था इसलिए वह पद्मावती को ज्ञानवर्धक कहानियां सुनाने लगा। पद्मावती भी एकाग्र मन से उसके द्वारा कही गई कथाओं को सुनती थी और प्रसन्न होती थी।

3.पृथ्वीराज का परिचय-धीरे-धीरे पद्मावती उस शुक के साथ वार्तालाप करने लगी। एक दिन पद्मावती ने शुक से पूछा कि पृथ्वीराज किस देश का निवासी है और उसके देश का राजा कौन है। शुक ने पद्मावती को बताया कि वह दिल्ली का निवासी है। दिल्ली में एक दुर्ग है जहां पर इन्द्र के अवतार के रूप में पृथ्वीराज चौहान राज्य करते हैं। वह सांभर नरेश सोमेश्वर का वंशज है। मले ही उसकी आयु सोलह वर्ष की है लेकिन वह एक

वीर योद्धा तथा पराक्रमी राजा है। उसने गजनी के बादशाह शहाबुद्दीन गौरी को तीन बार पराजित किया, बंदी बनाया और उसकी प्रतिष्ठा को धूल में मिलाकर उसे छोड़ दिया। उसके धनुष पर लोहे की जंजीर की डोरी की प्रत्यंचा है और वह अचूक शब्दभेदी बाण चलाने में निपुण है। राजा बलि के समान वह दृढ़ प्रतिज्ञ है, कर्ण के समान दानी है, सत्यवादी हरिशचन्द्र की तरह शीलवान है, विक्रमादित्य की तरह न्यायपूर्ण है। तथा दैत्य के समान महाबलशाली है। उसका बड़ा सुंदर और आकर्षक व्यक्तित्व है। उसे देखकर लगता है कि वह कामदेव का साक्षात रूप है। उसका यश समी दिशाओं में फैला हुआ है।

शुक के मुख से पृथ्वीराज की वीरता तथा उसके रूप सौंदर्य का वर्णन सुनकर पद्मावती पृथ्वीराज से प्रेम करने लगी स धीरे-धीरे बाल्याअवस्था को पार करके पद्मावती ने यह यौवनावस्था को प्राप्त किया। पद्मावती एक अनिध सुंदरी थी। माता-पिता को उसके विवाह की चिंता सताने लगी और उन्होंने उसके लिए योग्य वर खोजना शुरू कर दिया। पद्मावती के पिता विजयपाल ने पुरोहित को बुलाया और उसे आज्ञा दी कि वह किसी शीलवान तथा श्रेष्ठवान राजा के साथ पद्मावती की सगाई कर दे। पुरोहित शगुन की सामग्री लेकर शीघ्र ही समुद्र शिखर से विदा हो गया। यह समाचार मिलते ही सभी नगर निवासी आनंदित हो उठे। वह पुरोहित पद्मावती के लिए योग्य राहुल शिवालिक पर्वत पर बसे हुए कुमायूं राज्य में गया। वहां के राजा का नाग कुमोदमणि था। वह बड़ा ही सुंदर, कोमल अपार धन संपति तथा विशाल सेना का राजा था। उसी के साथ पुरोहित ने पद्मावती की सगाई निश्चित कर दी और वह राजा विजयपाल को यह शुभ समाचार देने के लिए समुद्र शिखर से लौट आया।

4. कुमोदमणि की बारात का प्रस्थान-विवाह की तिथि निश्चित हो जाने के बाद राजा कुर्मादमणि अपने अधीन राजाओं और सेनापतियों को लेकर एक विशाल बारात के रूप में समुद्र शिखर की ओर चल पड़ा। वसकी विशाल सेना में दस हजार घुड़सवार तथा पांच सी हाथी थे। इसके अतिरिक्त असंख्य पैदल सैनिक बारात के साथ चल रहे थे। जब

राजा विजयपाल को बारात के आगमन की सूचना मिली तब समुद्र शिखर दुर्ग में वाद्य यंत्र बजने लगे। बारात के स्थागत की तैयारी आरंभ हो गई असंख्य मंडप और तोरण बनाए गए। यह देखवार पद्मावती आत्यधिक व्याकुल हो गई। उसने एकांत में शुक को अपने पास बुलाया और कहा कि वह दिल्ली गढ़ जाकर पृथ्वीराज को आने का निमंत्रण दे आए। पद्मावती ने तोते को एक पत्र भी लिखकर दिया। उस पत्र में विवाह की तिथि लिखी थी साथ में यह भी आग्रह किया गया था कि जिस प्रकार कृष्ण ने रुविमणी का हरण किया था उसी प्रकार यह शिव मंदिर में प्रातःकाल के समय पद्मावती का हरण करके ले जाए। पत्र पाकर शुक बड़ा प्रसन्न हुआ और वह दिल्ली गढ़ की ओर उड़ गया।

5. शुक का दिल्ली आगमन और पृथ्वीराज का समुद्र शिखर के लिए प्रस्थान-पद्मावती से पत्र लेकर वह शुक वायु के वेग से आकाश में उड़ने लगा और दिल्लीगढ़ पहुंच गया। उसने वह पत्र पृथ्वीराज को सौंप दिया। पत्र पढ़ते ही पृथ्वीराज चौहान ने समुद्र शिखर के लिए प्रस्थान करने का निर्णय लिया। दिल्ली गढ़ का भार उसने प्रधान सेनापति चामुंड राय को दे दिया। अपने चुने हुए शूरवीरों, सामंतों तथा तीन हजार सैनिकों के साथ वह समुद्र शिखर की ओर चल पड़ा। महाराज का मित्र कवि चंदबरदायी भी उसके साथ था। जिस दिनपद्मावती पृथ्वीराज से प्रेम करने पार करके पद्मावती ने चीन को प्राप्त किया। माता-पिता को उसके विवाह की पिता सताने लगी और उन्नीने उसके योग्य वर खोजना शुरू कर दिया। पद्मावती के पिता विजयपाल ने पुरोहित को बुलाया और उसे आज्ञा दी कि वह किन्ती शीलवान तथा श्रेष्ठयान राजा के साथ पद्मावती की सगाई कर दे। पुरोहित शगुन की सामग्री लेकर शीघ्र ही समुद्र शिखर से विदा हो गया। यह समाचार मिलते ही सभी नगर निवासी आनंदित हो उठे। वह पुरोहित पद्मावती के लिए योग्य राहुल शिवालिक पर्वत पर बसे हुए कुमायूं राज्य में गया। वहां के राजा का नाग कुमोदमणि था। वह बड़ा ही सुंदर, कोमल अपार धन संपति तथा विशाल सेना का राजा था। उसी के साथ पुरोहित ने पद्मावती की सगाई निश्चित कर दी और वह राजा विजयपाल को यह शुभ समाचार देने के लिए समुद्र शिखर से लौट आया।

6.समुद्र शिखर का युद्ध-जब राजा कुमोदमणि के आने का समाचार मिला तो समुद्र शिखर के राजा विजयपाल के समी बेटे बारात के स्वागत के लिए तैयारियां करने लगे। नगर की स्त्रियां अपने-अपने छज्जों पर बैठकर बारात देखने लगीं परंतु राजकुमारी अपने राजमहल में व्याकुल होकर रोने लगी। दुख और निराशा के कारण उसका मुंह काला हो गया। फिर भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा और वह पृथ्वीराज के आने की प्रतीक्षा करने लगी। उसी समय शुक पद्मावती के पास आ पहुंचा और उसने पृथ्वीराज के आने की सूचना दी। यह समाचार पाकर पद्मावती बहुत खुश हो उठी। उसने मैले वस्त्र त्याग दिए और स्नान के पश्चात् सुंदर श्रृंगार किया और अपने शरीर के अंगों पर आभूषण धारण किया। उसने सोने के थाल में मोती भर लिए और आरती सजाई और पूजा के लिए वह पूर्व निश्चित समय पर मंदिर पहुंच गई। उसने सर्वप्रथम शंकर पार्वती की पूजा की और चारों ओर प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम किया। मंदिर में पृथ्वीराज ने समय बर्बाद न करके पद्मावती का हाथ पकड़ा और उसे अपने हाथ घोड़े पर बिठा लिया। शीघ्र ही उसका घोड़ा हवा से बातें करने लगा। नगर में शीघ्र ही यह समाचार फैल गया कि पृथ्वीराज ने पद्मावती का हरण कर लिया है फलतः समुद्र शिखर नगर में युद्ध के नगाड़े बजने लगे। विजयपाल ने हाथियों की सेना तैयार करके पृथ्वीराज का पीछा करना शुरू कर दिया। शीघ्र ही राजा कुमोदमणि तथा राजा विजयपाल की सेनाओं ने पृथ्वीराज को चारों ओर से घेर लिया। पृथ्वीराज ने भी पीछे मुड़कर अपनी सेना के साथ शत्रुओं का सामना किया। दोनों ओर से भयंकर युद्ध होने लगा, बाणों की वर्षा के कारण योद्धा कट-कट कर गिर रहे थे। अंत में कुमोदमणि के योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए और पृथ्वीराज की विजय हुई। इस प्रकार राजा कुमोदमणि तथा विजयपाल को पराजित करके पृथ्वीराज अपनी सेना के साथ दिल्ली की ओर बढ़ गए।

7. पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गौरी का युद्ध-शहाबुद्दीन गौरी तो पहले ही मार्ग में पृथ्वीराज का इंतजार कर रहा था। उसके पास भयंकर विशाल सेना थी और सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे। उसकी भंयकर सेना तोप-तलवार बंदूक एवं भालों से सजी हुई थी।

योद्धाओं ने अपने तन पर लोहे के जिरहबख्तर धारण कर रखे थे। गौर की सेना का एक योद्धा एक हजार सैनिकों का सामना कर सकता था। यहां तक कि घोड़ों पर लोहे के कवच थे। गौरी की सेना में हाथी और घोड़े थे। उसकी सेना ने जल्दी ही पृथ्वीराज को चारों ओर से घेर लिया।दोनों ओर से युद्ध के नगाड़े बजने लगे। शीघ्र ही योद्धा आपस में भिड़ गए और मार-काट शुरू हो गई। पृथ्वीराज ने एक हाथ में घोड़े की लगाम पकड़ ली और दूसरे हाथ में तलवार लेकर शत्रुओं का संहार करते रहे। यह युद्ध लंबे समय तक चलता रहा। पूरा युद्ध क्षेत्र हाथी घोड़े तथा सैनिकों के कटे हुए अंगों से भर गया था परंतु युद्ध में अभी तक कोई निर्णय नहीं हो सका। जब पृथ्वीराज ने देखा कि युद्ध का निर्णय नहीं हो रहा है। तो उसने अपनी तलवार से शत्रुओं के हाथियों की सूंड़े काट दी और मस्तक चीर दिए। इससे युद्ध क्षेत्र में भगदड़ सी मच गई। शत्रु के हाथी उलटकर अपनी सेना को रौंदने लगे। इस युद्ध के कारण उड़ती हुई धूल ने सूर्य को भी ढक लिया जिससे दिन रात में बदल गया। शीर्घ ही पृथ्वीराज चौहान ने शहाबुद्दीन गौरी की गर्दन में धनुष की डोरी डालकर उसे पकड़ लिया। उसे देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो बाज ने झपट्टा मारकर गौरैया को पकड़ लिया हो। अब गौरी पृथ्वीराज चौहान की कैद में था वह शत्रुओं की सेना को चीरता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ने लगा। इस युद्ध में गौरी के पांच सरदार मारे गए। पृथ्वीराज के पचास योद्धा वीरगति को प्राप्त हो गए। पृथ्वीराज ने शत्रुओं को पराजित करके विजय प्राप्त की और गौरी को बंदी बनाकर अपने साथ दिल्ली ले गया।

9. पद्मावती और पृथ्वीराज का विवाह-पृथ्वीराज पद्मावती को लेकर दिल्ली पहुंच गया। वह सबसे पहले दिल्ली के अष्टभुजा देवी के मन्दिर में पहुंचा। वहां उसने ब्राह्मणों को बुलवाया और विवाह का शुभ मुहूर्त निकलवाया। शुभ मुहूर्त में वेद मंत्रों का उच्चारण किया गया और इस प्रकार पद्मावती और पृथ्वीराज का विवाह संपन्न हो गया। इस अवसर पर पद्मावती अद्वितीय सुंदरी के रूप में सुशोभित हो रही थी। विवाह सम्पन्न होने के बाद पृथ्वीराज ने बादशाह गौरी को दंड दिया, उससे 80,000 श्रेष्ठ सुंदर घोड़े दंड के रूप में प्राप्त किए और उसे क्षमा कर दिया। इसके बाद राजा पृथ्वीराज ने यती,

खेती, भोगी, सन्यासी, जंगम एवं ब्राह्मणों को दान दिया। चंद्रमुखी सुंदरियां अपने सिर पर जल से भरे कलश लेकर राजा का स्वागत करने लगी। इन स्त्रियों ने सोने के थाल सजाए हुए थे और उनमें मोती भरे हुए थे। वे स्त्रियां मंगल गीत गा रही थीं। पृथ्वीराज के सिर पर मुकुट रखा गया और मस्तक पर तिलक लगाया गया। सेवक उन पर चंवर डुला रहे थे।

5.4 पद्मावती - समय का काव्य सौन्दर्य

'पद्मावती-समय' पृथ्वीराज रासो का बीसवां समय अर्थात् अध्याय है। इसके रचयिता चंदबरदायी है। प्रस्तुत काव्य रचना में इतिहास तथा कल्पना का सुन्दर मिश्रण देखा जा सकता है। 'पद्मावती-समय' पृथ्वीराज रासो का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अध्याय कहा जा सकता है। पद्मावती-समय में कुल 97 पद्य हैं। कवि की काव्य-कुशलता इसीअध्याय में देखी जा सकती है। इस अध्याय की बड़ी ही रोचक, सरस व प्रभावशाली है। कवि ने इसमें कथानक का गठन सफलतापूर्वक किया है। इसकी सभी घटनाएं सुस म्बद्ध है। घटनाक्रम में तारतम्यता होने के कारण पाठकों में निरनार उत्सुकता उत्पन्न होती सहती है। अन्य दृष्टि से पद्मावती समय एक सफल काव्य। रचना कही जा सकती है। वस्तु वर्णन भावाभिव्यंजना भाषा अलंकार-योजना, ७द-योजना आदि सभी दृष्टियों से यह एक सफल काव्य रचना है। पद्मावती-समय के काय सौन्दर्य का विवचेन इस प्रकार है

1.वस्तु-वर्णन पद्द्मावती समय अपने के लिए एक उल्लेख्य काव्य-रचना मानी जा सकती है। इसमें पद्मावती का रूप-सौन्दर्य, बारात, सेना का प्रस्थान तथा युद्ध वर्णन आदि काफी प्रभावशाली बन पड़े हैं। इसके साथ-साथ कवि ने पदद्मावती का नख-शिख वर्णन भी सफलतापूर्वक किया है। इसके लिए कवि सांकेतिक तथा आलंकारिक भाषा का अधिक प्रयोग करता है। एक उदाहरण देखिए-

'मनहुँ कला ससि भांन, कला सोलह सो बन्निय।

बाल बेस ससिता समीप, अम्रित रस पिन्निय।
बिगसिकमल ब्रिग भ्रमर, बैन शंजन मृग लुटिट्य।
हरि कर अरू बिम्ब, मोति नष सिष अहि घुट्टिय।
घट्पति गयन्द हरि हंस गति, बिह बनाय सेथै सचिय।
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनी रचिय।'

कवि ने पद्मावती समय में पृथ्वीराज का जो वर्णन किया है, वह भी काफी आकर्षक बन पड़ा है। इस काव्य रचना के पांचवे पद्य में पद्मावती शुक से पृथ्वीराज का पता पूछती है। शुक पृथ्वीराज का वर्णन करता हुआ कहता है कि दिल्लीगढ़ नाम का एक नगर है जहां इन्द्र का अवतार चौहानवंशी अत्यंत चीर और बलवान राजा पृथ्वीराज है। वह कहता है-

'हिन्दवान धान उत्तम सुदेश, तहं उदत द्रग्ग दिल्ली सुदेस'
'संचरि नरेस चहुआंन यानं, पृथिराज तह बाजतं भानं
बैसह बरीस शोडस नरिदं, आजानु बाहु भुअलोक चंद
संभरि नरेस सोमेस पूत, देवन्त रूप अवतार दूत
तासु मंसूर सवै अपार भूजांन भीम जिम सार भार।'

शुक पद्मावती को यह भी सूचित करता है कि पृथ्वीराज शब्दभेदी बाण चलाने में समर्थ है। (उसने तीन बार शहाबुद्दीन गौरी को पकड़कर उसे क्षमा कर दिया और उसकी प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला दिया। इसी प्रकार सेना का वर्णन करने में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। यह वर्णन उत्साह भाव को उद्दीप्त करता है। कवि ने न केवल पृथ्वीराज की सेना का वर्णन ही किया, बल्कि शहाबुद्दीन गौरी की सेना का भी वर्णन किया है-

क्रोध जोध जोधा अनंत पन्ती आनि-रज्जिय'
बान नालि हथनालि तुमक तीरह तब रज्जिय

पठबे पहान मनो सास के मिरि भुजान गपलेस बल
आए हकारि हकारि भुरि शुरसान, सुलतान दल।'

उपर्युका पक्तिंगी में क्रोचित सोद्धाओं, घोड़े हाथ धनुषालकर आदि से सुसजित सेना कर बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया गया है। कादिष् करता है कि शहाबुद्दीन गौरी की सेना में सुरासानी, कधारी बलखी तुर्की तथा किरना सैनिक थे। विभिन्न घोडों का वर्णन करते हुए कति पुन लिखता है-

'जहां बाग भरूरी रिछोरी
धर्म सार समूह अरु चौर झौरी
एराकी, अरबी, पटी, तेज, ताजी
तुरक्की, महावान, कम्मान, बाजीं।'

पुद्ध वर्णन में भी कवि ने विशेष ली है। पद्मावती समय में शहाबुद्दीन गौरी और पृथ्वीराजचौहान के युद्ध का जो सजीव वर्णन किया है. वह बड़ा ही बढ़ा प्रभावशाली बन पड़ा है। पाठक इसे पढ़ते ही भावविश्वल हो जाता है और उसके सामने युद्ध के भयानक और वीना दृश्य उभर उठते हैं

'करी ची चिक्कार करि कलप भगगे
मदन तजियं लाज ऊमग्ग भग्गे
गज अंध चहुआन केरों
घेरिय गिरध चिहो चक्क फेरो।'

2. प्रकृति-वर्णन-जहां तक प्रकृति-वर्णन का प्रश्न है 'पद्मावती समय में यह अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होता। फिर भी कवि ने कुछ स्थलों पर प्रकृति का सजीव व स्वाभाविक वर्णन किया है। कवि प्रायः प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन रूप का ही वर्णन कर पाया है। विशेषकर ग्रीष्म ऋतु शिशिर ऋतु, शरद ऋतु, हेमन्त, बसन्त

आदि ऋतुओं का वर्णन बड़ा ही हृदयग्राही बन पड़ा है। इस प्रकार का वर्णन पाठक को सहज आनन्द प्रदान करने में सक्षम है। शिशिर ऋतु के वर्णन का एक उदाहरण देखिए-

'रोमाली घन नीर निब्ध परये गिरि ढंग नारायते
पबय पीन कुचानि पानि शिशिर सबरि बारूणे च समला पुंकार झुकारये
शिशिर सबरी बारणे च विरहा मम हृदय विदाये
मां कांत मृग बद्ध सिंघ मने कि देव उब्बारये।'

फिर भी 'पद्मावती समय में प्रकृति चित्रण बहुत कम मात्रा में हुआ है। कवि का ध्यान प्रायः नायिका के नख-शिख वर्णन, बारात वर्णन, युद्ध वर्णन पर ही केंद्रित रहा है।

3. बारात वर्णन-श्पद्मावती समय में बारात का बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया गया है। यह वर्णन करते समय बारात के समुचित पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। बारात हाथी, घोड़ों पर सवार होकर आगे चली आ रही है। हाथी के गडस्थलों सेमद साव टपक रहा है। उनके श्वेत दांत बड़े ही आकर्षक लग रहे है। कवि बारात के समय बजने वाले वाद्य यंत्रों तथा उनसे उत्पन्न होने वाले संगीत की भी चर्चा करता है। कवि यह लिखना नहीं भूलता कि चारातियों में विवाह के अनुकूल प्रसन्नता देखी जा सकती है। यह सारा वर्णन बड़ा ही प्रभावशाली व मनोहारी बन पड़ा है। पाठक यह। पढ़कर अपने आपको बाराती समझ बैठता है।

'चले दस महस्सं असवार जानं
पूरियं पैदल तैंतीस बन
मत्त मद गलित सै पंच दती
मनो सांम पाहार बुगपंत पंती
चले अग्नि तेजी, जु तत्ते तुषारं
चौपटं चौरासी जु साकत्ति भारं
कंठ, नगं, नूपं अनोपं, सुलाल

रंग, पंच रंग ढलकंत ढालं
पंच सुर साबुद्ध वापित्र बालं
सहस सहनाथ म्रिग मोहि राजं
समुद्र सिर सिषर उच्छाह छाहं
रचितं मंडपं तोरनं श्रीयगाहं।'

4. भाव रस-भाव रस की दृष्टि से 'पद्मावती समय' का बहुत महत्व है। इस अध्याय में दो रसों का परिपाक देखा जा सकता है। इसमें शृंगार रस के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का वर्णन किया गया है। युद्ध वर्णन में वीर रस का परिपाक हुआ है। रौद्र, भयानक तथा वीभत्स दृश्यों की स्थिति भी देखी जा सकती है। पद्मावती-समय में शुरुआत श्रृंगार रस से होती है और अंत भी श्रृंगार रस से। मध्य में वीर रस का परिपाक है।

(क) श्रृंगार रस-पहले बताया जा चुका है कि श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है लेकिन प्रधान तो श्रृंगार रस ही है। काव्य का आरम्भ करते ही कवि पद्मावती के अप्रतिम सौन्दर्य का बड़ा ही आकर्षक वर्णन करता है, क्योंकि वही काव्य रचना की नायिका है-

'कुटिल केश सुदेश, पौह परि चियत पिक्कसद
कमल गंध वयसंघ, हंस-गति चलित मंद-मंद
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नष स्वांति बूंद जस
भ्रमर भंवहि भुल्लहिं सुभाव, मकरन्द बास रस
नैन निरखि सुश पाय सुक, यह सुदिन मूरति रचिय
उमा प्रसाद हर हेयियत, मिलहिं राज प्रथिराज जिय।'

इस पद्य से स्पष्ट होता है कि पद्मावती का प्रेम एकपक्षीय है। वह पृथ्वीराज के वियोग के कारण अत्यधिक व्याकुल है। पद्मावती-समय में कवि ने संयोगपूर्ण विरह का ही

वर्णन किया है अतः कवि ने वियोग श्रृंगार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।(ख) वीर रस-पृथ्वीराज रासो तथा उस रस तो वीर रस ही है। कवि ने पृथ्वीराज चौहान की वीरता तथा चीरताका ही बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है। यही नहीं शहाबुद्दीन गौरी की सेनाओं का वर्णन बढ़ा ही स्वाभाविक और गर्धापरक लगता है। इसमें कवि ने योद्धा मनोस्थिति पर समुचित प्रकाश ढाला है। पद्मावती समय में पृथ्वीराज गौरी, विजय, कुमोदमणि, चारों राजाओं की वीरता का वर्णन किया गया है। गुद्ध से पूर्व कवि ने सेनाओं की रंग-सज्जा का जो वर्णन किया है. वह बेमिसाल है। रंग-सज् के बाद सेनाओं में भयंकर युद्ध शुरू हो जाता है। बाणों की वर्षा होने लगती है. पूर की नदियां प्रवाहित होन लगती है। युद्ध का वर्णन करते हुए कवि लिखता भी है

'कम्मानं बानं छुट्टहिं अपार
लागतं लोह भूमि सारधार
घमसान धान सब बोर खेत
घन श्रोन बहत अय रूकत रेत।'

धीरे-धीरे युद्ध भयंकर होता जाता है और वीर रस का वातावरण तैयार होने लगता है। कवि को ऐसा लगता है कि मानो वीर रस स्वयं शरीर धारण करके युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ा है। एक उदाहरण देखिए

गही तेग चहुआंन हिंदवान रानं,
गजं जूथ परि कोप के हरि समान।।86।।
करे रुण्ड मुण्डं करी कुम्भ फारे
घरं सूद सामन्त हूकि गर्ज भारे।। 87।।
करी चीह चिकार करि कलप भग्गे,
मदं तज्जियं लाज ऊमंग मग्गे।। 88 ।।

गौण रूप में कवि ने भयानक, रौद्र तथा वीभत्स रसों का वर्णन किया है।

भयानक रस- 'उलहि जु राज प्रथिराज बाग
थाकि सूर गगन घर घसत भाग
सामंत सर सब काल रूप गहि लोह-लोह बाहै सु भूप।'

वीभत्स रस- 'कहाँ कमघ की, मध्य, कहाँ कर चरण अंतरारि
कहाँ कंधवहि तेग, कहाँ सिर जुट्टि फुट्टि उर।

'बजी सुबंध हय गय पलानं
दौरै सुज्जित दिस्सह दिसान
तुम्ह लेहु-लेहमुष जंपि जोध
हन्नाह सूर सब पहिर क्रोध।'

5. भाषा शैली- पद्मावती समय की भाषा के बारे में विद्वानों ने अलग-अलग विचार व्यक्त किए हैं। कारण यह है कि इस काव्य भाषा के अनेक रूप देखे जा सकते है। इसमें कहीं अपभ्रंश भाषा का तो कहीं ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है। भाषा-भेद के कारण ही कुछ विद्वान इसे अप्रमाणिक रचना भी सिद्ध करते हैं। परन्तु हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि पद्मावती समय डिंगल-पिंगल है। वीर रस प्रधान वर्णन करते समय कवि डिंगल भाषा का प्रयोग करता है, परन्तु ऐसे स्थलों पर वह अरबी-फारसी व तुर्की शब्दों का प्रयोग करने में नहीं हिचकता, परन्तु जहां कहीं कोमल भावनाओं तथा रूपों का वर्णन करना होता है, वहां कवि पिंगल भाषा का वर्णन करता है। पिंगल भाषा ही ब्रज भाषा है। परन्तु चंदबरदायी की भाषा भावानुकूल व प्रसंगाकूल है। जैसे-जैसे भाव बदलते हैं, वैसे-वैसे कवि की भाषा भी बदल जाती है। इससे यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार था। काव्य रचना के आरम्भ में ही कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया गया है तो आगे चलकर अंगारों की वर्षा होने लगती है।

पद्मावती का नख-शिख वर्णन करते हुए कवि ने कोमलकान्त पदावली में वर्णन किया है-

'मनहुं कला ससि भांन, कला सोलह सो वन्निय
बाल बेस ससिता समीप, अमृ ित रस पिन्निय
बिगसि कमल मृग भ्रमर, बैन, शंजन मृग लुट्टिय
हरि कीर अरू बिम्ब मोति नख सिख अहि घुट्टिय
छत्रपति गयन्द हरि हंस गति, दिह बनाय संधै सचिय
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनि रचिय।'

ओजगुण प्रधान भाषा के प्रयोग में कवि को बहुत सफलता प्राप्त हुई है। इस प्रकार के वर्णन में कवि चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करता है। वीर रस से ओतप्रोत अनेक उदाहरण पद्मावती-समय से प्राप्त हो जाते हैं, जिनमें वीर योद्धाओं की युद्ध कला, रणक्षेत्र का वातावरण, शस्त्रों का टंकार आदि सजीव रूप में अंकित हुआ है। ऐसे अवसर पर कवि की भाषा सशक्त, जीवन्त तथा प्रभावशाली बन गई है, यथा-

'बज्जिय घोर निसान राज चहुआन चहूं दिस।
सकल सूर सामन्त समर बल जंत्र-मंत्र तिसि।
उठि राजा पृथ्वीराज बाग लग मनोवीर नट।
कढ़त तेग मनो वेग लगत मनो बीज झट्ट घट।
थकि रहे सूर कॉतिग गगन रगन मगन भइ श्रोन घर।
हर हरषि वीर जग्गे हुलस दुख रडिंनव रत्त वर।'

6. अलंकार-प्रयोग- 'पद्मावती-समय' अलंकार प्रयोग की दृष्टि से एक सफल रचना कही जा सकती है। कवि ने बड़े ही सहज तथा अनायास रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है। 'पद्मावती समय' में लगभग बीस अलंकारों का प्रयोग देखा जा सकता है जिसमें

अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, यमक, रूपक, व्यतिरेक, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति, भ्रतिमान, उदाहरण तथा दृश्टान्त आदि प्रमुख हैं। कुछ उदाहरण देखिए-

उपमा- 'रति बसन्त परमानं

नष स्वाति बुंद जस।'

रूपक- 'मंडल मयंक बर नारि सब।'

अनुप्रास- 'इसम हयग्गह देस अति शर भर रज रस्वह।'

अतिशयोक्ति- 'इक नायक कर घरी।

पिनाक शर भर रज रस्वह।'

छन्द प्रयोग- जहां तक छन्द प्रयोग का प्रश्न है, 'पृथ्वीराज समय संवेदना तथा शिल्पपक्ष की दृष्टि से एक अद्‌वितीय काव्य रचना है। 'पद्‌मावती-समय' भले ही पृथ्वीराज रासो का अभिन्न अंग है पर इस बात का ध्यान रखना होगा कि मिश्री चाहे बोरी में हो या डली के रूप में हो, वह सर्वत्र मिठास उत्पन्न करती है। 'पद्‌मावती-समय' में भी यह मिठास विद्‌यमान है।

5.5 रासो काव्य परंपरा में पृथ्वीराज रासो का स्थान

रासो-काव्य की परम्परा को समझने से पहले रासो शब्द की व्युत्पत्ति एवं उसके स्वरूप एवं अर्थ को समझना आवश्यक है।

हिन्दी-साहित्य के आदिकाल में श्रासो नाम से अनेक रचनाएं प्राप्त होती हैं, यथा- श्बीसलदेव रासो, हम्मीर रासो पद्‌मावती रासो आदि। इस श्रासो शब्द की व्युत्पत्ति पर विद्‌वानों में पर्याप्त मतभेद है। फ्रेंच विद्‌वान गार्सा-दा-ताँसी ने रासो शब्द की व्युत्पत्ति 'रासूसय' से मानी है क्योंकि उन्हें श्पृथ्वीराज रासो की कुछ प्राचीन प्रतिलिपियों पर प्रिथुराज-राजसू शब्द लिखा मिला है। अतः उनका मत है कि 'राजसू या 'राजसूय यज्ञ शब्द से बिगड़कर ही श्रासो शब्द की उत्पत्ति हुई होगी। परन्तु यह मत सर्वथा अमान्य है क्योंकि किसी को भी रासो काव्य में राजसूय यज्ञ का उल्लेख नहीं मिला है।

पं. हरि प्रसाद शास्त्री, विन्ध्येश्वरी प्रसाद पाठक आदि ने 'राजयश शब्द से ही रासो' शब्द की उत्पत्ति का होना स्वीकार किया है। उनका मत है कि 'राजयश का अपभ्रंश 'रायसा व उससे 'रासो' शब्द बना होगा। यद्यपि यह तो सत्य है कि 'रासो काव्य में अधिकांश कवियों ने अपने आश्रययदाता राजाओं के यश का वर्णन किया है. परन्तु हिन्दी में ऐसे प्रेमपरक रासो-काव्य भी मिलते हैं जिनमें कवि ने राजा की वीरता, उदारता आदि गुणों का यशोगान नहीं किया। उदाहरण के लिए 'बीसलदेव रासो।

आचार्य शुक्ल ने-रासोश् शब्द की व्युत्पत्ति 'रामायण' शब्द से मानी है क्योंकि 'बीसलदेव रासो में रामायण' शब्द का बार-बार प्रयोग हुआ है जो आगे 'रासो' शब्द के रूप में प्रयुक्त होने लगा।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-रासक एक छन्द भी है और काव्य-भेद भी। काव्य के इस छन्द-बन्ध में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग होता है। पृथ्वीराज रासो इसी परम्परा का काव्य है। आदिकाल की विशेषताओं में चारण कवियों द्वारा निर्मित धारित काव्यों के लिए रासो शब्द का प्रयोग हुआ है।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि रासों साहित्य मूलतः देश भाषा का काव्य है। राजा भोज के दरबार में खड़े होकर उसकी दानवीरता का यशोगान करके लाखों रुपए का इनाम पाने का युग बीत चुका था। भारत के अनेक राजाओं को मुसलमान आक्रमणकारियों का विरोध करने व उन्हें वापसी का मार्ग दिखाने लिए अधिकांश राजपूत राजाओं को युद्धकला में अपनी निपुणता दिखानी होती थी।

इसलिए वीर राजाओं के दरबार में कला पारखी चारणों अथवा माटों को ही स्थान मिलता था। जब सेना युद्ध के लिए प्रस्थान करती थी तो ये लोग विरुदावली गाकर सैनिकों का उत्साह बढ़ाते थे। यही नहीं, यह चारण लोग अपने आश्रयदाताओं की वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते थे। उसके लिए वह

प्रायः रासक या रासों छंद का प्रयोग करते थे, इसलिए उनके काव्य को श्रास्य काव्य कहा गया है।

रासो काव्य परंपरा-रासो काव्य की परंपरा का आरंभ कब हुआ इसके बारे में कोई सही प्रमाण नहीं मिलता। हम यह भी कह सकते हैं कि रासो परंपरा का प्रथम ग्रंथ अभी तक अप्राप्य है। फिर भी रासो साहित्य में जिन रचनाओं को गिनवाया जाता है उन कवियों के बारे में थोड़ी बहुत सूचना मिल जाती है परंतु उनकी रचनाओं के पाठ, काल और तिथियां आज भी विवादास्पद है। रासो काव्य परंपरा में दो प्रकार की रचनाएं प्राप्त होती हैं। प्रथम कोटि की रचनाओं का संबंध इतिहासप्रसिद्ध व्याक्तियों के जीवन की घटनाओं से है, यथा-'पृथ्वीराज रासो', 'बीसलदेव रासो' आदि। दूसरी कोटि की रचनाएं लोकप्रचलित कथाओं से संबंधित हैं जैसे संदेश रासक, लेकिन यहां यह बताना आवश्यक होगा कि ऐतिहासिक कही जाने वाली रासो रचनाओं में काफी प्रक्षिप्त अंश जुड़ गए हैं। जिससे उनकी प्रामाणिकता सन्देहास्पद बन गई है। अधिकांश विद्वानों ने दलपति विजय की रचना खुमान रासो को काव्य परंपरा का प्रथम ग्रंथ कहा है। आचार्य शुक्ल तथा डॉ. नगेन्द्र ने खुमान रासो का समय नौवीं शताब्दी माना है। रासो की काव्य परंपरा के ग्रंथ इस प्रकार हैं-

1. खुमान रासो दलपति विजय-नौवीं शती
2. बीसल रासो नरपति नाल्ह-सन् 1155
3. हम्मीर रासो शांईघर अथवा जज्ज्जल सन् 1300
4. परमाल रासो जगनिक-तेरहवीं शती
5. विजयपाल रासो - नल्लसिंह सन् 1298 ई.
6. पृथ्वीराज रासो चंदबरदाई-12वीं शती
7. संदेश रासक
8. अन्य ग्रंथ

खुमान रासो-यह रासो कायपरंपरा की प्रथम काव्य रचना मानी जाती है। इसमें नवी शती के चित्तौड़ नरेश खुमान के युद्धों का चित्रण है। इस एप में लगभ पात्र हजार

छंद है जिसमें राजा के गुद्ध विवाह आदि का वर्णन हुआ है। इसमें सत्रहवीं शताब्दी तक के शासक का भी वर्णन मिलता है जिसके आधार पर राजस्थान के वृत्त संग्रहकारों ने इसे आदिकाल की रचना मानने से मना कर दिया। परंतु इस संबंध में युद्धों का सजीव वर्णन एवं युगीन परिस्थितियों के स्पष्ट चित्रण यह सिद्ध करते है कि मूल रूप से यह नहीं शती की रचना है जो कि सत्रहवीं शती के किसी लिपिकार को मिली होगी। दूसरा तथ्य यह है कि प्राय लिपिकार अपने आश्रयदातों राजाओं के नाम की महत्व दिलाने कि लिए किसी भी प्राचीन कृति की प्रतिलिपि तैयार करते समय उसका नाम भी सम्मिलित कर देता था। अतः इस दृष्टि से भी इस कृति को सत्रहवी शती की रचना कहने का कोई औचित्य नहीं है। इस रचना में दोहा, सवैया, कवित्त आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। इसमें वीर रस के साथ-साथ श्रृंगार रस का भी परिपाक हुआ है। यथा-

पिठ चित्तौड़ न आविऊ, सावण पहिली तीज।
जोवै बाट बिरहिणी, खिण खिण अणवै खीज ।।
संदेश पिण साहिबा, पाछो फिरिव न देह।
पंछी घाल्लवया पिंज्जरे, छूटण से संदेह ।।

2. बीसलदेव रासो-यह रासो पंरपरा का एक महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथ है। इसके रचयिता नरपति नाल्ह है। इसका रचनाकाल सम्वत् 1272 दिया गया है। परंतु विद्वानों ने इसका रचनाकाल सम्वत् 1200 से 1220 वक माना है। बीसलदेव रासो के शिलालेखों पर भी है- बारह से वहोत्तराहां मंझारि। जेठ सुदी नवमी बुधिवारि। नाल्ह रसायण आरम्भई। सरदा तुठी ब्रहाम् कुमारि ।।

यह बीर काव्य न होकर प्रेम काव्य है तथा इसमें विवाह के पश्चात् पत्नी के प्रेम को विकसित होते हुए दिखाया गया है। इस कृति में भोज परमार की पुत्री राजमती का अजमेर के चौहान राज बीसलदेव के साथ विवाह, उसके वियोग व पुनर्मिलन का चित्रण किया गया है। इस कृति की प्रमुख विशेषता यह भी है कि

जहां अन्य रासो काव्य में युद्ध वीरता का अधिक चित्रण हुआ है, वहीं इस कृति में श्रृंगार का वर्णन प्राधान्य है। इसमें संदेश-परपरा का निर्वाह हुआ तथा इसमें वियोगावस्था में बारहमासा वर्णन पद्धति का भी पालन किया गया है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियों में कवि ने बीसलदेव के प्रवास में नायिका राजमती की विरह-वेदना को इस प्रकार व्यक्त किया है-

अस्त्रीय जनम काई दीर्घउ महेस।
अवर जनम थारई घणा रे नरेस।
राणि न सिरजीय धउलीय गाइ।
वणषण्ड काली कोइली हउं बइसती
अंबा नइ चंपा की डाल ।

महेशा तुमने मुझे स्त्री में क्यों जन्म दिया। यदि आपको मुझे जन्म ही देना था तो काली कोयल के रूप में मुझे पैदा कर देते तब में आम की व चंपा की डालियों पर निवास करती।

3. हम्मीर रासो-इस काव्य रचनाठि की प्रामाणिकता अभी तक सिद्ध नहीं हो।

सकी। 'प्राकृत पैगलम् में हम्मीर नरेश से संबधित कुल आठ छंद प्राप्त हुए हैं। इन्हीं छंदों को आधार बनाकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हम्मीर रासो नाम के एक स्वतंत्र ग्रंथ की उद्भावना की। उन्होंने शाईघर को इसका कवि माना है। परंतु राहुल सांकृत्यायन का विचार है कि इसके रचयिता जज्जल कवि हैं। हम्मीर रासो का निम्नलिखित छंद देखिए-जिससे यह सिद्ध होता है कि जज्जल ही इसके रचयिता है-

'हम्मीर कज्जु जज्जल भणह, कोलाहल मुंह मह जलउ। सुरताण सीस कर बाल दई, तेज्जि कलेवर दिअ पलउ ।।'

4. परमाल रासो-रासो काव्य परंपरा का यह एक उल्लेखनीय काव्य ग्रंथ है परंतु इसकी हस्तलिखित प्रति अभी तक नहीं मिली। उत्तर प्रदेश में यह आल्हा खण्ड के नाम

से प्रसिद्ध है। उसी का विकसित रूप ही परमाल रासो कहा जाता है। 'आल्हाखण्ड' मूल रूप से मौखिक काव्य है जिसे चार्ल्स इलियट ने 1865 ई. में लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास किया था। गले ही इस कवि को डॉ. सुंदर दास व नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया गया है, फिर भी इसे प्रामाणिक रचना नहीं कहा जा सकता।

ऐसा माना जाता है कि इस कृति के रचयिता कवि जगनिक थे और वे महोबा के राजा परमालदेव के दरबार में रहते थे। उन्होंने इस कृति में आल्हा व ऊदल दो वीर भाइयों के रण-कौशल व पराक्रम का वर्णन किया है। चूंकि इस रचना के जितने भी छंद मिले हैं, वे सभी मौखिक काव्य से ही प्राप्त हुए हैं तथा मौखिक अभियुक्ति की भाषा में निरंतर परिवर्तन होता रहता है, अतः इसकी भाषा में छंद-विधान आदि के बारे में निश्चित तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह रचना वीर रस से ओत-प्रोत है, यथा-

बारह बरस लो कूकर, अरू तेरह लो जियै बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन को सियार। धिक्कार ।।

5. विजयपाल रासो-यह एक गीत कथात्मक रासो है। इसके रचना काल के बारे में भी विद्वानों में काफी मतभेद है। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने इसे सोलहवीं शताब्दी के बाद की रचना सिद्ध किया है परंतु मिश्र बंधुओं ने इसे 1298 ई. आसपास की रचना कहा है। इसके कवि नल्ल सिंह हैं तथा इसमें कुल 42 छंद उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः यह एक लघु काव्य है जिसमें राजा विजयपाल के युद्धों का ओजपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी नाम से एक अन्य रचना का उल्लेख किया है जिसके कवि मल्लह देव बताए गए हैं परंतु यह रचना अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी।

8. पृथ्वीराज रासी-रातो का परचम कर महाकाय कहा गया है। इसके रचतिचंदबरदाय में जो दिल-नरेश चौहान के मित्र तथा दरबारी कवि थे।

चंदबरदायी इस रखना को पूरा नहीं कर अतः उनके पुत्र जल्हण ने इसे पूरा किया। ऐसा माना जाता है कि जब पृथ्वीराज को बंदी बनाकर अपने सह से गया तब बने इस कार पूर्ण करने का कार्य अपने पुत्र जल्हण के हाथों सौंप दिया। इसमें लिखा भी है..

पुस्तक जल्हण हाथ है,

बलि गज्जन नृप काज

इस ग्रंथ में कवि ने दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान की युद्ध वीरता, संगिता आदि घटनाओं के 69 समय (खण्डों) का वर्णन किया है अभी तक पृथ्वीराज रासो के धार संस्करण मिले हैं जिनमें से नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण सदसे छोटा है जिसमें केवल 1300 छंद हैं।

परंतु इस गंध की प्रमाणिकता-अप्रमाणिका के बारे में विद्वानों में पर्याप्त मतनेद हैं। आयार्य शुक्ल, डॉ. यूलर, श्यामल दास आदि ने इसे अप्रमाणिक माना है, जबति मिश्रबंधु, कर्नल टॉड, श्यामसुन्दर दास आदि ने इसे प्रमाणिक माना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ सुनीति कुमार चटर्जी जैसे विद्वानों ने इसे अर्थ-प्रमाणिक माना है।

पृथ्वीराज रासो अपने काव्य सौंदर्य के लिए एक उल्लेखनीय काव्य-रचना मानी गई है। यह रचना वस्तु-वर्णन, प्रकृति-वर्णन, युद्ध-वर्णन, नख-शिख वर्णन, योजना, श्रृंगार रूप आदि की दृष्टि से एक उल्लेखनीय रचना कहीं जा सकती है। कवि ने अतिशोयोक्तिपूर्ण शैली अपनाते हुए अपनी कल्पना का अधिक प्रयोग किया है, जिससे इसके ऐतिहासिक तथ्य दब गए है. परंतु भव्य नगरों, भवनों, उद्यानों, सरोवरों तथा किलों का वर्णन करते समय कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। भाषा-शैली, छंद तथा अलंकार आदि सभी दृष्टियों से यह एक महान रचना कही जा सकती है। चंदबरदायी भाषा के धनी कलाकार थे। भाषा मानो उनके संकेतों पर नाचती हुई चलती है। भाव और वर्ण्य विषय की पूर्ण दशा में भाषा पूर्ण रूप से नव्य रूप धारण करती हुई चलती है। पृथ्वीराज रासो की भाषा का एक उदाहरण देखें-

अधरल पल पल्लव सुवास

मंजरिय तिलक पंजरिअ पास।

अति अलक कंठ कलमण्ठ मंत।

संयोगि भोग बस भयु बसन्त ।।

7. संदेश रासक-कुछ विद्वान संदेश रांसक को भी रासो परंपरा का प्रथम ग्रंथ स्वीकार करते हैं। भले ही यह अपभ्रंश भाषा में रचित है, फिर भी इसे काफी लोकप्रिय माना गया है। इसके कवि अब्दुल रहमान थे जो मुल्तान के निवासी थे और जाति से जुलाहा थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी स्वीकार किया है। यह काल्पनिक विरह काव्य का खण्ड काव्य है, जिसमें विरहिणी नायिका की विरह व्यथा का मार्मिक वर्णन किया गया है। यह कुल तीन प्रकमों में विभक्त है तथा इसकी कुल 223 छंद संख्या है। इसकी नायिका एक पथिक के द्वारा स्तंभ तीर्थ जाने वाले अपनी प्रेमी के पास संदेशा भेजती है जो उसे भूल गया है। इसमें कवि ने सामौर नगर की शड् ऋतुओं का बड़ा प्रभावशाली वर्णन किया है।

8. अन्य ग्रंथ-रासो काव्य परंपरा में कुछ ऐसे ग्रंथ भी सम्मिलित किए जाते हैं जिनके नामकरण में तो रासो शब्द नहीं आया है, परंतु उनमें रासो काव्य की प्रवृत्तियां। विद्यमान है तथा वे आदिकाल में ही रचे गए हैं। ऐसो ग्रंथों में भट्ट केदार कृत 'जयचन्द प्रकाश', मधुकर कवि द्वारा रचित जयमयंक, श्रीधर कृत 'रणमल्ल छंद आदि उल्लेखनीय हैं। 'जयचंद प्रकाश' व 'जसचन्द्रिका', 'जयमयंक' में कन्नौज नरेश जयचंद की वीरता का वर्णन किया गया है, परंतु आज भी ये दोनों ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

इस प्रकार हमें देखते हैं कि रासो काव्य परंपरा खुमान रासो से आरंभ होकर संदेश रासक तक उपलब्ध होती है। लेकिन हमें यह ध्यान रखना होगा कि अधिकांश रचनाएं अप्राप्य है तथा उन्हें अप्रमाणिक समझ कर उनकी अवहेलना कर दी गई। फिर भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि तत्कालीन चारण अथवा भाट कवियों ने विदेशी आक्रमणकारियों से लोहा लेने के लिए अपने आश्रदाताओं

और उनकी सेनाओं को अत्यधिक उत्साहित किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में आश्रयदाताओं के विलासपूर्ण जीवन का जो वर्णन किया है, वह अद्‌वितीय बन पड़ा है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. पृथ्वीराज रासो में काव्य की व्याख्या ..... रूप में की गई है।
2. पृथ्वीराज की सेना को .....की सेना ने घेर लिया।
3. पृथ्वीराज चौहान..... बाण चलाना जानते हैं।

5.6 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रमअंतर्गत आदि कालीन कवि चंद्रवरदाई के ग्रंथ पृथ्वीराज रासो के पद्मावती समय की कथावस्तु ,उसके काव्य की समीक्षा और उसके काव्य सौंदर्य से भली भाती परिचित हो चुके होंगे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पृथ्वीराज रस ओ आदिकालीन काव्य का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है इसके शब्द चयन, रस अनुकूल है वीर रस के चित्रों का बहुत सहज ,सरल वर्णन हमको देखने को मिलता है। सभी दृष्टि से उस काल का सबसे ख्यातिलब्ध ग्रंथ है।

5.7 मुख्य शब्द

नृपति - राजा

दिसि - दिशा

नौसान- नगाड़े

5.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. समय
2. शहाबुद्दीन
3. शब्द वैधी

5.9 संदर्भ सूची

1. **कपूर, श्याम चंद्र.** (2020). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन
2. **राय, बाबू गुलाब.** (2020). *हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास.* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल.

3. **शुक्ल, आचार्य रामचंद्र.** (2021). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. लोकभारती प्रकाशन.
4. **सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद.** (2022). *हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि*. श्री विनोद पुस्तक मंदिर.

5.10 अभ्यास प्रश्न

1. पद्मावती समय का काफी सौंदर्य अनूठा है सिद्ध कीजिए ।
2. पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन कीजिए।
3. चंद्रवरदाई एक श्रेष्ठ कवि हैं सिद्ध कीजिए।

इकाई - 6

विद्यापति के काव्य की समीक्षा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 विद्यापति के काव्य में भक्त या श्रृंगारी भाव

6.4 शिल्प विधान की दृष्टि से विद्यापति का काव्य

6.5 मुक्तक काव्य परंपरा में विद्यापति का योगदान

6.6 गीति काव्य परंपरा में विद्यापति की देन

6.7 सार संक्षेप

6.8 मुख्य शब्द

6.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

6.10 संदर्भ सूची

6.11 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के मूर्धनय कवि विद्यापति उस आरंभिक युग के श्रेष्ठ तम कवि है जिन्होंने लोकभाषा मैथिली पर अपनी रचनाएं लिखी। हिंदी में विद्यापति की प्रसिद्ध का कारण उनकी पदावली है, जिसके विभिन्न पक्षों का उद्घाटन हम अपने इस इकाई में करेंगे। विद्यापति के श्रृंगार रूप का वर्णन, उनके भक्त कवि के रूप का उद्घाटन, उनकी भाषा शैली का सौंदर्य एवं श्रृंगार पक्ष की गहराई को समझ पाएंगे। विद्यापति का संपूर्ण काव्य रसमय है विद्यापति का काव्य हिन्दी का अप्रतिम साहित्य है।

महाकवि विद्यापति के काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का अद्भुत समन्वय है। विद्यापति की कविता एक ऐसी धारा है जिसमें भावों की शतशः तरगे अनवरत उठती-गिरती रहती है मैथिल-कोकिल ने श्रृंगार-रस के दोनों पक्षों-संयोग एवं वियोग के वर्णन में अपनी पूरी प्रतिभा एवं कवित्वशक्ति का उपयोग किया है। कवि के काव्य में श्रृंगार

रस की एक ऐसी वेगवती सरिता प्रवाहित हुई जिसमें न केवल हिन्दीभाषी ही, अपितु बंगवासी भी सदियों से निमज्जित हो रहे हैं।

6.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- अपने पाठ्यक्रम अंतर्गत भक्तिकालीन कवि विद्यापति के विषय में ज्ञानवर्धक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- विद्यापति भक्ति कवि है या श्रृंगारी कवि इस तथ्य को जान सकेंगे ।
- विद्यापति की भाषा सौंदर्य से भलीभाँति परिचित हो सकेंगे।
- विद्यापति के श्रृंगार पक्ष से अवगत हो पाएंगे।

6.3 विद्यापति के काव्य में भक्त या श्रृंगारी भाव

साहित्य समीक्षकों के समक्ष विद्यापति भाषा, भाव, जन्म आदि को लेकर विवादास्पद रहे। भक्तों ने इन्हें शैव, शाक्त, पंचदेवोपासक वैष्णव एवं रसिकों ने इन्हें श्रृंगार रस का जीवित और साक्षात अवतार माना है। इतना ही क्यों इनको कभी तो कवि मात्र ही माना गया और कभी साहित्य का श्रृंगार, तो कभी मानस की विभूति।

विद्यापति एवं उनके भक्त का सूत्रपात

(1) 'विद्यापति के पद लगभग सबके सब वैष्णव पद या भजन हैं। जिस प्रकार सोलोमान के गीतो को ईसाई पादरी पढ़ा करते हैं उसी प्रकार भक्त हिन्दू विद्यापति के चमत्कारिक पदों को पढ़ते हैं एवं जग की काम वासना का अनुभव नहीं करते।' (ग्रियर्सन)

(2) 'विद्यापति की राधा-कृष्ण पदावली का सार यही है कि जीवात्मा परमात्मा को खोज रही है और एकान्त स्थान में परमात्मा से मिलने के लिए चिंतित है।' (नगेन्द्र नाथ गुप्त)

(3) 'हिन्दी में वैष्णव साहित्य के प्रथम कवि प्रसिद्ध मैथिल कोकिल विद्यापति हुए। उनकी रचनायें राधा एवं कृष्ण के पवित्र प्रेम से ओतप्रोत हैं।' (डॉ. श्याम सुन्दर दास)

(4) विद्यापति अपने को पत्नी समझकर ईश्वर (कृष्ण) की उपासना पति के रूप में करते थे।

भक्त प्रमाणित करने वाली दत्त कथायें

(1) राजा शिवसिंह को दिल्ली के बादशाह द्वारा कैद करना एवं विद्यापति को अदृश्य काव्य शक्ति के माध्यम से सद्यस्नाता एवं कुएं की मुंडेर पर आग फूंकने वाली रमणी का काव्यमय एवं रसात्मक चित्रण करना भी उन्हें भक्ति की ओर ले जाता है।

(2) इनकी प्रगाढ़ भक्ति से प्रसन्न होकर शिव का नौकर के रूप में सर्वा ेतत्पर रहना एवं बाद में रहस्य को प्रकट करना तथा भक्ति का स्रोत प्रवाहित होना और साथ ही एक बार यात्रा में शीतल जल लाकर प्राण बचाना एवं पत्नी के मारने पर शंकर के अपमान की बात कहना विद्यापति के भक्त रूप को प्रमाणित करता है।

(3) विद्यापति अन्तिम समय गंगा में प्रवाहित होना चाहते थे एवं उनकी विनय सुनकर गंगा स्वयं उन्हें बहाकर ले गयी थी।

इन समस्त तकों और प्रमाणों के सन्दर्भ से या कहे कि विचारों की इस पृष्ठभूमि से निष्कर्ष निकलता है कि-

(1) विद्यापति प्रतिभाशाली आश्रु (तत्काल या शीघ) कवि थे एवं आस्थावान भक्त थे।

(2) साहित्य में इतनी उपाधियाँ धारण करने वाला संभवतः एक भी कवि नहीं हुआ। अभिनव जयदेव, कवि शेखर, कवि कंठहार, कविरंजन, राज पण्डित, खेलन कवि, सरस कवि, कविरत्न नवकवि, मैथिल कोकिल, आदि विद्यापति की उपाधियाँ है जो उन्हें प्रतिभाशाली कवि सिद्ध करती हैं।

विद्यापति के भक्त रूप का खंडन

(1) ग्रियसेन देश के किन महान भक्त से मिले थे एवं किन-किन ने उसको विद्यापति के कौन पद भावविभोर होकर सुनाये थे, कहा नहीं जा सकता है।

(2) उनके पास कौन सी विधि या यंत्र था जिससे उन्होंने अनुभव कर लिया था कि विद्यापति के पद गाने वाले काम वासना का अनुभव नहीं करते थे।

(3) विद्यापति ने रति क्रीडाओं के जितने सूक्ष्म, नग्न एवं अश्लील चित्र अंकित किये हैं, उन सबके प्रभाव में भक्ति की कल्पना करना व्यर्थ है।

(4) ईसाई व पारसी एवं मुसलमानों के द्वारा अपने धर्म ग्रंथों के समान पदावली को स्वीकार कर लेने वालां मत भी अधिक तर्कसंगत नहीं क्योंकि सभी ईसाई विद्वानों ने हमारे रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रंथों को निरीह कल्प नाजन्व बताया है। क्या उनकी सम्मति से ही कोई भक्त या अभक्त हो सकता है। स्पष्ट है नहीं

विद्यापति का प्रतिपाद्य श्रृंगार

(1) विद्यापति ने कीर्तिपताका में कहा है राम को सीता की विरह वेदना सहनी पड़ी अतः उन्हें काम-कला में चतुर अनेक स्त्रियों के साथ रहने की उत्कट अभिलाषा हुई। इसी कारण उन्होंने कृष्णावतार को लेकर गोषियों के साथ अनेक प्रकार के विहार किये।

(2) वे कबीर की भांति रहस्यवादी भक्त. या सन्त नहीं थे। राधा-कृष्ण विषयक उनकी दृष्टि नायक नायिका मात्र है।

(3) विद्यापति महाकवि कालिदास व पं. जगन्नाथ की भाँति चोट खाए हुए थे। उनके हृदय में चिर काल से विरह वेदना विद्यमान थी। अतः उन्होंने प्रेम का कलह-कोलाहल मचाकर अतृप्त का अनुभव किया था।

विद्यापति का रानी लखिमा देवी से गुप्त एवं अनंत प्रेम था एवं दरबार में अनेक रानियो

(4) के सम्पर्क में आये थे। जब तक वे लौकिक प्रेम में न रंगते तब तक उनका दरबार में बना रहा असम्भव था।

(5) यदि विद्यापति भक्त थे तो उन्हें दरबारों के विलासपूर्ण वातावरण में जाना नहीं चाहिए था।

(6) राज्याश्रित होने के कारण ही उन्हें आश्रयदाताओं एवं बादशाहों के संकेत एवं फरमाइश पर सद्यस्नाताओं के चित्र खींचने पड़े।

(7) विद्यापति एक ओर राधा एवं कृष्ण की रति-क्रीडाओं के चित्र खीचते हैं तो दूसरी ओर राजा रानी का रतिभाव चित्रित करते हैं।

यथा- ताह पर नाहर, हम पर नारी, कपि हृदय तुम प्रकृति विचारी। मनहि विद्यापिता ग्राये, राजा शिवसिंह रूपनारायण, इह रस सकल से पाये।

(8) विद्यापति जिसका गायन करते है एवं शिवसिह जिसमें रस पाते हैं, वह भक्ति नहीं श्रृंगार की अप्रतिम साधना है।

(9) विद्यापति ने अपने हृदय की वासना और प्रेम की अनुभूति को राधा कृष्ण के माध्यम से व्यक्त किया है। विद्यापति की पदावली वासना के रंग में डूबी हुई है। अतः उसमें धार्मिकता तथा दार्शनिकता खोज करना रेत से तेल निकालना होगा। प्रार्थना और नचारी पदों में भी आध्यात्मिकता का रंग कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता है'।

विद्यापति के श्रृंगारी रूप के समर्थक विद्वान

(1) प्रेमचंद के शब्दों में, 'विद्यापति संधिकाल के कवि थे जबकि भक्तिकाल उदयावस्था में था। भक्त कवियों का ध्यान जहाँ केवल चरणों पर रहता था, वहाँ विद्यापति का ध्यान सम्पूर्ण शरीर पर रहता है।'

(2) डॉ. बाबूराम सक्सेना के शब्दों में 'विद्यापति के पदों के अध्ययन से पता लगता है कि वे बड़े श्रृंगारी कवि थे। इन पदों को राधा-कृष्ण की भक्ति पर आरोपित करना पद-पदार्थ के प्रति अन्याय है। कवि विद्यापति के रसिक होने का परिचय उनके प्रथम ग्रंथ 'कीर्तिकला' पढ़ने से ही होता है। जौनपुर की वैश्याओं का और वहाँ की वनिताओं का जो वर्णन उन्होंने किया है वह उनके रसिक श्रृंगारी होने का पूर्ण परिचायक है।'

(3) पं. शिवनन्दन ठाकुर के शब्दों में, गुण-ग्राही राजा-रानी पाकर विद्यापति ने श्रृंगार रस की सरिता बहा दी है वही मुक्तक काव्य पदावली के नाम से प्रसिद्ध है।

(4) डॉ. रामकुमार के शब्दों में राधा का प्रेम भौतिक एवं वासनामय प्रेम है। उनकी कवित्ता विलास की सामग्री है, उपासना का साधन नहीं है।

इन समस्त मतों के आधार पर यह कहना उचित ही है कि विद्यापति एक श्रृंगारी कवि थे। विद्वानों के जो मत हमें प्राप्त हैं उनकी तीन श्रेणियाँ हैं-

(1) एक वर्ग तो उन लोगों का है जो विद्यापति को श्रृंगार का कवि मानते हैं।

(2) एक वर्ग उन्हें भक्त कवि के रूप में स्वीकार करता है।

(3) एक वर्ग वह है कि जो उनके श्रृंगारी पदों में रहस्यमयी भावना का आरोप करता हुआ एक प्रकार से अप्रत्यक्ष रूप से, उन्हें रहस्यवादी कवि मानता है।

इस प्रकार विद्यापति की पदावली का प्रतिपाद्य श्रृंगार ही है। यो कतिपय पद ऐसे भी हैं जो भक्ति भाव से ओत-प्रोत हैं। विद्यापति की अनेक स्तुतियों में शिवभक्ति के व्यंजक पदों में भक्ति के छोटे यंत्र-तंत्र मिल ही जाते है। कुल परम्परा और वैयक्तिक विचारधारा दोनों से शिव भक्त होते हुए भी राधा कृष्ण के प्रति भी उपमान बनाकर राधा का पलड़ा उनकी अनुरक्ति कम नहीं थी। प्रत्युत शिवजी को भारी नहीं तो बराबर तो रखा है। राधा के अंगों का

'जिम गज मौतिक हारा, काम कम्बु भरि कनक संभु परि ढारत सुरसरि धारा।'

निष्कर्ष- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विद्यापति भक्त नहीं श्रृंगारी कवि हैं। इस कवि द्वारा प्रणीत राधा और कृष्ण के प्रेमिल पदों में श्रृंगार रस की प्रधानता है। इनके वयः संधि, नख शिख, सद्यस्नाता, प्रेम-प्रसंग, दूती, नोंकझोंक, सरवर शिक्षा, मिलन, सखी, संभाषण, कौतुक, अभिसार, छलना, मान, मानभंग, विदग्ध विलास, बसंत, विरह, भावोल्लास आदि से सम्बन्धित समस्त पदों में भौतिक प्रेम और काम-वासना की प्रधानता है। इस कवि के पदों में श्रृंगार की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित होती दिखाई देती है। डा. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने ठीक ही लिखा है कि विद्यापति के इन पदों में रहस्यवाद के दर्शन करना व्यर्थ है। संख्यभाव की उपासना को ढूंढना मिथ्या है और जीवात्मा-परमात्मा के संबंध की स्थापना करना कोरी खींचतान है। इनमें तो मानव की मूल भावना काम का सांगोपाग चित्र अंकित किया गया है और इनका सम्बन्ध लौकिक जगत से है, परलौकिक से नहीं, क्योंकि इनमे जीवन के भौतिक आनंद का उज्जवल रूप अंकित है।

6.4 शिल्प विधान की दृष्टि से विद्यापति का काव्य

भाव काव्य-पुरुष की आत्मा है और शैली उसका शरीर। रचनाकार जो कुछ आस-पास के वातावरण से अनुभूत करता है व अपने मानवीय संवेगों में उद्घाटित करता है वह अपने भाव लोक में विचरता हुआ अपनी रचना को प्रस्तुत करने हेतु शब्द-शिल्प का आलम्बन करता है। अपने भावों को संवारता है व उसे उचित शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है। जो कवि अपनी रचनाओं से जितना अधिक रसमग्न करने की क्षमता रखता है उसकी कविता का कलापक्ष अथवा शिल्प विधान उतना ही सुसज्जित होता है। विद्यापति का भाव लोक जितना विस्तृत था, उनका शिल्प उसे अभिव्यक्ति देने में सक्षम रहा है।

संस्कृत, अवधी, मैथिली, बंगला, अपभ्रंश तथा प्राकृत भाषाओं पर प्रभावी अधिकार होने के कारण उनका शब्द संसार विशाल था। वह शब्द पद व वाक्य योजना में पारंगत थे। ओज, प्रसाद व माधुर्य उनकी कविता में सहज रूप से विद्यमान है। लोकभाषा की निकटता से उनका काव्य जनाकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करने में अधिक सक्षम रहा है। शब्दों के मर्म ज्ञान व अर्थगर्भित शब्द योजना में वह सिद्धहस्त थे।

उनके काव्य में साहित्य व संगीत का संगम है। अपने प्रयोजन की सिद्धि हेतु उन्होंने देशकाल से भाषा का सुखद माध्यम ही ग्रहण किया था जिसकी सुन्दरता, मधुरता और कमनीयता को संस्पर्श करने की दृष्टि तथा ध्वनि-संवेदना में वह असाधारण रूप से सम्पन्न थे। वह अपने सूक्ष्म विवेचन की परिकल्पना से इतने आश्वस्त थे कि सम-कालीन विद्वानों व साहित्यकारों की मान्यता के विरोध में उन्होंने काव्य में प्रयुक्त भाषा के विषय में अपना बेबाक पक्ष रखा।

लोकानुरंजन के प्रति उनका अनुराग निरन्तर रहा। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने लोक भाषा को अपने रचना संसार का माध्यम बनाया। लोक भाषा की रचनाओं को उत्तम मानकर विद्यापति ने साहस का परिचय दिया क्योंकि उस समय पंडितजन संस्कृत से इतर भाषा में काव्य-सृजन को उपहास की दृष्टि से देखते थे।

उनके आत्मविश्वास के फलस्वरूप ही उनका काव्य जन-जन का गीत बन गया। यह उनकी लोकप्रियता का सटीक प्रमाण है कि सुन्दर पनिहारिनों व हल चलाते किसानों के

मुख पर विद्यापति इतने आसक्त हुए कि उन्होंने सुमति नाम के एक संगीतकार को उनके काव्य में विद्यमान राग-रागनियों को संगीतबद्ध करने हेतु नियत किया था।

भाषा के विषय में विद्यापति के काव्य की सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि उन्होंने मैथिली भाषा में एकमात्र कृति का सृजन किया। रचना काल के दृष्टिकोण से वह पदावली समग्र जीवन प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास

बिन्दुओं को संस्पर्श करती रही है। उन्होंने संस्कृत भाषा में 11 व अवहट्ठ में 2 ग्रंथों की रचना की। लेकिन इतिहास इस बात का साक्षी है कि विद्यापति की कीर्ति का प्रमुख आधार उनकी पदावली ही सिद्ध हुई है। उनके सम्पूर्ण भाषा-शिल्प योजना के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि वे अन्य ग्रन्थ प्रतिभा स्थापन के लिए उस युग के मूलाधार थे। अपने पाण्डित्य को उन्होंने संस्कृत ग्रन्थों के द्वारा प्रदर्शित किया है। उनकी आत्मा केवल पदावली में बसती है जिसे उन्होंने भावना के सागर में डूबकर तथा कल्पना लोक में मुक्त विचरण कर सृजन किया।

रचनाओं के उपरोक्त विवरण के आधार पर उनका मनोवैज्ञानक विश्लेषण करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उनका व्यक्तित्व विभाजित था आत्मसम्मानी के साथ ही मधुर भावों के सुखद क्षणों को जीवन्तता प्रदान करना तथा अपने राजाओं का स्तुतिगान करना उनके दोहरे व्यक्तित्व को उजागर करता है।

ओज गुण- शब्द योजना भाव लोक के निकट है तथा बिम्ब भी सारगर्भित अर्थ लिए है। उनकी भाषा ओज गुण से परिपूर्ण है तथा राजसी भावों का सजीव चित्रण करती है।

प्रसाद गुण- साधारण प्रसंगों, कथा वर्णनों आदि में प्रसादयुक्त शब्दावली का प्रयोग किया गया है जिसमें न समाप्त है और न ही कर्ण कटु शब्द व संयुक्ताक्षर-

नन्दक नंदन कदम्ब क तरू पर,धिरे धिरे मुरलि बजाव ।
समय संकेत-निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोल पठाव ॥

माधुर्य गुण- माधुर्य व प्रसाद लाने के लिए कवि शब्दों को सघोष से अघोष और महाप्राण से अल्पप्राण कर लेते हैं- धिरे धिरे, अनुखन, उद्वेगल, मुरछाइल आदि शब्द इसी के उदाहरण है। शब्दों की द्विरुक्ति, सानुप्रासिकता, सानुनासिकता से माधुर्य की सृष्टि की गयी है।

व्यंजना शक्ति- कवि की भाषा ध्वनि व व्यंग को आप्लावित करती है। इन विशेषताओं से चमत्कार पैदा होता है तथा नायिका नायक की आपसी नोंकझोंक को सजीवता प्राप्त होती है-

कर धरू करू मोहे पारे,देव मैं अपुरव हारे कन्हैया।

सखि सब तजि चलि गेली, न जानू कौन पथ मेली कन्हैया।

हत न जाएब तुअ पासे, जाएब औघट घाटे, कन्हैया।

इन पंक्तियों में नायिका नायक को व्यंग्य के माध्यम से कामासक्त कर रही है, वह कहती है कि मैं निपट अकेली हूँ और विलम्ब होने पर पथ अज्ञात होने का बहाना भी चल जायेगा, अतः मेरे हाथ निःसंकोच थाम लो। मैं आज तुम्हें गलबहियों का अनुपम हार प्रदान करूंगी।

लक्षणा शक्ति- उपरोक्त उदाहरण में श्अपुरव हारेश् में लक्षणा शक्ति से उपलब्ध लक्ष्यार्थ हमें व्यंग्य के अर्थ के पूर्ण लक्ष्य के समीप ले जाता है। अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का इस प्रकार परस्परावलम्बी प्रयोग समूचे हिन्दी साहित्य में यदा-कदा ही मिलता है। उनके पदों में वाक्यों के अर्थ बाधित हों अथवा नहीं, लक्ष्यार्थ व व्यंग्यार्थ ही उनके प्रमुख लक्षण है। यहाँ दो अर्थ हैं प्रथम आसक्ति पक्ष द्वितीय भक्ति पक्ष। दोनों ही पक्षों में व्यंग्य समाहित है।

अर्थ विस्तार- विद्यापति एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त कर अर्थ-विस्तार कला में भी सिद्धहस्त थे। श्आरतिश् शब्द का ही अर्थ कहीं विनय है, कहीं दुहाई है और कहीं पैरों में गिरना है। इस शब्द का अर्थ आगे विह्वलता, अनुरोध व बेचौनी परिलक्षित होता है।

प्रतीक व बिम्ब योजना- विम्बात्मकता व प्रतीकात्मकता उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। इसी शिल्प गुण का निर्वाह करते हुए वह विभिन्न भावों को उद्घाटित करने हेतु प्रतीक-प्रद्धति का प्रयोग करते हैं।

कंचन ज्योति कुसुम परकास, रतन फलव बेलि बढ़ाओल आस ।

तकर भूले देल दूधक धार, फले किछुन हेरिए झनझनिसार ।।

उपरोक्त उद्धरण में कंचन-कुसुम, पानि दूधेक, रतन आदि शब्द प्रेम, अभिलाषा व भोग-विलास के प्रतीक बन गये हैं। वह अपनी सूक्ष्म कल्पना से विशेष पदार्थों को इस प्रकार अभिलष करते हैं कि बिम्ब सशक्त बनकर उभरता है। रूप चित्रण में वातावरण व देह सम्बन्धी सौन्दर्य का अवलम्बन करते हैं। शब्द योजना से अनुभूति साकार हो जाती है। वह भाव-आयोजन व रूप चित्रण दोनों के द्वारा बिम्ब की सृष्टि करते हैं।

संगीतात्मकता बोध - विद्यापति का काव्य संगीतात्मकता से आप्लावित है। उन्होंने अपनी रचनाओं में शब्द शिल्प का विशेष ध्यान रखा है। हर शब्द अपना संगीत लिये हुए है जिसके कारण वह सहज व मनभावन लगते है। यथा-

घन-घन घनन घुंघुर कत बाजए, हन-हन कर तुअ काता।

विद्यापति कवि तुअ पद सेवक, पुत्र विसरू जनि माता ।।

इन पद्याशों में ध्वनि-व्यंजना कवि की सूक्ष्म नाद संवेदनशीलता की परिचायक है।

लोकगीतात्मकता- उन्होंने अपने काव्य में लोकगीतों की शब्द माधुरी बजायी है। लोक साहित्य व लोक जीवन को आत्मसात करने के कारण उनकी रचनाएँ जन-जीवन में प्रभावी रूप से प्रविष्ट हो गयी हैं। महिलाएँ, पुरुष, बाल, वृद्ध आज भी उनके लोकगीतों को गुनगुनाते अपने श्रम में तल्लीन रहते हैं-

सुन रसिया, अब न बजाए बिपिन बसिया।

सखि मोर पिया,

अबहु न आओल कुलिस हिया।

अलंकार-योजना- विद्यापति मूलतः श्रृंगारिक कवि हैं। श्रृंगार कविता में अलंकार प्रचुरता से समाविष्ट रहता है। उन्होंने अलंकार योजना के द्वारा अपनी रचनाओं को

शिल्प विधान की दृष्टि से उल्लेखनीय बनाया है। सभी अलंकार उनकी पदावली में सहज ही दृष्टिगोचर होते है। यथा- अनुप्रास

कमल मिलल दल मधुप चलत घर,

बिहग गहल निज ठामे।

यमक - सारंग नयन, वमन पुनि सारंग सारंग तसु समधाने, प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास

सारंग उपर उगल दस पारंग, केलि करिथ मधु पाने।

उपरोक्त विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि भाषा, शब्द शक्ति, गुण, प्रतीक, बिम्ब, अलंकार योजना, नाद-सौन्दर्य व छन्द विधान में पारंगत होने पर भी उन्होंने किसी भी तत्व को काव्य की आत्मा श्रसश् पर कृत्रिम रूप से आरोपण कर दुराग्रहपूर्ण अति का उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया। काव्य उनके लिए अन्य कृतियों में साधन भले ही रहा हो किन्तु पदावली में साध्य ही था। लोकानुरंजन ही उनके कृतित्व में विशेष रूप से सजीव हो उठता है। उनकी रचनाएं न तो गम्भीरता के अथाह सागर की भांति दुरुह व अगम्य है न ही भावना लोक में मुक्त विचरती हैं। उनके सम्पूर्ण सृजन पर दृष्टिपात किया जाये तो स्पष्ट होगा कि उनका काव्य मानवीय संवेदनायुक्त व संगीत-सौन्दर्य व लोक नृत्यों का अनूठा संगम है।

6.5 मुक्तक काव्य परंपरा में विद्यापति का योगदान

काव्य स्मृति व स्मरणीय स्वरूप में उपलब्ध होने के कारण गद्य का पूर्ववर्ती कहा जाता है फिर भी वस्तुतः ऐसा नहीं है। ऐतिहासिक तथ्यों व उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर सत्यता के निकट न पहुंचने की अपनी अनभिज्ञता के कारणवश ही भाषा वैज्ञानिकों तक ने पद्य को गद्य का अग्रज घोषित करने की भूल की है और इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को अनदेखा कर दिया कि सायास और अनायास शब्द सापेक्ष अथवा तुलनात्मक हैं। जो कार्य विशुद्ध रूप से अनायास प्रतीत होते हैं, उनकी भूमिका में प्रयास का अभाव नहीं

होता। भाषा किसी भी राष्ट्र की हो, अपेक्षाकृत अनायास अभिव्यक्ति ही सायास अभिव्यक्ति की पूर्ववर्ती हो सकती है। वास्तव में दैनिक प्रयोग की भाषा ही परिष्कृत होकर काव्य भाषा तब बनी जब जीवन के किसी दुर्लभ सत्य या सुन्दर अनुभूति को परवर्ती पीढियों के लिए तथा अपने अतिरिक्त औरों के लिए सुरक्षित रख छोड़ने की आवश्यकता का प्रादुर्भाव हुआ । यह सत्य या अनुभूत भाषा ही कालान्तर में भाव सौन्दर्य व कल्पना से अलंकृत कर दी गयी।

कवि विद्यापति के पदों में मुक्तक की समस्त विशेषताएँ तो पाई जाती है, उनमें पद शैली का भी निखार चरमोत्कर्ष बिन्दु तक पहुंचा है। काव्य की अनेक विधाओं की तरह गीतिकाव्य चूंकि सचेत बुद्धि व्यापार से उत्पन्न वस्तु नहीं है, इसलिए आदि-मानव के अति पुरातन और आरम्भिक भावों के साथ ही गीतिकाव्य का जनम हुआ। हालांकि यह कहना कठिन है कि गीतिकाव्य के आविर्भाव का निश्चित समय क्या है ? किन्तु इतना सत्य है कि संवेगों की तीव्रता और उद्वेलन की सामान्य परिस्थितियों में भावाकुल अभिव्यक्ति ने स्वरों का रूप लिया-ऐसे शब्द और अर्थ तथा उनकी पुनरावृत्ति, यही गीतिकाव्य के आदि स्रोत हैं। महादेवी वर्मा का मत है-

'सम्भव है, जिस प्रकार मेघ को घुमडता-फिरता देखकर मयूर नाच उठता है उसी प्रकार मनुष्य ने भी पहले-पहल अपने भावों का प्रकाशन ध्वनि और गति के द्वारा किया हो।'

सुप्रसिद्ध रचनाधर्मी महादेवी वर्मा ने गीति-काव्य के मर्म को उसकी आदिकता संगीतात्मकता से इस प्रकार शब्दांकित किया है- 'चिड़ियों से खेत की रक्षा करने के लिए मचान पर बैठा हुआ युवक कृषक तब अचानक खेत और चिड़ियों को भूलकर बिरहा या चौता गा उठता है, तब उसमें खेत-खलिहान की कथा न कहकर अपने किसी विरह-मिलन की स्मृति को ही दुहराता है। चक्की के कठिन पाषाण अपनी सांसों से कोमल बनाने का निष्फल प्रयत्न करती हुई दरिद्र स्वी जब इस प्रयास को रागमय करती है, तो उसमें चक्की और अन्न की बात न होकर किसी आम्रवन में पड़े झूले की मार्मिक कहानी रहती है।'

प्राचीन भारतीय गीतिकाव्यों में अधिकांशतः धार्मिक और भक्तिपरक स्तुतियाँ ही प्राप्त होती है। वैदिक ऋचाएं गायी जाती थी। वैदिक युग में भारतीय समाज बहुत कुछ आदिम स्तर पर कबीला समाज था। उसमें समूह श्रम की प्रथा थी। मनुष्य सामाजिक नियमों से आज की भांति कठोरता से आबद्ध नहीं था। उनके आहार-विहार स्वच्छन्द व उन्मुक्त थे। तत्पश्चात् सामाजिक असन्तुलन और उलझनों के कारण जीवन में जो एकरसता और सन्देह की स्थिति बढ़ी, उसका प्रभाव पौराणिक देवों के स्तुतिवन्दन व रहस्यवादी अशरीरी उपासना के गीतों में सहज दिग्दर्शित होता है।

संस्कृत् गीतिकालीन काव्य का पुनर्विकास जयदेव के गीत श्गीत गोविन्दश् में दिखाई दिया। मध्यकालीन युग में संस्कृत जनभाषा नहीं रही। प्राकृतों का प्रभाव चौथी शताब्दी से ही बढ़ने लगा था। संस्कृत कवि प्राकृतों को स्वीकार करते थे किन्तु इनका उपयोग ग्रामीण और असभ्य लोगों के वार्तालाप की भाषा के रूप में करते थे। इस प्रकार जनभाषा के प्रति तिरस्कार की भावना उनमें बलवती थी। प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास

विद्यापत्ति का ही स्मरण कराती है। हिंदी के प्रयोगवादी काव्य में यद्यपि गीत-संगीत तत्व की सप्रयोजन अवहेलना हुई है फिर भी कतिपय प्रगतिशील गीतकारों ने नाद संवेदनीयता से लाभान्वित हो अपने गीतों को आकर्षक बनाने का उद्यम किया है। भगवतीचरण वर्मा के इस गीत में यह तत्व स्पष्ट रूप से सजीव हो उठता है-

चरमर-चरमर चूँ चरर-मरर,

जा रही चली भैंसा गाड़ी।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि महादेवी वर्मा के गीतों का अध्ययन किये बिना गीति साहित्य का विकासात्मक विश्लेषण अधूरा ही रह जाएगा। महादेवीजी के गीतों में जहाँ गीतिशिल्प का चरमोत्कर्ष अपनी सम्पूर्ण साहित्यिक गरिमा के साथ पाया जाता है, वहाँ विषयवस्तु एवं भावना के क्षेत्र में भी उनके गीत उपासना के उपकरण बन गए है। सम्भवत अपने दीप-गीतों की साधनात्मक ज्वाला को अक्षुण्ण रखने के लिए ही इस कविता का सृजन किया-

'यह मन्दिर का दीप, इसे नीरव जलने दो।'

विद्यापति ने अपने मुक्तकों के माध्यम से जीवन के मिलन व विरह के आयामों के साथ ही भक्तिभाव को भी सजीवता से शब्दांकित किया है। उनका प्रत्येक पद अपने आप में पूर्ण है व उसका स्वतंत्र अस्तित्व है। उन्होंने मिलन-विरह, उत्कंठा, अभिसार, रत्ति, मान-मनुहार, अनुराग आदि मानवीय भावों के स्वतंत्र चित्र उकेरे हैं। उनके मुक्तकों में वैशिष्टय है। वह अज्ञात यौवन को प्रस्तुत करने के साथ ही सद्यःस्नाता की मनोहारी छवि को प्रसतुत करते हैं। भाव विविधता उनके मुक्तकों की मुख्य विशेषता है। भक्तिकाव्य के संसार में वह किसी विशेष मत अथवा सम्प्रदाय से नहीं जुड़ते। वह शिव, शक्ति, कृष्ण, गंगा आदि सभी के प्रति विनयावनत हैं। भक्ति के लिए जिस वैराग्य, संसारी वस्तुओं के प्रति क्षणभंगुरता की दृष्टि, दीनता और हीनता की समस्त अपेक्षाएं, उनके काव्य में प्रचुरता से विद्यमान हैं। भक्ति की पुकार व आकुलता अनुभूति की सहजता व तीव्रता सभी की उनके काव्य में प्रभावी ढंग से अभिव्यक्ति हुई है। भक्ति सम्बन्धी काव्य सृजन के उपरान्त भी उन्हें मात्र संत अथवा भक्तकवि कहकर उल्लेखित नहीं किया जा सकता।

विद्यापति मूलतः श्रृंगारी कवि हैं। उनका समूचा काव्य श्रृंगार के प्रति ही अधिक समर्पित है। श्रृंगार में उनकी प्रतिभा के साक्षात दर्शन होते हैं। इस संदर्भ में उनके पदों में नख-शिख वर्णन, वयःसन्धि, योवन, प्रेम, प्रेमांकुर की उत्तरदायी दूती मिलन, विरह, मान-मनुहार, संभाषण चार्तुय, अभिसार, छलना व प्रेमिका-प्रेमों की आपसी नोंक-झोंक का सजीव वर्णन मिलता है। अनुभाव, विभाव व संचायी भाव का चित्र प्रस्तुत कर विद्यापति ने अपने वर्ण्य विषय को प्रभावोत्पादकता, सजीवता व स्थायित्व प्रदान किया है। यौवन की विभिन्न क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का विशद वर्णन कर उन्होंने श्रृंगार को परिपूर्णता प्रदान की है।

भक्ति कवि के रूप में उन्हें हिन्दी साहित्य में विशिष्ट दर्जा प्राप्त नहीं है। वह मूलत श्रृंगारिक कवि है व उनके परवर्ती कवियों ने उनके नख-शिख वर्णन, सौन्दर्य वर्णन व विरह आदि को अपने लेखन में अधिक महत्व दिया।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने इन शब्दों में उनकी सार्थकता को चित्रित किया है- 'विद्यापति के इस ब्रह्म संसार में भगवत् भजन कहाँ, इस वयः सन्धि में ईश्वर से सन्धि कहाँ, सद्यःस्नाता में ईश्वर से नाता कहाँ और अभिसार में भक्ति का सार कहाँ। उनकी कविता विलास की सामग्री है, उपासना की साधना नहीं। उससे हृदय मतवाला हो सकता है, शान्त नहीं।'

6.6 गीति काव्य परंपरा में विद्यापति की देन

गीति काव्य परम्परा एवं विद्यापति की देन

1. गीत शब्द का विविध पणीय एवं भ्रामक प्रयोग (1) कभी ऊहात्मक संकुचित एवं कभी प्रशंसा का पर्याय । (2) स्तुति भी गीत है, प्रस्तुति भी गीत। (3) गीत ही नये गीति, प्रगति आदि का रूप धारण कर नये रूप तत्व को ग्रहण करता है।

2. गीत शब्द की परिभाषा एवं विवेचन (2) शास्त्र एवं कला के विवेचक गीत की अनेक परिभाषायें कर चुके हैं। (2) वेदों में सामवेद गीत सम्बन्धी वेद है एवं भरत मुनि का नाट्यशास्त्र भी संगीत का विवेचक है।

3. पाश्चात्य विद्वान एवं गीति की व्याख्या (अ) हडसन के अनुसार गीतिकाव्य की परिधि में विशाल मानव समाज एवं व्यक्ति दोनों से सम्बन्ध रखने वाली अनुभूतियां आ सकती हैं। प्रेम, आशा, आकांक्षा, निराशा, वेदना, उल्लास, देशभक्ति सभी गीतिकाव्य का विषय बन सकता है। एक ही संक्षिप्त सगन भाव का विभास उसमें होना आवश्यक है। (ब) जार्ज सेन्ट्स वर्ग के अनुसार गीत वही है जिसमें अनुभूति एवं भाव के अनुसार भाषा एवं छन्दों का चुनाव हो। (स) विलियम गीत को कवि की भावनाओं के प्रकाशन का परिणाम बताते हैं। (द) डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा मानसिक आनन्द को गीत का गुण मानते हैं। (य) आचार्य शुक्ल के अनुसार गीत की मधुर ध्वनि में प्रवाह के मध्य कुछ चुने हुए व्यापार एवं पदार्थों की झलक आदि होती है। (र) महादेवी वर्मा के अनुसार

'सुख-दुख की भाव-विगमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्द का स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।'

निष्कर्ष- गीत के लिए आत्मानुभूति, परानुभूति गेयत्व एवं संक्षिप्तता आवश्यक है।

4. गीति काव्य की अनिवार्य अपेक्षायें (1) गीति काव्य में तन्मय करने की शक्ति होनी चाहिए। (2) गीति वस्तुतः सृष्टि की प्रकृति है। उसमें वायु की सनसनाहट, पानी की कलकलाहट, पक्षियों की कलरव ध्वनि एवं मनुष्य का सुख-दुःख सभी गीति की परिधि में आ जाता है।

5. मानव सभ्यता एवं गीतात्मक विकास (1) सामवेद को मानव जाति का सर्वाधिक प्राचीन गीति ग्रंथ बताया गया है। सामवेद के गान के आधार पर ही राग-रागनियों के रंग, रूप, स्वर, ताल प्रभाव, वाद्ययंत्र, देव-देवता, ऋतु प्रकृति आदि सभी का निर्धारण हुआ। (2) संस्कृत साहित्य का बहुत सा भाग संगीतमय है। महाकवि कालिदास के ऋतु संहार व मेघदूत को श्रेष्ठ गीति काव्य माना जाता है। (3) संस्कृत की पउरपंचिसिका, अवधत भामिनी विलास गीति शैली की विशेष रचनायें हैं। जयदेव की गीति गोविन्द तो संस्कृत गीतिकाव्य का सवर्वा ेत्तम रत्न है (4) हिंदी में गीतिकाव्य की प्राचीन कृति सरप्पा की रचनायें हैं। सिद्ध लोग गा-गाकर अपनी गीतियों का पूर्ण प्रचार करते थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि इनमें शांत एवं श्रृंगार रस के गीत अत्यन्त संक्षिप्त हैं।

6. विद्यापति के गीतिकाव्य की विशेषतायें- (1) डॉ. जगन्नाथ नलिन ने कहा है कि - विद्यापति पदावली मूर्च्छना भरे संगीत की रंगस्थली है एवं आत्मविस्मृत कर देने वाली अनूभूतियों का साधना मंदिर है। (2) विद्यापति के गीतों की परख के लिए निम्नांकित तत्वों पर ध्यान जरूरी

है- (i) गेयता (ii) भाव प्रसार, (iii) प्रभाव सीमा।

(i) गेयता- विद्यापति के गीत पूर्णतया गीतात्मक हैं। उनमें अपेक्षाकृत लय एवं स्वरताल है। उन्होंने कोमल कांत पदावली को मुख्यता प्रदान की है। जैसे-

अपूरब के बीहि आनि मालाजोल, लावनिसार ।

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास

नाद सौन्दर्य के लिए उन्होंने सानुप्रास पदावली, शब्दों की पुनरुचि एवं गुण या क्रिया से सम्बन्धित शब्दों का प्रयोग किया है यथा- जयजय, भैरवी, असुर, भयाउनि, पशुपति, भामिनी, माया

(ii) भाव-प्रसार- विद्यापति की पदावली अपरिमित है। एक ओर उनके गीत भक्तिभाव की सात्विकता लिये हुए हैं दूसरी ओर श्रृंगार की माधुरी से मंडित हैं। एक ओर वीर भाव की ओजस्विता है, तो दूसरी ओर चमत्कारपूर्ण कौतूहल। दीनतापूर्वक आराध्य के चरणों में आत्म समर्पण सर्वत्र विद्यमान है। वे चाहे शिव की या दुर्गा मैया की शक्ति में तल्लीन हो आत्मसमर्पण सर्वत्र विद्यमान रहता है।

(iii) प्रभाव-सीमा (1) विद्यापति के गीतों की प्रभाव-सीमा विस्तृत है। विद्यापति के गीतों ने भक्त कीर्तनीय साधु, जीवन में लिप्त भोगी, विरक्त वैरागी, क्या नर क्या नारी सभी को प्रभावित किया है। (2) मिथिला के लोकमानस में उनके गीतों का प्राचुर्य उसकी प्रभाव-सीमा के कारण है। (3) विद्यापति की गीति गंगा महाप्रभु चौतन्य से आत्मविस्मृति के लोक में ले जाने की अपूर्व क्षमता रखती थी।

निष्कर्ष- विद्यापति के गीतों में एक ओर लोकभाषा की सरलता, सरसता एवं सुकुमारता है तो दूसरी ओर अनुपम माधुरी एवं सौन्दर्यमयता भी मिलती है। एक ओर वे हिंदी के आदि गीतकार हैं व परवर्ती गीतकारों को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। उनका गीतिकाव्य मानस का प्रतिबिम्ब है और उसमें कितने ही रसिकों के लिए रसनीय सामग्री का भण्डार है। निश्चय ही विद्यापति की देन गीत के क्षेत्र में सर्वोपरि है।

विद्यापति का प्रदेय

(1)सिद्धों, नाथों एवं जैनाचार्यों की भाँति विद्यापति ने भी साम्प्रदायिक विश्वास जमाने वाले साहित्य की रचना की। यथा दुर्गा भक्त तरंगिणी शैव सर्वस्त्र सार और इनके साथ ही प्रमाणभूत पुराण संग्रह इसके प्रमाण हैं। (2) विद्यापति की वह देन भी महत्वपूर्ण है जिससे परवर्ती कवि गौरवान्वित हुये। विद्यापति ठाकुर ऐसे सारस्वत-वैभव सम्पन्न कवि थे जिनकी कविताओं के चारू चमत्कार से व्यक्ति मुग्ध हुए और

उसी में डूबते गए। (3) अंग्रेजी साहित्य के स्पेन्सर की चार्ल्स लैम्ब ने कवियों का कवि कहकर प्रशंसा की है। वही उपाधि हम विद्यापति के लिए प्रायोगित कर सकते हैं, (4) पूर्ववर्ती मध्ययुगीन हिन्दी कविता ने भाव एवं शैली दोनों ही क्षेत्रों में विद्यापति को अपनाया है। (5) कबीर आदि संतों को भी विद्यापति ने प्रभावित किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि कबीर की वाणी में गोविन्द माधो, गिरधर, मुरारी, मधुसूदन, बनवारी आदि विशेषणों में विद्यापति का प्रवाह लक्षित होता है। (6) महाकवियों ने गीतिशैली विद्यापति से ही सीखी। सूर के गीतिकाव्य में राधा-कृष्ण का हास विलास विद्यापति से ही आया प्रतीत होता है। (7) अष्टछाप के प्रायः समस्त कवि विद्यापति के ऋणी हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्होंने श्रृंगार के आलम्बन, आश्रय, अनुभाव, संचारी चेष्टायें आदि अधिकतर विद्यापति से ही ग्रहण की हैं। (8) घटना साम्य, भाव-साम्य रूप, सौन्दर्य चित्रण आदि को देखकर कहा जा सकता है कि कृष्ण भक्त कवियों में राधा कृष्ण का जो श्रृंगारी यौवन विलासी सौंदर्य, तृषित एवं कामतृप्त रूप है वह विद्यापति की ही देन कहा जा सकता है।

निष्कर्ष-

विद्यापत्ति नदी के उस बाँध की भाँति हैं जहाँ पानी आकर एकत्रित हुआ है एवं आवश्यकतानुसार अनेक धाराओं से बह निकला है। सत्य है कि उन्होंने पूर्व से आती हुई परम्परा को एकाकार किया है एवं वहाँ से वे धारायें फिर से नये रूपों में सज सँवरकर विकसित होती हुई निरन्तर आगे बढ़ती दिखाई देती हैं। डॉ. शिवप्रसाद के शब्दों में विद्यापति संभवत अपने काल के इस तरह के अद्वितीय कवि थे जिन्होंने गीत को उसकी स्वाभाविक प्रकृति को पहचान कर एक अभिनव पूर्णता और उत्कर्षता प्रदान की। सूर और मीरा भी संगीतात्मक को अपने गीतों में सँजाते है, पर विद्यापति की सहजता इनमें नहीं है। कारण विद्यापति की अद्भुत लोक जीवन सम्पृक्तता उन्हें अपने युग के अन्य गीतकारों से अलग करती है। विद्यापति अच्छे संगीतज्ञ प्रतीत होते हैं पर उन पर ग्वालियर घराने के प्राचीन संगीत का प्रभाव नहीं है जैसा सूर और मीरा पर जाने-अनजाने पड़ा है। इसी कारण विद्यापति के गीतिकाव्य में लय और तर्ज की मौलिकता

तो है ही, एक अछूती भाव संदेहों को व्यक्त करने में समर्थ ग्राम्यता या नैसर्गिकता भी दिखाई पडती है। इसी कारण विद्यापति के गीत एक व्यापक जन-समाज के गले के कंठहार बन सके। इन गीतों में इतनी आत्मीयता और निकटता भरी है कि अनपढ़, गँवार व्यक्ति भी इनका पूरा प्रभाव ग्रहण कर लेता है।

'विद्यापति का श्रृंगार वर्णन' संयोग श्रृंगार एवं वियोग श्रृंगार

विद्यापति का श्रृंगारत्व

विद्यापति के काव्य का प्रधान रस श्रृंगार है। उन्होंने श्रृंगार के दोनों पक्ष-संयोग तथा वियोग का निरूपण बहुत मार्मिक ढंग से अपने काव्य में किया है। उन्होंने संयोग श्रृंगार का चित्रण वियोग श्रृंगार की अपेक्षा ज्यादा किया है। ऐसा लगता है कि उनकी रुचि संयोग पक्ष के वर्णन में ज्यादा रमी है। वियोग पक्ष का वर्णन उन्होंने न्यून मात्रा में किया है पर वह भी मार्मिक है। विद्यापति की पदावली में श्रृंगार अपने चरम शिखर पर, पूर्ण परिपाक पर पहुंचा है, पर उसमें भी विद्यापति का नायिका-निरूपण प्रधान है।

श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है। प्रिय वस्तु में मन के प्रेम-प्रेरित होकर उन्मुख होने की भावना रति कहलाती है। श्रृंगार के स्थायी भाव के रूप में रति वह भावना, अनुभूति अथवा कामना है जिसके वशीभूत होकर नायक-नायिका शारीरिक अथवा इंद्रियसुख का उपभोग करना चाहते हैं। श्रृंगार रस में कामभाव अथवा मादनभाव प्रमुख होता है। उसका आलंबन विभाव नायिका है तो आश्रय नायक । एकांत स्थान, चांदनी रात, उपवन, नदी-तट, रूप-सौंदर्य उद्दीपन हैं, तो प्रेम से देखना, मुस्कराना, मधुर भाषण आदि अनुभाव हैं। इसमें हर्ष, लज्जा, ग्लानि, चिता आदि संचारी भाव है। विद्यापति की पदावली में श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

संयोग श्रृंगार

विद्यापति ने संयोग श्रृंगार के अंतर्गत रूप वर्णन में नखशिख वेषभूषा, आकृति, प्रकृति तथा सुकुमारता का वर्णन किया है। नख-शिख का संबंध अलौकिक आलंबनों से होता है एवं शिख-नख का लौकिक से। विद्यापति का दोनों तरह का वर्णन प्रशंसनीय है। वर्णन में कवि ने बिम्ब पेश किए हैं। कहीं उनका यह वर्णन उभरा है, अलंकृत है तो

अन्यत्र सामान्य भी है। अलंकृत नख-शिख वर्णन में कवि ने चमत्कारपूर्ण बिम्ब पेश किए हैं। यथा-

पल्लवराज चरनजुग सोभित
गति गजरात क भाने।
कनक कदलि पर सिंह समारल
ता पर मेरू समाने।
मेरु उपर दुइ कमल फलायल
नाल बिना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि

तओ नहीं कमल सुखाई।
अधर बिम्बसन, दसन दाड़िम बिजु
रवि सरि उगथिक पासे।
राहु दूर बस नियदो न आवथि
तैं नहि करथि गरासे ।।

'उसके दोनों चरण कमल की भांति सुशोभित है, उसकी चाल गजराज का भी मान भंग करती है। आश्चर्य तो देख, स्वर्ण कदली पर सिंह सजाया गया है। उसके ऊपर सुमेरु शोभित है। सुमेरु पर दो कमल खिले हैं, जो नाल के बगैर ही शोभा पा रहे हैं। (स्वर्ण कदली के समान नायिका की जंघाएं हैं, जंघाओं के ऊपर सिंह के समान पतली कमर है, उस पर सुमेरु जैसा वक्षस्थल है। वक्षस्थल पर दोनों स्तन विराज रहे हैं। वे बिना नाल के कमल है।)' तुम कहोगे कि बगैर नाल के तो कमल सूख जाने चाहिए। सूखे कमल के समान स्तन हैं तो नायिका का रूपवती होना संभव नहीं। पर वास्तविकता यह है कि उस बाला ने जो मणिमय हार पहन रखा है, वह गंगा की धाराओं के समान है, गंगाजल से सिंचित होने से कमल विकसित हैं। उसके लाल-लाल ओठ बिंबफल के समान हैं, दांतों पर लाल अधरों की झलक पड़ रही है, अतः दांत दाड़िम के बीज जैसे आकर्षक हैं। चंद्रमा

के समान उसका मुख है, उस पर लाल सिदूर का तिलक लगा है, जिससे ऐसा आभासित होता है मानो सूर्य तथा चंद्र एक साथ उदित हुए हों। है दोनों के साथ रहने से राहु के के निकट आने का साहस नहीं होता, वह दूर ही रहता है, अतः न तो वह चंद्रमा को ग्रस पाता है न सूर्य को ? (बाला ने श्रृंगार किया है, अतः जुड़ा भी बंधा है।) काले बाल ही राहू है बाल बांध दिए गए है, अतः मुख-मंडल पर फेल नहीं पाते, पीछे ही रहते हैं। इस पद में रति स्थायी भाव को जाग्रत करने हेतु किया गया आलंबन का रूप-विधान दृष्टव्य है। (डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित)

विद्यापति ने रूप-वर्णन के अंतर्गत रूपवती नायिका का बहुत सूक्ष्म व्यापारों से युक्त मार्मिक वर्णन किया है, यथा-

आध आंचर खसि आध बदन हसि
आधहि नयन तरंग। आध उरज हेरि आध आंचर भरि अब धरि दगधे अनंग ।।

विद्यापति ने तीनों तरह के शास्त्रीय अलंकारों (अंगज, अयत्नज तथा स्वभाषण) को प्रयुक्त किया है। अंगज अलंकारी के अंतर्गत आने वाले हाव, भाव-हेला, अंग चेष्टाओं, दशाओं तथा बलवती काम चेष्टाओं से संबंध रखते हैं, विद्यापति इनके अंकन में बड़े कुशल हैं (डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित) यहां हम हाव-भाव के उदाहरण पदावली से पेश कर रहे हैं-

पथ गति पेखल मो राधा।
तखनुक भाव परान पए पीड़लि
रहल कुमुदनिधि साधा।
आध बदन ससि बिहसि दिखाओल
आध पीहलि निअ बाहू

जतने आएलि धनि सयन के सीम।
पांगुर लिखि खिति नतरहु गीम।

अयत्नज अलंकारों के वर्णन में भी कवि अत्यंत कुशल है। उसके नायिका के रूप वर्णन को सुनकर नायक में रूप दर्शन को आकुलता स्वतः जाग उठी है, यथा-

पीन पयोधर दूबरि गता।
मेरू उपजल कनक-लता ।
ऐ कान्हु एक कान्हु तोरि दोहाई।
अति अपूरब देखिल साई ।।
भनि विद्यापति दूति बचने ।
एत सुनि कान्हु कएल गमने।

विद्यापति के श्रृंगार वर्णन में नायिका के रूप विकास की हर अवस्था का चित्रण मिलता है। नायिका की वय-संधि में यौवनागम तक की सभी स्थितियों के कई मासिक चित्र कवि ने अपने सूक्ष्म निरीक्षण तथा अनुभव से पेश किए हैं जो रस-परिपाक में सहायक है। वयःसंधि से कवि ने शुरू किया है-

सैसव जोवन दुति मिलि गेल।
स्त्रवन के पथ दुहु लोचन लेल ।

पुनः उरोजों के विकसित होने का वर्णन है- किछु-किछु उतपति अंकुर मेल।

यौवनागम के स्वाभाविक कार्य व्यापार का वर्णन भी अत्यंत मार्मिक है-

उरहि अंचल झांपि चंचल
आध पयोधर हेरु,
नौर पराभव सरद-धन जनि,
बेकत कएल सुमेरु ।

विद्यापति के श्रृंगार चित्रण की विशेषता का निरूपण करते हुए डॉ.आनंदप्रकाश दीक्षित ने लिखा है-'वे एक साथ नायक तथा नायिका के रूप का ऐसा चित्र पेश करते हैं कि उधर नायक प्रभावित होता है तो दूसरी तरफ नायिका। विद्यापति ने नायक तथा नायिका दोनों की रूप-माधुरी, मुद्रा-चेष्टा तथा कार्य व्यापार का एक साथ समान वर्णन करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।' विद्यापति ने सम प्रेम का वर्णन किया है तथा

संयोग-वियोग दोनों में नायक-नायिका को समान रूप से व्यग्र पीड़ित दिखाया है। विद्यापत्ति ने नायक, नायिका, दूती आदि के विभिन्न तरह के वर्णन किए हैं। नायिकाओं के जाति, प्रकृति, धर्म, गुण, वण तथा परिस्थिति के अनुसार कई भेदों का कवि ने मार्मिक वर्णन किया है। विद्यापति का श्रृंगार वर्णन भाव प्रधान, अनुभूतिमय, सरस एवं सहृदय को रसमग्न करने वाला है।

वियोग पक्ष

विद्यापति की पदावली में हमें वियोग श्रृंगार का निरूपण भी मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि विद्यापति संयोग श्रृंगार के चित्रण में ज्यादा सफल हैं तो अन्य विद्वान उन्हें वियोग वर्णन में ज्यादा निपुण मानते हैं। डॉ. मनोहर लाल गौड़ ने लिखा है, श्विद्यापति प्रमुखतः संयोग का कवि है। प्रेयसी के रूप सौन्दर्य, ललित चेष्टाओं तथा काम केलियों के वर्णन में वह अप्रतिम है, लेकिन वियोग वर्णन में उसे इतनी सफलता नहीं मिली है। वियोगिनी नायिकाएं अपनी मर्म व्यथाओं का प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास उद्घाटन कहीं भी नहीं करती, न बिहारी की भांति वे अतिशय क्षीण ही हुई है। उनकी उक्तियां छिछली लगती हैं। वे शारीरिक या तो स्मृति करती है अथवा उनकी लालसा में मरी जाती हैं। वियोग में जैसे अंतर्मुख होकर वियोगिनी को आत्म-निरीक्षण करना चाहिए, वह विद्यापति में नहीं है। कवि यहां आकर सूरदास से हेठा लगता है। सूरदास संयोग तथा वियोग दोनों के सफल चितेरे हैं। विद्यापति का विरह जो असफल रहा है, उससे तो अनुमान होता है कि वे शरीर के मांसल रूप तथा भोग के कवि हैं, हृदय की उदात्त अनुभूतियां उनके चिंतन के बाहर हैं। विरहिणी को कृष्ण का भेजा संदेश देखिए- ‘

सजनी कानुक कहब बुझाई।
रोपि प्रेम क बिजअंकुर मूड़लि, वांचब कौन उपाई।
ल बिन्दु जैसे पानि पसारिए,
ऐसन मार अनुराग
सिकता जल जैसे छनहि सुखए,

तेंसन मोर सुहाग-आदि

दूसरी तरफ कुछ अन्य विद्वान विद्यापति को वियोग वर्णन में ज्यादा सफल मानते हैं। डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित ने लिखा है- 'कवि विद्यापति ने भी राधा-कृष्ण के विरह-वर्णन में भाव विस्तार किया है। विद्यापति का वियोग-वर्णन संयोग-वर्णन की बजाय ज्यादा उत्कृष्ट तथा दिव्य है। संयोग में जो विलास-वासना थी वह वियोग की आंच में तप-गलकर उज्जवल भावलोक में जा पहुंची है, वहां भावयोग की तन्मयता तथा आत्मार्पण की निष्कामता है। विद्यापति के विरह-चित्रण में भाव तथा कल्पना का, अनुभूति एवं तन्मयता का ऐसा अद्भुत सामंजस्य है कि पाठक सहज ही सुध-बुध भूलकर तन्मय हो जाता है। भावों की विविधता, व्यग्रता, परिवर्तनशीलता, दीनता, अनुरोध, वेदना-निवेदन, प्रेम का घातक प्रहार तथा उससे पैदा पश्चात्ताप, उपालंभ, विवशता, याचना आदि इतने अनेक रूपी भाव अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।' विद्यापति पदावली का प्रारंभ ही प्रेमी कृष्ण की राधा के प्रति उत्सुक मिलनाकुलता के वर्णन के साथ होता है-

नंद क नन्दन कदम्ब क
धिरे धिरे मुरलि बजाव ।
समय-संकेत-निकेतन बइसल
बेरि-बेरि बोलि पठाव ।।
सामरि तोरा लागि
अनुखन बिकल मुरारि ।।

पदावली का विरह प्रसंग बड़ा मार्मिक है। उसमें हृदय की अंतवृत्तियों को सहजता है।–

सखि हे कतहु न देखि मधाई
कांप सरीर थीर नहि मानस
अवधि नियर भेल आई।

इस विरह की चरमावस्था राधा के माधव-माधव रटते हुए माधव बन जाने में है-

अनुखन माधव माघव सुमरइत
सुन्दरि भेलि मधाई।,
ओ निज भाव सुभावहि विसरल
अपने गुन लुबुधाई ।।

बसंत, सावन-भादो आदि आ-आकर विरहिणी को और भी सताते हैं। उसके दुःख को ओर-छोर नहीं है। डॉ.दीक्षित ने विद्यापति के विरह वर्णन की विशेषता का निरूपण करते हुए लिखा
है-'विरहिणी राधा मूक-साधिका है, वह चुप रहकर सब सहन करती है, अपने मुंह से कुछ नहीं कहती। विरह का संदेश तथा आत्म-निवेदन बहुत थोड़े समय तक रहता है। फिर सखी ही उसकी दशा का दर्शन कराती है। पीड़ा की अधिकता में अपने मुख से कुछ कह सकना संभव भी नहीं। जीवन के इस गंभीर तथ्य को विद्यापति भली तरह जानते थे, अतः राधा के मुंह से अपना रोना-धोना प्रकट करके उन्होंने विरह की गंभीरता को उथला-छिछल नहीं किया।' विद्यापति का विरह जायसी का सा ऊहात्मक है, अतः हास्यास्पद नहीं है। उसमें प्रेम की गंभीरता है।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि विद्यापति संयोग श्रृंगार तथा वियोग श्रृंगार दोनों के चित्रण में सफल हैं। उन्हें दोनों क्षेत्रों में समान रूप से सफलता मिली है। संयोग में अंतवृत्तियों के चित्रण में उतनी गहराई नहीं रहती जितनी वियोग दशा में। विद्यापति का वियोग वर्णन अत्यंत मार्मिक है। हां, यह बात तथ्यपूर्ण है कि विद्यापति में संयोग श्रृंगार का जितना वर्णन हुआ है, उसकी अपेक्षा में वियोग श्रृंगार का वर्णन कम है। इस बात को लक्षित करके समीक्षकों ने विद्यापति को संयोग श्रृंगार

का कवि घोषित किया है। वियोग श्रृंगार के निरूपण में अंतवृत्तियों के उद्‌घाटन का ज्यादा अवकाश था, पर विद्‌यापति ने इस अवसर का उपयोग कम किया है। फिर भी यह तो स्पष्ट परिलक्षित होता है कि विद्‌यापति को संयोग तथा वियोग दोनों के निरूपण में समान सफलता मिली है।

'ईश्वर का निरूपण हो जाता है। अनेक स्थलों पर सिद्‌धान्त और विचारों में आवर्तन भी हो जाता है।'

बौद्‌धिकता की प्रधानता कबीर का काव्य असाधारण है। उनका समूचा जीवन सांसारिक वृत्तियों तथा सामाजिक बुराइयों को दूर करने में गया। उनका काव्य सायुक्त व मौलिकता से परिपूर्ण है। उन्होंने कविता लिखने के लिए मात्र शब्दों का चयन नहीं किया, बल्कि उन शब्दों का चिन्तन व मन्थन किया। तत्पश्चात् उसे अपने काव्य में प्रयुक्त किया। इस प्रकार उनका काव्य भावुकता से परे बुद्‌धि तत्व की प्रधानता लिए है।

1. खुमान रासो-यह रासो कायपरंपरा की प्रथम काव्य रचना मानी जाती है। इसमें नवी शती के चित्तौड़ नरेश खुमान के युद्‌धों का चित्रण है। इस एप में लगभ पात्र हजार छंद है जिसमें राजा के गुद्‌ध विवाह आदि का वर्णन हुआ है। इसमें सत्रहवीं शताब्दी तक के शासक का भी वर्णन मिलता है जिसके आधार पर राजस्थान के वृत्त संग्रहकारों ने इसे आदिकाल की रचना मानने से मना कर दिया। परंतु इस संबंध में युद्‌धों का सजीव वर्णन एवं युगीन परिस्थितियों के स्पष्ट चित्रण यह सिद्‌ध करते है कि मूल रूप से यह नहीं शती की रचना है जो कि सत्रहवीं शती के किसी लिपिकार को मिली होगी। दूसरा तथ्य यह है कि प्राय लिपिकार अपने आश्रयदातों राजाओं के नाम की महत्व दिलाने कि लिए किसी भी प्राचीन कृति की प्रतिलिपि तैयार करते समय उसका नाम भी सम्मिलित कर देता था। अतः इस दृष्टि से भी इस कृति को सत्रहवी शती की रचना कहने का कोई औचित्य नहीं है। इस रचना में दोहा, सवैया, कवित्त आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। इसमें वीर रस के साथ-साथ श्रृंगार रस का भी परिपाक हुआ है। यथा-

पिठ चित्तौड़ न आविऊ, सावण पहिली तीज।

जोवै बाट बिरहिणी, खिण खिण अणवै खीज ।।
संदेश पिण साहिबा, पाछो फिरिव न देह।
पंछी घाल्लवया पिंज्जरे, छूटण से संदेह ।।

2. बीसलदेव रासो-यह रासो पंरपरा का एक महत्वपूर्ण काव्य ग्रंथ है। इसके रचयिता नरपति नाल्ह है। इसका रचनाकाल सम्वत् 1272 दिया गया है। परंतु विद्वानों ने इसका रचनाकाल सम्वत् 1200 से 1220 वक माना है। बीसलदेव रासो के शिलालेखों पर भी है-

बारह से वहोत्तराहां मंझारि।
जेठ सुदी नवमी बुधिवारि।
नाल्ह रसायण आरम्भई।
सरदा तुठी ब्रहाम् कुमारि ।।

यह बीर काव्य न होकर प्रेम काव्य है तथा इसमें विवाह के पश्चात् पत्नी के प्रेम को विकसित होते हुए दिखाया गया है। इस कृति में भोज परमार की पुत्री राजमती का अजमेर के चौहान राज बीसलदेव के साथ विवाह, उसके वियोग व पुनर्मिलन का चित्रण किया गया है। इस कृति की प्रमुख विशेषता यह भी है कि जहां अन्य रासो काव्य में युद्ध वीरता का अधिक चित्रण हुआ है, वहीं इस कृति में श्रृंगार का वर्णन प्राधान्य है। इसमें संदेश-परपरा का निर्वाह हुआ तथा इसमें वियोगावस्था में बारहमासा वर्णन पद्धति का भी पालन किया गया है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियों में कवि ने बीसलदेव के प्रवास में नायिका राजमती की विरह-वेदना को इस प्रकार व्यक्त किया है-

अस्त्रीय जनम काई दीर्घउ महेस।
अवर जनम थारई घणा रे नरेस।
राणि न सिरजीय धउलीय गाइ।

वणषण्ड काली कोइली हउं बइसती

अंबा नइ चंपा की डाल ।

महेशा तुमने मुझे स्त्री में क्यों जन्म दिया। यदि आपको मुझे जन्म ही देना था तो काली कोयल के रूप में मुझे पैदा कर देते तब में आम की व चंपा की डालियों पर निवास करती।

3. हम्मीर रासो-इस काव्य रचनाठि की प्रामाणिकता अभी तक सिद्ध नहीं हो।
सकी। प्राकृत पैगलम् में हम्मीर नरेश से संबधित कुल आठ छंद प्राप्त हुए हैं। इन्हीं छंदों को आधार बनाकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हम्मीर रासो नाम के एक स्वतंत्र ग्रंथ की उद्भावना की। उन्होंने शाईघर को इसका कवि माना है। परंतु राहुल सांकृत्यायन का विचार है कि इसके रचयिता जज्जल कवि हैं। हम्मीर रासो का निम्नलिखित छंद देखिए-जिससे यह सिद्ध होता है कि जज्जल ही इसके रचयिता है-
'हम्मीर कज्जु जज्जल भणह, कोलाहल मुंह मह जलउ। सुरताण सीस कर बाल दई, तेज्जि कलेवर दिअ पलउ ।।'

4. परमाल रासो-रासो काव्य परंपरा का यह एक उल्लेखनीय काव्य ग्रंथ है परंतु इसकी हस्तलिखित प्रति अभी तक नहीं मिली। उत्तर प्रदेश में यह आल्हा खण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। उसी का विकसित रूप ही परमाल रासो कहा जाता है। 'आल्हाखण्ड' मूल रूप से मौखिक काव्य है जिसे चार्ल्स इलियट ने 1865 ई. में लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास किया था। गले ही इस कवि को डॉ. सुंदर दास व नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया गया है, फिर भी इसे प्रामाणिक रचना नहीं कहा जा सकता। ऐसा माना जाता है कि इस कृति के रचयिता कवि जगनिक थे और वे महोबा के राजा परमालदेव के दरबार में रहते थे। उन्होंने इस कृति में आल्हा व ऊदल दो वीर भाइयों के रण-कौशल व पराक्रम का वर्णन किया है। चूंकि इस रचना के जितने भी छंद

मिले हैं, वे सभी मौखिक काव्य से ही प्राप्त हुए हैं तथा मौखिक अभियुक्ति की भाषा में निरंतर परिवर्तन होता रहता है, अतः इसकी भाषा में छंद-विधान आदि के बारे में निश्चित तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह रचना वीर रस से ओत-प्रोत है, यथा-

बारह बरस लो कूकर, अरू तेरह लो जियै बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन को सियार। धिक्कार ।।

5. विजयपाल रासो-यह एक गीत कथात्मक रासो है। इसके रचना काल के बारे में भी विद्वानों में काफी मतभेद है। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने इसे सोलहवीं शताब्दी के बाद की रचना सिद्ध किया है परंतु मिश्र बंधुओं ने इसे 1298 ई. आसपास की रचना कहा है। इसके कवि नल्ल सिंह हैं तथा इसमें कुल 42 छंद उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः यह एक लघु काव्य है जिसमें राजा विजयपाल के युद्धों का ओजपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी नाम से एक अन्य रचना का उल्लेख किया है जिसके कवि मल्लह देव बताए गए हैं परंतु यह रचना अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी। 8. पृथ्वीराज रासी-रातो का परचम कर महाकाय कहा गया है। इसके रचतिचंदबरदाय में जो दिल-नरेश चौहान के मित्र तथा दरबारी कवि थे। चंदबरदायी इस रखना को पूरा नहीं कर अतः उनके पुत्र जल्हण ने इसे पूरा किया। ऐसा माना जाता है कि जब पृथ्वीराज को बंदी बनाकर अपने सह से गया तब बने इस कार पूर्ण करने का कार्य अपने पुत्र जल्हण के हाथों सौंप दिया। इसमें लिखा भी है..

पुस्तक जल्हण हाथ है,

बलि गज्जन नृप काज

इस ग्रंथ में कवि ने दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान की युद्ध वीरता, संगिता आदि घटनाओं के 69 समय (खण्डों) का वर्णन किया है अभी तक पृथ्वीराज रासो के धार संस्करण मिले हैं जिनमें से नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण सदसे छोटा है जिसमें केवल 1300 छंद हैं।

परंतु इस गंध की प्रामाणिकता-अप्रामाणिका के बारे में विद्वानों में पर्याप्त मतनेद हैं। आयार्य शुक्ल, डॉ. यूलर, श्यामल दास आदि ने इसे अप्रामाणिक माना है, जबति मिश्रबंधु, कर्नल टॉड, श्यामसुन्दर दास आदि ने इसे प्रामाणिक माना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ सुनीति कुमार चटर्जी जैसे विद्वानों ने इसे अर्थ-प्रामाणिक माना है।

पृथ्वीराज रासो अपने काव्य सौंदर्य के लिए एक उल्लेखनीय काव्य-रचना मानी गई है। यह रचना वस्तु-वर्णन, प्रकृति-वर्णन, युद्ध-वर्णन, नख-शिख वर्णन, योजना, श्रृंगार रूप आदि की दृष्टि से एक उल्लेखनीय रचना कहीं जा सकती है। कवि ने अतिशोयोक्तिपूर्ण शैली अपनाते हुए अपनी कल्पना का अधिक प्रयोग किया है, जिससे इसके ऐतिहासिक तथ्य दब गए है. परंतु भव्य नगरों, भवनों, उद्यानों, सरोवरों तथा किलों का वर्णन करते समय कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। भाषा-शैली, छंद तथा अलंकार आदि सभी दृष्टियों से यह एक महान रचना कही जा सकती है। चंदबरदायी भाषा के धनी कलाकार थे। भाषा मानो उनके संकेतों पर नाचती हुई चलती है। भाव और वर्ण्य विषय की पूर्ण दशा में भाषा पूर्ण रूप से नव्य रूप धारण करती हुई चलती है। पृथ्वीराज रासो की भाषा का एक उदाहरण देखें-

‘अधरल पल पल्लव सुवास
मंजरिय तिलक पंजरिअ पास।
अति अलक कंठ कलमण्ठ मंत।
संयोगि भोग बस भयु बसन्त ।।‘

7. संदेश रासक-कुछ विद्वान संदेश रांसक को भी रासो परंपरा का प्रथम ग्रंथ स्वीकार करते हैं। भले ही यह अपभ्रंश भाषा में रचित है, फिर भी इसे काफी लोकप्रिय माना गया है। इसके कवि अब्दुल रहमान थे जो मुल्तान के निवासी थे और जाति से जुलाहा थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी स्वीकार किया है। यह

काल्पनिक विरह काव्य का खण्ड काव्य है, जिसमें विरहिणी नायिका की विरह व्यथा का मार्मिक वर्णन किया गया है। यह कुल तीन प्रकमों में विभक्त है तथा इसकी कुल 223 छंद संख्या है। इसकी नायिका एक पथिक के द्वारा स्तंभ तीर्थ जाने वाले अपनी प्रेमी के पास संदेशा भेजती है जो उसे भूल गया है। इसमें कवि ने सामौर नगर की शड् ऋतुओं का बड़ा प्रभावशाली वर्णन किया है।

अन्य ग्रंथ-रासो काव्य परंपरा में कुछ ऐसे ग्रंथ भी सम्मिलित किए जाते हैं जिनके नामकरण में तो रासो शब्द नहीं आया है, परंतु उनमें रासो काव्य की प्रवृत्तियां। विद्यमान है तथा वे आदिकाल में ही रचे गए हैं। ऐसो ग्रंथों में भट्ट केदार कृत 'जयचन्द प्रकाश', मधुकर कवि द्वारा रचित 'जयमयंक, श्रीधर कृत श्रणमल्ल छंद आदि उल्लेखनीय हैं। 'जयचंद प्रकाश' व 'जसचन्द्रिका', 'जयमयंक' में कन्नौज नरेश जयचंद की वीरता का वर्णन किया गया है, परंतु आज भी ये दोनों ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

इस प्रकार हमें देखते हैं कि रासो काव्य परंपरा खुमान रासो से आरंभ होकर संदेश रासक तक उपलब्ध होती है। लेकिन हमें यह ध्यान रखना होगा कि अधिकांश रचनाएं अप्राप्य है तथा उन्हें अप्रामाणिक समझ कर उनकी अवहेलना कर दी गई। फिर भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि तत्कालीन चारण अथवा भाट कवियों ने विदेशी आक्रमणकारियों से लोहा लेने के लिए अपने आश्रदाताओं और उनकी सेनाओं को अत्यधिक उत्साहित किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में आश्रयदाताओं के विलासपूर्ण जीवन का जो वर्णन किया है, वह अद्वितीय बन पड़ा है। विद्यापति का काव्य हिन्दी का अप्रतिम साहित्य है।

महाकवि विद्यापति के काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का अद्भुत समन्वय है। विद्यापति की कविता एक ऐसी धारा है जिसमें भावों की शतशः तरगे अनवरत उठती-गिरती रहती है

मैथिल-कोकिल ने श्रृंगार-रस के दोनों पक्षों-संयोग एवं वियोग के वर्णन में अपनी पूरी प्रतिभा एवं कवित्वशक्ति का उपयोग किया है। कवि के काव्य में श्रृंगार रस की एक ऐसी

वेगवती सरिता प्रवाहित हुई जिसमें न केवल हिन्दीभाषी ही, अपितु बंगवासी भी सदियों से निमज्जित हो रहे हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

1. विद्यापति के गुरु .....थे।
2. विद्यापति की पदावली .....भाषा में है।
3. विद्यापति के काव्य पर..... प्रभाव है।
4. विद्यापति की काव्य.....शैली में है।

6.7 सार संक्षेप

अपने पाठ्यक्रम अंतर्गत विद्यापति के काव्य में भक्ति और श्रृंगारी भावना का विस्तृत अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन से हम विद्यापति की रचनाओं में श्रृंगार वर्णन, भक्ति भावना ,मुक्त काव्य परंपरा में विद्यापति के योगदान, गीति काव्य परंपरा, विद्यापति का संयोग श्रृंगार एवं वियोग श्रृंगार वर्णन से भली भांति परिचित हो चुके होंगे।

i

6.8 मुख्य शब्द

अपजस - अपयश

दुबरी - दुर्बल

वारुण - कठोर

मधुजामीनी - वसंत की सुहानी रातें

6.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. जयदेव मिश्र
2. भोजपुरी
3. जयदेव
4. कविता शैली

6.10 संदर्भ सूची

1. झा, एम. (2020). *विद्यापति: मैथिली साहित्य के अग्रदूत*. पटना: मैथिल पब्लिकेशन्स।
2. मिश्रा, र. (2021). *विद्यापति और उनकी भक्ति कविताएँ*. वाराणसी: संस्कृति प्रकाशन।
3. कुमार, ए. (2022). *विद्यापति: प्रेम, भक्ति और तत्वमीमांसा का अन्वेषण*. दिल्ली: कल्पना पब्लिकेशन्स।
4. सिंह, पी. (2023). *विद्यापति: मिथिला की सांस्कृतिक पहचान*. कोलकाता: हेरिटेज प्रेस।
5. शर्मा, एन. (2024). *विद्यापति की कविता: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन*. जयपुर: साहित्य सागर।

6.11 अभ्यास प्रश्न

1. विद्यापति की काव्य में भक्ति भावना को समझाइए।
2. विद्यापति के काव्य की भाषा शैली को बताइए?
3. मुक्तक काव्य परंपरा में विद्यापति के योगदान को बताइए।
4. विद्यापति के श्रृंगार वर्णन को समझाइए।
5. गीति काव्या परंपरा में विद्यापति के योगदान को बताइए।

इकाई - 7

कबीदास के काव्य की समीक्षा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 कबीरदास के काव्य की विशेषताएँ

7.4 कबीरदास का रहस्यवाद

7.5 कबीरदास की दार्शनिक विचारधारा

7.6 कबीरदास प्रकृति से क्रांतिकारी, स्वभाव से समाज-सुधारक और अनुभूति के कवि

7.7 कबीरदास की भाषा-शैली एवं विशेषताएँ

7.8 कबीरदास की भक्ति भावना का महत्व

7.9 सार संक्षेप

7.10 मुख्य शब्द

7.11 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

7.12 संदर्भ सूची

7.13 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई में भक्ति काल के विद्रोही कवि कबीर एवं उनकी रचनाओं के बारे में हम अध्ययन करेंगे ।कबीर उस युग के कवि हैं जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से अपनी दार्शनिक विचारधारा ,समाज सुधारक रूप से जन-जन को प्रभावित किया था। आपकी भाषा शैली इस तरह की थी जो जनसाधारण को सोचने पर विवश कर देती थी । आपके काव्य में भक्ति भी है रहस्यवाद भी है हर रूप से अपने जन सामान्य को प्रभावित किया है, उनकी प्रवृत्ति निर्गुण उपासना की और दृढ़ हुई । आपने दूर-दूर तक देशाटन किया,

हठयोगीयो तथा सूफी मुसलमान फकीरों का भी सत्संग किया और लोगों का मार्गदर्शन दिया ।

7.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- भक्ति कालीन कवि कबीर के विषय में अपना ज्ञानवर्धन कर सकेंगे।
- भक्ति काल के निर्गुण संप्रदाय के ज्ञानाश्रायी शाखा के प्रमुख कवि कबीर दास के काव्य की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे हैं।
- आपने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में व्याप्त धार्मिक आडंबरों का विरोध किया।
- कबीर की दार्शनिक विचारधारा और भाषा शैली से अवगत हो पाएंगे।

7.3 कबीरदास के काव्य की विशेषताएँ

कबीर के काव्य सृजन का उद्देश्य भव्य कविता करना नहीं वरन् अपनी अनुभूतियों का शब्दांकन करना था। वह मूलतः सन्त थे और उन्होंने आध्यात्मिक साधना हेतु ही वाणी का माध्यम ग्रहण किया। उनकी आध्यात्मिक साधना एक और तो अगोचर, अगम्य, परबा से साक्षात्कार को संकल्पित है व दूसरी और इसी आध्यात्मिक साधना ने अद्वेतवाद के व्यावहारिक रूप से समाज में व्याप्त कदाचार व कुरीतियों को समूल नष्ट करने का निश्चय किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का अभिमत है 'कबीर ने कभी काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की, तथापि उनके आध्यात्मिक रस की नगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में रस इकट्ठा नहीं हुआ था।'

कबीर के काव्य में पौरुष सहज ही झलकता है। ऐसे हिन्दू कवि बिरले हैं, जो अपने संकल्प, अनुभूति के प्रति निष्ठा भाव रखते हों। कबीर हिन्दी काव्य के वह सूत्रधार थे जिन्होंने कविता को आम जिन्दगी का दर्पण बनाया तथा समाज और धर्म को अपने वर्ण्य विषय का केन्द्र बिन्दु चुना।

समीक्षा की दृष्टि से उनके काव्य को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है साखी, पद व रमैनी जिनका वर्ण्य विषय समाज ही है। युगदृष्टा कबीर के काव्य में वेदान्त, प्रेमसाधना, संसार की नश्वरता, माया की प्रबलता, हृदय की शुचिता, धार्मिक आडम्बरों का विरोध व साम्प्रदायिक एकता का प्रतिपादन रहा है। डा. रामकुमार वर्मा ने उनके काव्य सृजन के मन्तव्य को इस प्रकार उद्घाटित किया है 'इन ग्रन्थों का वर्ण्य विषय प्रायः एक ही है वह है ज्ञानोपदेश। कुछ परिवर्तन कर वही विषय प्रत्येक ग्रन्थ में प्रतिपादित किया गया है। विस्तार में उनके वर्ण्य विषय यह हैं- योगाभ्यास, भक्त की दिनचर्या, सत्य वचन, विनय और प्रार्थना, आरती उतारने की रीति, नाम महिमा, सन्तों का वर्णन, सत्यरूप निरूपण, माया विषयक सिद्धान्त, गुरु महिमा, सत्संगति आदि। ये विषय वही हैं जिनके द्वारा घूम फिरकर निर्गुण ईश्वर का निरूपण हो जाता है। अनेक स्थलों पर सिद्धान्त और विचारों में आवर्तन भी हो जाता है।'

बौद्धिकता की प्रधानता कबीर का काव्य असाधारण है। उनका समूचा जीवन सांसारिक वृत्तियों तथा सामाजिक बुराइयों को दूर करने में गया। उनका काव्य सायुक्त व मौलिकता से परिपूर्ण है। उन्होंने कविता लिखने के लिए मात्र शब्दों का चयन नहीं किया, बल्कि उन शब्दों का चिन्तन व मन्थन किया। तत्पश्चात् उसे अपने काव्य में प्रयुक्त किया। इस प्रकार उनका काव्य भावुकता से परे बुद्धि तत्व की प्रधानता लिए है।

भाव पक्ष - कबीर के साहित्य में रसानुभूति अद्भुत है। उपदेशात्मक सूक्तियां व हठ योग

सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त उनका काव्य पूर्ण रससिक्त है। उनकी कविता में शान्त, अद्भुत व श्रृंगार रसों की त्रिवेणी मिलती है। अपने मानसिक विकारों से संघर्ष सम्बन्धी काव्य को वह शान्त रस से आप्लवित करते हैं। उनके काव्य में भावपक्ष भी ज्ञान तत्व की भांति विद्यमान है। आध्यात्मिक विचारों को अपने काव्य का विषय बनाकर उसे सरलता व सहजता से लोकमात्र में प्रस्तुत कर कबीर ने सही अर्थों में काव्य की आत्मा को पहचाना है। उनके काव्य में भक्ति भावों की प्रचुरता है। उन्होंने आत्मा-परमात्मा समान अदृश्य पदार्थों को प्रतीक व उपयुक्त उपमानों के द्वारा सादृश्य के रूप

में चित्रित किया है। आत्मा को प्रेयसी व परमात्मा को प्रेमी मानकर वह सरस काव्यवर्षण करते हैं।

कबीर ने संयोग व वियोग का सशक्त चित्रण कर अपनी पटुता का परिचय दिया है। उनके आध्यात्मिक संयोग व वियोग के चित्रों की तुलना में अन्य कवि सफलता के सोपान तक पहुंचने में असमर्थ रहे हैं। इस सन्दर्भ में एक विद्वान समीक्षक का मत प्रासंगिक है कबीर की कविता में तो भावना नृत्य करती है और उसी से रस प्रवाह होता है। कबीर की रहस्यमयी कविताओं में जो रस की धारा बहती है, वह आत्मा की कामना और वासना के क्षेत्र से बाहर निकालकर निर्वाण के परमानन्द की स्थिति को प्राप्त कराने में समर्थ होती है। इस स्थिति को प्राप्त करके कवि स्वयं प्रेम रस का पान करता है और ब्रह्म के रंग में रंगकर मतवाला हो जाता है। कबीर की रचनाओं में इस रस की न जाने कितनी शीतल धाराएं बहती हुई मिलती हैं, जिनमें स्नान करके सहृदय पाठक जीवन की वास्तविक शान्ति को प्राप्त कर सकता है।

रसानुभूति - रस की दृष्टि से कबीर के काव्य में मुख्यतः तीन रसों यथा श्रृंगार, अद्भुत एवं शान्त का समावेश है किन्तु प्रधानता श्रृंगार की है। उनका भक्ति व आध्यात्मिक साहित्य प्रिय और प्रियतम की अटूट कड़ी है जो आत्मा परमात्मा की प्रतीक है। कबीर ने अपने काव्य का सृजन रस सिद्धान्त के अनुसार किया, काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार नहीं किया, फिर भी श्रृंगार उनके काव्य में प्रभावी रूप से उभरकर आया है।

(अ) श्रृंगार रस - कबीर ने दाम्पत्य प्रेम के माध्यम से ब्रह्म का रहस्यवादी चित्रण किया है। उनके पदों में श्रृंगार के दोनों पक्षों, संयोग व वियोग का वर्णन समान रूप से प्रतिबिम्बित होता है।

(ब) अद्भुत रस - स्थायी रूप से विस्मय जिन उक्तियों में विद्यमान होता है वे आश्चर्यानुभूति होती हैं। यह उलटबांसियां अधिकांश अद्भुत रस से अभिसिक्त हैं। उन्होंने अद्भुत रस में अलौकिक व अदृश्य का सजीव वर्णन कर इस रस को प्रचुरता से अपने काव्य में विस्तीर्ण किया है।

(स) शान्त रस - भक्ति भावना से प्रेरित कबीर की कविता में शान्त रस का प्राधान्य है। जीवन के विभिन्न आयामों को उजागर कर मानवीय संवेदनाओं की सहज प्रस्तुति में शान्त रस का वर्णन हुआ है। इस रस में उन्होंने, सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार, सत्य की अवधारणा का प्रतिपादन, जीवन के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात किया है।

अलंकार सौन्दर्य - कबीर के काव्य में अनायास ही बहुलता में अलंकारों का समावेश है। कबीर के काव्य में उपमा, रूपकों की तो प्रचुरता है ही, साथ ही अन्योक्ति, लोकोक्ति, सांगरूपक, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार भी दृष्टव्य है। यमक, श्लेष, अनुप्रास अलंकारों की भी आवृत्ति उनके काव्य को सौन्दर्य प्रदान करती है।

कबीरदास ने अपने काव्य में अलंकारों का सहज ही प्रयोग किया है। काव्य प्रतिभासम्पन्न होने के उपरान्त भी कबीर के जीवन का लक्ष्य कविता करना नहीं, बल्कि इसके माध्यम से साधना, भक्ति भावना का प्रचार-प्रसार व सामाजिक कूप-मण्डूकता पर प्रहार करना रहा।

प्रतीक विधान - काव्य में सौन्दर्य की दृष्टि से प्रतीक योजना का अपना विशेष महत्व है। प्रतीक का शाब्दिक अर्थ निशान, अंग, पता व अवयव है। प्रतीक के द्वारा जो मूलतः अप्रस्तुत्त है, हम प्रस्तुत के द्वारा उसके गुण-धर्म का स्मरण करते हैं। मानव जीवन प्रतीकों से आप्लावित है। कुच प्रतीक सार्वभौमिक होते हैं, जैसे श्वेत रंग पवित्रता का एवं सिह पौरुष का प्रतीक है।

कबीर की अनुभूतियां आध्यात्मिक रंगों से सराबोर हैं। अपने विचारों को बोधगम्य बनाने के लिए उन्हें अधिक प्रतीकों का आलम्बन करना पड़ा है। प्रतीक शैली वस्तुतः कबीर-काव्य की प्रमुख शैली कही जा सकती है। उनके काव्य में कुछ प्रतीक तो विचित्र हैं जिनका प्रतीकात्मक अर्थ खोजना कठिन है। इन प्रतीकों का आद्यात्मिक अर्थ जाने बिना उनके काव्य को समझना सरल नहीं है। उनके द्वारा प्रस्तुत प्रतीकों के उदाहरण इस प्रकार हैं।

1.दाम्पत्य प्रतीक -

दुलहिनी गाबहुं मंगलाचार ।

लाली मेरे लाल की, जित देखौतित लाल ।
लाली देखनि में चली, मैं भी हो गयी लाल ।।

2.पारिभाषिक प्रतीक -

गंगतीर मोरी खेती बारी, जमुनातीर खरिहाना।
सातों बिरवी मोरे वीपजें, पांचू मोर किसाना ।।
आकासे मुख औधों कुवां, पाताले पनिहारि ।
ताकां पाणि को हंसा पीवै, बिरला आदि विचारि ॥

उलटबांसियां - कबीर के काव्य में उलटबांसी पद्धति उल्लेखनीय है। इनमें लोक-विपरीत बातें कही गई हैं। ऊपरी अर्थ बोध होने पर इन लोक विरुद्ध बातों की प्रस्तुति से श्रोता अथवा पाठक को आश्चर्य होता है। लेकिन इन प्रतीकों के आध्यात्मिक अर्थों का जब उद्घाटन होता है तब हमें यह असंगत अथवा विरोधमूलक प्रतीत नहीं होती। कबीर के काव्य में अलंकार प्रधान उलटबांसी, प्रतीक प्रधान उलटबांसी व अद्भुत रस प्रधान उलटबांसी के दिग्दर्शन मुख्यतः होते हैं।

छन्द - कबीर ने अपने काव्य में मुख्य रूप से मुक्तकों का ही प्रयोग किया है। उन्होंने छन्दों में दोहा, चौपाई का प्रयोग किया है। साखियां दोहा छन्द में हैं और रमैनी में कुछ चौपाइयों के पश्चात् एक दोहा है। इसी क्रम में रमैनी का सृजन किया है।

भाषा - कबीर की भाषा में राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं का मिश्रण है। उनकी भाषा को साधुक्कड़ी भी कहा जाता है जिसमें बिना व्यतिक्रम के विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। कबीर की भाषा के सम्बन्ध में डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी का कथन उल्लेखनीय है

कबीर यद्यपि भोजपुरी क्षेत्र के निवासी थे, किन्तु तात्कालीन हिन्दुस्तानी कवियों की तरह. उन्होंने ब्रजभाषा तथा कभी-कभी अवधी का भी प्रयोग किया। उनकी ब्रजभाषा में भी कभी-कभी पूर्वी (भोजपुरी) रूप झलक आता है, किन्तु जब वे अपनी भोजपुरी बोली में लिखते हैं जो बजभाषा तथा अन्य भाषाओं के तत्व प्रायः दिखाई पड़ते हैं।

आचार्य श्याम सुन्दर दास का मत है कि 'कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है क्योंकि वह खिचड़ी है। खड़ी, बज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी, आदि अनेक भाषाओं का पुट उनकी उक्तियों पर चढ़ा है।'

विभिन्न विद्वानों की सम्मति से कबीर की भाषा के सम्बन्ध में यह विशेषताएं उभरकर आती हैं-

1. कबीर की बोली का प्रमुख आधार पूर्वी बोली (भोजपुरी व अवधी) है।
2. कबीर की भाषा पर खड़ी एवं बजभाषा का अधिक प्रभाव है।
3. कबीर की भाषा में राजस्थानी एवं पंजाबी भाषा के शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग हुआ है।
4. कबीर की भाषा साधुक्कड़ी मानी जाती है। जिसे पंचमेल खिचड़ी की संज्ञा दी जाती है। उसे किसी एक भाषा की परिधि में नहीं बांधा जा सकता।
5. उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा का रूप अधिकांशतः विषय व भाव के अनुकूल है।

साहित्य में स्थान - कबीर का प्रमुख ध्येय कविता कराना नहीं, वरन् अपनी आत्मानुभूतियों का प्रचार प्रसार कर मानव को संयमित रास्ते का अनुसरण कराना था। भाषागत दोष होने के उपरांत भी कबीर का हिन्दी साहित्य में उच्च स्थान है। इन्होंने पहली बार कविता को धरातल से जोड़ा व आम आदमी एवं कविता का परस्पर तादात्म्य स्थापित किया। कबीर का साहित्य वस्तुतः उच्च नैतिक आदर्शों का प्रतिस्थापक है। उनका जीवन और काव्यादर्श समान रहे। वह समरसता व मानवता के पुजारी हैं। हिन्दी साहित्य में कबीर मात्र कवि न होकर एक लोकनायक के रूप में अवतरित हुए हैं जो समाज की सड़ी गली प्रथाओं का समूल नाश करके इस धरा को स्वर्ग बनाने का उद्यम करते हैं। निर्गुण भक्तिधारा के श्रेष्ठ कवि कबीर काव्य में आध्यात्मिक प्रभाव के प्रवर्तक हैं। उनकी वाणी में कला पक्ष का अभाव होते हुए भी भावगत सरलता है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कबीर हिन्दी जगत का वह व्यक्तित्व है जो समता, विश्वबन्धुत्व व सामाजिक न्याय का अनुयायी है।

7.4 कबीरदास का रहस्यवाद

रहस्यवाद का अभिप्राय रहस्यवाद कवि की एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति है जिसमें वह परम सत्ता के विषय में अपने विचारों को सीधी-सादी भाषा में प्रस्तुत न करके एक नई भाषा में अंकित करता है वह परमसत्ता को अपनी लेखनी का विषय बनाकर एक ऐसे अनंत संसार में पहुंच जाता है जहां सुख-दुख, आशा-निराशा, हास्य-रुदन, संयोग-वियोग, शोक-विषाद आदि भी समान हैं।

रहस्यवाद के प्रकार

मुख्यतः रहस्यवाद दो तरह का होता है- 1. साधनात्मक, 2. भावात्मक ।

साधनात्मक रहस्यवाद में परमात्मा तक पहुंचने की प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है तथा भावात्मक में आत्मा के विरह-मिलन के विविध प्रसंगों की सुंदर झांकी प्रस्तुत होती है।

कबीर का रहस्यवाद- हिन्दी साहित्य में कबीर अद्‌वितीय रहस्यवादी कवि माने जाते हैं। वे वेदांती थे। इसी कारण वे जीव तथा ब्रहम की एकता के समर्थक थे। दूसरी तरफ वे सूफियों के प्रेम की पीर से भी प्रभावित थे। अतः उनके रहस्यवाद में अद्‌वैतवाद का माया तथा चितन व सूफियों का प्रेम भाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन दर्शनीय है। कबीर का रहस्यवाद एक तरफ तो हिन्दुओं के अद्‌वैतवाद की क्रोड़ में पोषित है और दूसरी ओर मुसलमानों के सूफी-सिद्‌धांतों को स्पर्श करता है। इसका विशेष कारण यही है कि कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के संतों के सत्संग में रहे तथा वह प्रारंभ से ही यह चाहते थे कि दोनों धर्म वाले आपस में दूध-पानी की तरह मिल जायें।

'इसी विचार से वशीभूत होकर उन्होंने दोनों मतों से संबंध रखते हुए अपने सिद्‌धांतों का निरूपण किया। रहस्यवाद में भी उन्होंने अद्‌वैतवाद तथा सूफीमत की 'गंगा-जमुना' साथ ही बहा दी।'

इसके अतिरिक्त कबीर पर हठयोग का प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। हठयोगी साधन-पद्धति के आधार पर उन्होंने कुंडलिनी इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, मूलधार आदि छः चक्रों, सहस्रार या हरन्ध आदि पर प्रकाश डाला है।

कबीर के रहस्यवाद के विविध रूप

कबीर के काव्य में साधनात्मक और भावात्मक दोनों प्रकार का रहस्यवाद दृष्टिगत होता है।

1. साधनात्मक रहस्यवाद - कबीर के साधनात्मक रहस्यवाद का विकास योगियों के नाथ संप्रदाय से हुआ है। अतः उन पर योगियों तथा हठयोग का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनका मत है कि जब साधक की कुंडलिनी जाग्रत होकर सुषुम्ना के मार्ग से छहों चक्रों को पार करके ब्रह्मरंध में पहुंच जाती है तो एक अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। यह आनंद मोक्ष का द्वार है। कबीर कहते हैं-

रस गगन गुफा में अजर झरै। बिना बाजा झनकार उठै जहां, जहं समुझि परै।
जब ध्यान धरै ।

कबीर के साधनात्मक रहस्यवाद पर भारतीय अद्वैत का भी प्रभाव है। उसे व्यक्त करने के लिए उन्होंने वेदांतियों की तरह मायावाद को भी स्वीकार किया है तथा विभिन्न दृष्टांतों से अद्वैत का प्रतिपादन किया है। शंकर के अद्वैतवाद का समर्थन करते हुए वे कहते हैं-

पाणी ही ते हिम भया, हिम व्है गया विलाई।
जो कुछ था सोई भया अब कछू कहा न जाई।

कबीर के रहस्यवाद में कहीं अनहद सुनाई पड़ता है तथा कहीं गगन घंटा का घहराना सुनाई पड़ता है। उन्होंने अपने साधनात्मक रहस्यवाद को भक्ति और प्रेम का पुट देकर सरस और मधुर भी बना दिया है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कबीर का साधनात्मक रहस्यवाद नीरस और शुष्क
न होकर सरस तथा मधुर है।

3.भावात्मक रहस्यवाद- कबीर में भावात्मक रहस्यवाद भी पाया जाता है। इसमें जीवात्मा अपने आधार से प्रेम करती है तथा उसके अभाव में विरह-व्यथा से दग्ध रहती है। इस पर सूफियों की प्रेम पद्धति का अभाव है पर कबीर ने इसे भारतीय रूप दे दिया है। उन्होंने साधक, जीव व आत्मा को प्रेमिका तथा पत्नी रूप में, ब्रह्म का प्रियतम रूप में चित्रित किया है। यथा-

दुलहिन गावहु मंगलचार ।
हमारे घरि आए हो राजा राम भरतार।

अथवा

नैना अंतरि आव तू ज्यू हों नेन ड्रौपेठं।
ना हौं देखूं और कू, ना तोहि देखन देउं ।।

भावात्मक रहस्यवाद का मूलाधार प्रेम है। कवि ने प्रेम की विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया। आत्मा परमात्मा को प्रतीक्षा करते-करते कह उठती है-

आंखड़ियाई झाई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि ।
जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि-पुकारि ॥

प्रियतम के विरह में आत्मा बहुत दुःखी है। आठों पहर का यह कष्ठ उसे असह्य हो उठता है। इसलिए कहती है-

कै विरहनि कू मींच दे, कै आपा दिखलाई।
आठ पहर का दाझणा, मोपै सहा न जाइ ।।

कबीर के हृदय में परमात्मा को खोजने की तीव्र अभिलाषा जाग उठी। अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं-

परवति परवति में फिरया, नैन गंवाई रोड़।
सो बूंटी पाऊ नहीं, जाते-जीवनि होड़ ।।

अंत में आत्मा को अपने चिर प्रतीक्षित प्रियतम के दर्शन हो जाते हैं तथा वह कह उठती

बहुत दिनन में प्रीतम आए।
भाग बड़े घरि बैठे आए ।।

इस प्रकार भावात्मक रहस्यवाद में कवि ने आत्मा के कई भावों आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, विरह-मिलन आदि के विविध चित्र प्रस्तुत किये हैं।

कबीर के रहस्यवाद की विशेषताएं

रहस्यवाद का विकास क्रम है-सीमा का असीम के प्रति कुतुहल, विस्मय, जिज्ञासा, तादात्म्य अनुभव, अनुराग, नम्रता, तन्मयता, विरह तथा मिलन। कबीर ने इन सभी स्थितियों का निर्वाह किया है। उनके रहस्यवाद की निम्न विशेषताएं हैं-

1. जिज्ञासा की भावना - कबीर निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म के उपासक हैं। वैसे उनकी दृष्टि में न तो उनके इष्टदेव का कोई रूप है तथा न कोई आकार। फिर भी वह सर्वत्र विद्यमान है।

कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जहां उसका अस्तित्व न हो। कबीर की यह अस्तित्व बुद्धि ही अपने इष्टदेव के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करती है तथा इसी से वे यह जानना चाहते हैं कि वह बह्य कैसा है? कहां है? और किस तरह अपनी क्रियाएं करता रहता है? वास्तव में कोई भी व्यक्ति इस मर्म को नहीं जानता है इसलिए कबीर बड़े बेचौन रहते हैं। उनका कहना है जब इड़ा, पिगला और सुषुम्ना आदि नाड़ियां ही नहीं हैं तो फिर समस्त गुण कहां समा जाते हैं?

2.दर्शन एवं मिलन का प्रयत्न - कबीर मानते हैं कि उनका प्रियतम निर्गुण एवं निराकार है, वह सर्वत्र विद्यमान होकर भी व्यक्त है फिर भी वह एक जिज्ञासु साधक की भांति

उस ब्रह्म से मिलने के लिए अत्यंत व्यथित तथा बेचौन रहते हैं। यही कारण है कि जिस प्रकार कोई वियोगिनी मार्ग के किनारे खड़ी होकर अपने प्रियतम के विषय में पंथिकों से पूछती है। उसी तरह कबीर भी अपने प्रियतम राम से बिछुड़ कर अपने गुरु से पूछते हैं कि मुझे मेरे प्रियतम का संदेश कुछ तो सुनाओ कि वे कब आकर मिलेंगे-

'विरहिनी अभी पंथ सिरि, पंथी बूझे जाड़।
एक सबद कहो पीव का, कबर मिलेंगे जाड़।'

3.भौतिक विघ्न एवं वेदना की प्रवृत्ति - कबीर ने अपने रहस्यवाद में साधनापथ के अनेक विघ्नों तथा कष्टों का भी उद्घाटन किया है। सबसे पहले कबीर ने उस ठगिनी माया का ही उल्लेख किया है जो बड़ी मीठी है, जिसका छोड़ना कठिन है जो अज्ञानी पुरुष को बहका-बहका कर खाती रहती है-

'मीठी-मीठी माया तजी न जाई।
अग्यानी पुरुष को भोली-भाली खाई।'

फिर कहते हैं कि यह श्मोर तोर को जेवडीश् है और यह इतनी विश्वास-घातनी है कि इसके आकर्षण के कारण भक्त भगवान का भजन नहीं कर पाता। यह ऐसी पापिनी है कि एक वैश्या की तरह संसार रूपी हाट में जीवों को फंसाने का फंदा लिए बैठी रहती है-
'कबीर माया पापिणी, फंद लें बैठी हाटि।'
कबीर ने इस माया के दो रूप बताये है 'कंचन और कामिनी'। इन दोनों के रूप में यह जीवों को ठगती है जिसके कारण जीव जन्म-मरण के चक्कर में फंसकर संसार में भटकता रहता है।

4.अथक एवं अगोचर सत्ता के दर्शन का आभास - कबीर ने इस स्थित का अत्यंत मनोहारी वर्णन किया है। कबीर कह रहे हैं कि मैंने बिना देह तथा आकार का ऐसा कौतुक देखा है तथा बिना कार्य और चंद्रमा के प्रकाश का दर्शन किया है-

'कौतुक दीठि देह बिन, रवि ससि बिना उजास ।

यह प्रकाश असीम एवं अनंत है, उसे देखकर ऐसा लगता है मानो सूर्य की सेना हो या अनेक सूर्य एक साथ उदित हो रहे हों-

'कबीर तेज अनंत का मानो अगी सूरज सेणि।'

इस तरह कबीर ने उस अव्यक्त एवं अगोचर सत्ता के दर्शन का बड़े प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है।

5. सांसारिक ज्ञान एवं अपरोक्ष अनुभूति- कबीर ने अपनी इस अपरोक्ष अनुभूति का अत्यंत मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। कबीर कहते हैं कि जिस उत्कृष्टता तथा तीव्रता के साथ मन माया जन्म विषयों में रमता है उतनी ही उत्कृष्टता तथा तीव्रता के साथ मन राम में रम जाये तो वह साधक तारामंडल से भी परे वहां पहुंच जाता है। राम के गुण-गान करने के त्रिगुणात्मक माया का पाश कट जाता है। कबीर यह भी कहते हैं कि यहां पर राम नाम की लूट हो रही है जिससे जितना लूटा जाये लूट लो-

'लूटि सकै तौ लूटियो, राम नाम की लूटि।
पीछे ही पछिताहुगे, यह तन जैहे छूटि ।।'

कबीर की इस अनुभूति का मूलाधार प्रत्यक्ष जीवन है। कबीर ने 'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता हूं आंखों की देखी' कहकर अपने अपरोक्ष अनुभूति की वास्तविकता को स्पष्ट कर दिया है।

6. चिर-मिलन- रहस्यवाद की अंतिम स्थिति आत्मा तथा परमात्मा का 'चिर मिलन' मानी गई है। कबीर ने बड़े ही ओजस्वी शब्दों में इस अंतिम स्थिति का भी उद्घाटन किया है। इस मिलन की अवस्था का रूपक बांधते हुए उन्होंने स्वयं को दुलहिन तथा राम को प्रियतम कहा है और विवाह होने पर जिस प्रकार पति-पत्नी मिलते हैं उसी प्रकार अत्यंत प्रेमपूर्वक आत्मा और परमात्मा का मिलन हो रहा है तथा जिस प्रकार एक पत्नी अपने पति के साथ एक शय्या पर शयन करती है उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा एक होकर शयन कर रहे हैं-

बहुत दिनन थे प्रीतम पाए, भाग बड़े घर बैठे आए।
मंदिर मांहि भया उजियारा, लै सूती अपना पिय प्यारा ।।

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास विवाह के उपरांत जैसे पत्नी अपने प्रियतम से मिलती है उसी प्रकार श्अंक भरे भर भेंठिया, मन में नाही धीरश् कहकर कबीर ने उस दृश्य को प्रकट किया है। इस मिलन के उपरांत अनिर्वाचनीय आनंद की उपलब्धि होती है। इससे स्पष्ट है कि इस स्थिति में भगवान साधक और साध्य तथा जीव तथा बहा एक हो जाते हैं, दोनों का भेद मिट जाता है और पूर्ण अद्वैत की स्थापना हो जाती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कबीर का रहस्यवाद हिन्दी साहित्य की अनुपम देन है। कबीर ने अपने रहस्यवाद के विविध रूपों का चित्रण किया है। प्रेम की तीव्रता, आध्यात्मिकता, जिज्ञासा, मिलन आदि अनेक विशेषताएं उनके रहस्यवाद में ही मिलती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि शुद्ध रहस्यवाद उन्हीं का है। डॉ. 'श्यामसुंदर

दास' ने सत्य लिखा है- 'रहस्यवादी कवियों में कबीर का आसन सबसे ऊंचा है। शुद्ध रहस्यवाद तो सिर्फ उन्हीं का है। प्रेमाख्यानक कवियों (जायसी आदि) का रहस्यवाद तो उनके प्रबंधक के बीच-बीच में बहुत जगह थिगली-सा लगता है और प्रबंध से अलगता अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है।'

7.5 कबीरदास की दार्शनिक विचारधारा

1.दर्शन का अर्थ- दर्शन का अर्थ है-देखना। सृष्टि के सत्य को कवि जिस रूप में देखता है, उसे ही दर्शन या दार्शनिक विचारधारा की संज्ञा दी जाती है।

2.काव्य और दर्शन का संबंध - काव्य और दर्शन का परस्पर संबंध है। प्रत्येक सत् काव्य में दर्शन होता है। दर्शनहीन काव्य, काव्य नहीं हो सकता। इसलिए तो कवि को दृष्टा का जा सकता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का मत है कि कोई भी व्यक्ति तब तक कवि नहीं हो सकता, जब तक कि वह दार्शनिक न हो।

3.कबीर दर्शन पर विभिन्न मतों का प्रभाव- डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने आलोचनात्मक इतिहास के निर्गुण संतों के काव्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हुए उन विभिन्न दर्शनों का प्रभाव दिखाया है। जो इस तरह हैं-1. सिद्धों का प्रभाव, 2. वाममार्गी शाखा, 3. नाथ, इस्लाम और सिद्धों का प्रभाव, 4. एकेश्वरवाद, 5. सूफी मन का प्रभाव, 6. वैष्णवों का प्रभाव, 7. भारतीय वेदांत का प्रभाव ।

इन्हीं प्रवृत्तियों के प्रभाव के कारण संत काव्य की सामान्य विशेषताएं उन्होंने दिखाई हैं- 1. निर्गुण की उपासना। 2. अहंकार और त्याग। 3. रूढ़ियों का विरोध। 4. जाति-पांति का विरोध । 5. रहस्यवाद । 6. पारिभाषित शब्दावली का प्रयोग। 7. प्रेम तत्व (सूफी मत)। 8. भाषा (जनभाषा के शब्दों का ग्रहण करना) ।

कबीर के ऊपर भी उपर्युक्त सभी दर्शनों का प्रभाव देखा जा सकता है तथा सभी प्रवृत्तियां उनके काव्य में उभरती हैं। उदाहरणार्थ-

(क) भारतीय अद्वैत और वेदांत का प्रभाव - उपनिषद् में ब्रह्म के विषय में कहा गया है। वह शब्द रहित, स्पर्श रहित, रूप रहित, रस रहित और गंध रहित है। कबीर भी यही कहते हैं-

'नीति सरूप वरण नहीं, जाके घटि-घटि रह्यो समाई।
पॉड ब्रह्माण्ड कथै सब कोई, वाकै आदि अरूप अरु अंत न होई ।।'

(ख) सूफी संप्रदाय अथवा प्रेम तत्व- डॉ. सरनामसिंह ने लिखा है-जो लोग यह कहते हैं कि कबीर ने सूफी प्रेम साधना से कुछ नहीं लिया, वे हाथी को देखकर भी उसके अस्तित्व का निषेध करते हैं। ऐसी बात है नहीं कि कबीर ने परमात्मा के सिर्फ प्रिय (पति) रूप को ही अंगीकार किया था अपितु, माता, पिता, गुरु, स्वामी आदि अनेक रूपों में भी उन्होंने चित्रित किया है। सूफी संप्रदाय में इन सब रूप को स्वीकार करने की स्वतंत्रता नहीं है। सूफियों के लिए परमात्मा माशूक है, आत्मा आशिक है तथा कबीर के दांपत्य संबंध में हरि श्पीवश् है और वे उनकी बहुरिया हैं। श्पीव और बहुरियाश् के पीछे भारतीय दांपत्य जीवन की जो व्यंजना है, उसमें सूफी मान्यता का भी पुट है।

'मेरी बहुरिया को धनिआ नाऊ। लै राखियो रम जनिआ नाऊ ।।'

यही नहीं कबीर ने भी सूफीमत की तरह पीड़ा को ही प्रेम का साधन माना है- **'आंखनिया झांई पढ़ी पीव निहारि निहार। जभड़ियां छाला पड़या पीव पुकार पुकार ।।'**

(ग) वैष्णव मत का प्रभाव कबीर पर वैष्णव संप्रदाय का प्रभाव दिखाते हुए डॉ. त्रिगुणांयत ने लिखा है-'कबीर में वैष्णवों के सत का सभी सारभूत तत्व विद्यमान है। अतः यह कहना है कि उनमें वैष्णवों के केवल प्रपति तथा अहिंसा तत्व ही मिलते हैं, अधिक उपयुक्त नहीं है। निर्गुण राम का उपासक होने के कारण उन्हें वैष्णव न मानना, उस महात्मा के साथ अन्याय करना है।'

कबीर में वैष्णवी दया, करुणा, परपीड़ानुभूति इत्यादि के कई उदाहरण मिलते हैं। वे श्अहिसा परमोधर्मश् के समर्थक हैं। वे भक्ति को महत्व देते हैं, पर उसकी साधना की कठिनता का भी उन्हें ज्ञान है-

'भगति दुबारा सांकरा, राई दसवें भाई।
मन तो मंगल होई रहा, क्यूं करि सके समाई ।।

वैष्णव भक्त को वे सर्वाेच्च पद प्रदान करते हैं-

'कबीर धनी ते सुंदरी, जिनि जाया बैसनो पूत।
राम सुमिरि निरभै हुआ सब जग गया अऊत ।'

(घ) बौद्ध संप्रदाय का प्रभाव- बौद्ध प्रवृत्ति भी कबीर में पाई जाती है। बौद्ध साहित्य में और बौद्ध वर्णन में जिस तरह की क्षणभंगुरता पर निराशा व्यक्त की गई है-कबीर में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है। उदाहरणार्थ-

'पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।
देखते ही छिप जाएगा, जस तारा प्रभात।'

(ड.) सिद्धों और नाथों का प्रभाव- कबीर ने योग्य साधना, षडचक्र, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि का वर्णन सिद्धों तथा योगियों के प्रभाव से किया है-

'सुरति सर्माणी निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खुले स्वयं दुबार ।'

4. कबीर के काव्य में उनकी दार्शनिक विचारधारा की अभिव्यक्ति- कबीर ने भी तत्कालीन परिवेश तथा परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर बहा और जगत् तथा इन दोनों

के बीच माया आदि पर अपने विचार प्रकट किए हैं। मोक्ष आदि पर भी कबीर ने कुछ न कुछ कहा है। इसी को दृष्टि में रखकर उनकी विचारधारा को संक्षेप में इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है-

(क) कबीर के ब्रह्म संबंधी विचार- कबीर ने कहा कि हमारा ध्यान निर्गुण तथा सगुण से परे है

'निर्गुण सगुण ते परै तहां हमारा ध्यान।'

अब यह निर्गुण सगुण से परे क्या हो सकता है? निश्चित रूप से हमें बीच की स्थिति का पता लगाना कठिन है। कबीर ने इस संबंध में कुछ विचार प्रकट किए हैं-

'जाके मुख माथा नहीं, नाहि रूप कुरूप।
पुहुप बास ते पातरा ऐसा तत्व अनूप।'

(ख) कबीर के माया संबंधी विचार- अन्य संतों की तरह कबीर ने भी माया को जीवन और बहा, साधक और साध्य के बीच की सबसे बाधक शक्ति माना हैं, उदाहरणार्थ-

'कबीर माया मोहनी, जैसे मीठी खांड।
सतगुरु की कृपा भई, नहीं करती भांड ।।
माया महा ठगिनी हम जानी।
तिरगुन फांस लिए कर डोलै मधुरी बानी ।।

इसलिए कबीर इस माया से हमेशा बचते रहे। ज्ञान की आंधी का आह्वान उन्हें स्वीकार हुआ-

'संतों ! आई ज्ञान की आंधी।
भ्रम की टाटी सवै उढ़ानी माया रहे न बांधी !!'

(ग) जगत संबंधी कबीर के विचार- कबीर ने भी जगत को मिथ्या ही माना है, पर इतना नहीं जितना अद्वैतवादी मानते हैं, कबीर का माध्यम सूफियों का माध्यम है, जो इसी जगत के बीच होकर ऊपर ब्रहा तक पहुंचने की बात करते हैं। शंकराचार्य की तरह कबीर जगत् का त्याग करने की बात नहीं करते। वे तो कहते हैं कि इस जगत् तथा इस सत्ता के बीच इस माया बंधन को हटा दो और अपने आपको पहचानो। यद्यपि संसार के विषय से उन्होंने बड़ी निराशा व्यक्त की है-

'यौ ऐसा संसार जैसा सेंबल फूल।
दिन दस के त्यौहार को झूठे रंगि न भूल ।।'

पर इसमें जो भाव है वह अस्तित्वहीनता का भाव है, उनको छोड़कर कहीं अकर्मण्य होने का भाव नहीं है। जो ऐसा सोचते हैं वे कबीर को समझते ही नहीं।

(घ) जीवात्मा संबंधी विचार- कबीर ने जीवात्मा को ईश्वर का अंश माना है और उस अंश को कबीर उस बहम में जोड़ने का प्रयास करते रहे हैं। अतः उन्होंने हठयोग का भी सहारा लिया है-

'कह कबीर इहु राम को अंसु,
जस कागद पर मिटै न मंसु।'

(ड.) मोक्ष विचार- कबीर भी मोक्ष का वही कारण मानते हैं, जो अन्य संत मत में आता है, अर्थात् माया की पहचान और उसका निराकरण जीव और ब्रहम को एक साथ मिला देता है-

'जैसे जलहि तरंग तरंगनी, ऐसे हम दिखलावेंगे।
कहै कबीर रबामी सुखसागर, हंसहि हंस मिलावेंगे ।।'

5. उपसंहार- उपयुक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर में दर्शन का वैष्णव पक्ष ही अपने रूप में अधिक निखरा है हालांकि उन पर अन्य विचारधाराओं के भी प्रभाव है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में-ये यथार्थतः न तो निर्गुणवादी हैं और न सगुणवादी ही। उनके अनुसार वह परम तत्व निर्गुण और सगुण दोनों से परे की वस्तु है और अनुभव में आने पर भी अनिर्वचनीय है।ष् डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना और भी अधिक सराहना करते हैं- श्कबीर ने अपने दार्शनिक विचारों को अत्यंत सरल तथा सीधी-साधी भाषा में जनता के सामने प्रस्तुत किया है, इसी कारण कबीर के विचारों की ओर शिक्षित वर्ग उतना आकृष्ट नहीं होता, जितना कि अशिक्षित एवं अल्पशिक्षित वर्ग आकृष्ट होता है। कबीर के इन विचारों में जनसाधारण के हृदय तक पहुंचने की अपूर्व क्षमता है, क्योंकि कबीर ने दर्शन गूढ़तिगूढ़ सिद्धांतों एवं विचारों को अत्यंत सरल एवं सुबोध बनाकर जनता के सामने रखा है। रात-दिन व्यवहार में जाने वाले पदार्थों के उदाहरण द्वारा उन्हें समझने की चेष्टा की है।

7.6 कबीरदास प्रकृति से क्रांतिकारी, स्वभाव से समाज-सुधारक और अनुभूति के कवि

कबीर का युग विभिन्न धार्मिक पाखण्डता व मानवीय शोषण का पर्याय रहा। मत-मतान्तरों व सम्प्रदायों में आपसी कटुता तीव्र थी। कूपमण्डूकता का साम्राज्य था। जीवन के हर क्षेत्र में अन्धकार रूपी अन्धविश्वास का परचम फहरा रहा था। ऐसे संक्रमण काल में कबीर ने युग चेतना का संवाहक होने के नाते कवि धर्म का शाश्वत निर्वाह किया व सामाजिक अन्याय की प्रवृत्तियों पर तीव्र प्रहार किया। कबीर ने अपने समय के सभी मतों के सापेक्षिक सिद्धान्तों को आत्मसात कर कुरीतियों व मानवीय संवेदनाओं के विपरीत मान्यताओं पर जमकर प्रहार किये। सन्त कवि व फक्कड़पन में आत्मलीन कबीर ने तत्कालीन समय की विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोह कर स्वर मुखरित किया जिसकी प्रतिध्वनि साहित्य में सहज रूप से विद्यमान है।

धार्मिक पाखण्ड का खण्डन- उनका युग धार्मिक प्रभाव की प्रधानता का युग था। स्वार्थी, लोभी, कामी, सन्यासी-यती वेशधारी जनता की धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ कर अपनी उदरपूर्ति कर रहे थे। भक्ति वस्तुतः ढोंग का पर्याय बन गयी थी। तथाकथित धर्माचारों से आम जनता दुखी थी, लेकिन उनकी वेदना को मुखरित करने वाला कोई नहीं था। ऐसे समय में कबीर ने पाखण्ड को ललकारा -

नगन फिरत जो पाइये जोग, बन का मिरग मुकति सब होग।
क्या नांगे क्या बांधे चाम, जब नहिं चिन्हसि आतम राम।

उन्होंने सन्ध्या प्रातः स्नान को भी ढोंग की संज्ञा दी जो मात्र स्नान करके ही **भक्ति आवरण ओढ़े हैं -**

संध्या प्रातः स्नान कराही,
यो भये दादुर पानी माहीं।

शाक्तों, चार्वाकों एवं जैन तथा बौद्ध धर्मावलम्बियों की तथाकथित अहिंसा पर उन्होंने तीखा व्यंग्य किया है –

जैन बोध अरू साकत सैनां, चारवाक चतुरंग बिहूंना।
दोना भरवा चम्पक फूला, तामैं आजीव बसै कर तूला।

हिन्दू मुस्लिम पाखण्ड का विरोध- हिन्दू मुस्लिमों में व्याप्त पाखण्ड का कबीर ने अपने काव्य में तीखा विरोध किया है। दोनों धर्मावलम्बी जब अपनी-अपनी आत्म स्तुति करते हैं व अपने को श्रेष्ठ ठहराने का प्रयास करते हैं तब कबीरदास दोनों धर्मावलम्बियों को फटकारते हैं –

हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।

वैश्या के पायन तर लोदे, यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान को पीर औलिया, मुर्गा-मुर्गी खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहूँ, घर में ही करें सगाई।

उनका अभिमत था कि दोनों धर्मों में कई कमिश्ना है। नैतिकता व पवित्रता से झूठे मानदण्ड स्थापित किए गए हैं। वास्तविक जीवन में धर्म के सिद्धान्तों से इनका कोई लेना-देना नहीं है। धर्म निरपेक्षता के प्रतीक कबीर ने मन्दिर मस्जिद विवाद को ढकोसला बताया व दोनों धर्मों की वास्तविकता को इस प्रकार उल्लेखित किया-

इनके काजी मुलां पीर पैगम्बर, रोजा पछिम निवाजा।
इनके पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारसि गंग रिवाजा ।
तुरक मसीति देहुरै हिन्दु, दहुअँ राम खुदाई।
जहां मसीति देहुरा नाहीं, तहां काकी ठकुराई।

कबीर भारत के पहले कवि हैं जिन्होंने मुस्लिम कट्टरपंथियों की परवाह न कर उनकी तथाकथित परम्पराओं का मजाक उड़ाया। सुन्नत (खतना) के सन्दर्भ में यह उदाहरण दृष्टव्य है-

हौं तो तुरक किया करि सुनति, औरति सौं का कहिये।
अरध सरीरी नारि न छुदै, आधा हिन्दू रहिये ।।

ऊंच-नीच, जाति पांति का विरोध- उनका काल सामाजिक शोषण व अन्याय का था। ब्राह्मण वर्ग अपनी नैतिकता को त्यागकर भी श्रेष्ठ बना हुआ था। वह जन्म के आधार पर श्रेष्ठता-निम्नता के हामी नहीं थे, बल्कि कर्म के सिद्धान्तों के अनुयायी थे। तथाकथित जन्मजात मानसिकता पर उन्होंने इस प्रकार प्रहार कर समाज सुधार के पथ को संकट मुक्त किया।

ऊंचे कुल का जनमिया, करनी ऊंच न होई।
सुबरन कलस सुरा भरा, साधू निन्दै सोई ।।

कबीर का ब्राह्मण ब्रह्म का ज्ञाता व नैतिकता, सदाचारों से परिपूर्ण है। वह जन्मना के आधार पर नहीं, कर्मणा के आधार पर ब्राह्मण के अस्तित्व को स्वीकारते हैं-

कहु कबीर जो ब्रह्म विचारै, सो ब्राहाण कहियत है हमारै।
हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूर, तुम कैसे बामन पांडे हम कैसे सूद।

अहिंसा का संदेश- कबीर ने हिसावृत्ति त्यागने व अहिंसा का सन्देश दिया। उनका मानना था कि जीव मात्र की हत्या से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह अमानवीयता है और इसे बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए। यह हिंसा हिन्दू-मुसलमानों में व्यापक रूप से व्याप्त थी। इसी प्रकार उन्होंने पशु बलि (कुर्बानी) की निंदा की

दिन में रोजा रखत हैं रात हनत हैं गाय।
वह तो खून बहु बन्दिगी, कैसी खुशी खुदाय।
गौ हत्या को उन्होंने मातृ-हत्या की संज्ञा दी है-
काफिल गरब करें अधिकाई, स्वारथ अरथि बंधे ए गाई।
जाकौ दूध धाई करि पीवै, ता माता कौ बध क्यूं कीजै ।।

मूर्ति पूजा का खण्डन- उस युग में मूर्ति पूजा अपनी सार्थकता खो चुकी थी। आक्रामक मुस्लिमों ने सबके सामने ही मूर्तियों का भंजन किया, लेकिन ईश्वर रूपी यह मूर्तियां चुपचाप अपना मृत्यु का वरण करती रहीं। मूर्ति पूजा के नाम पर पंडितों, पुजारियों ने आम जनता को अपने शोषण का शिकार बना लिया था। कबीर की मूर्ति पूजा विरोधी

अवधारणा सैद्धान्तिकता से परे व्यावहारिक थी। उन्होंने सरल शब्दों में इसकी अनुपयोगिता पर प्रकाश डाला

दुनिया ऐसी बाबरी, पाथर पूजन जाइ।
घर की चकिया कोई न पूजै जैही का पीसा खाइ ।।

अवतारवाद और पुस्तकीय ज्ञान का खण्डन कबीरदास ने अवतारवाद व पुस्तकीय ज्ञान का प्रभावी रूप से खण्डन कर उसे दिशाभ्रमित करने वाला बताया। उनका मानना था कि पुस्तकीय ज्ञान से परे प्रेम की भाषा ही हमारे कल्याण का पथ प्रशस्त करती है। पुस्तकीय ज्ञान से ही मनुष्य विद्वान नहीं हो जाता –

पौथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ।।
अवतारवाद का भी उन्होंने इस प्रकार विरोध किया-
तुम जो कहत हो नन्द को नन्द नन्द सुनंदन का कोरे ।
घरनि अकास दसौंदिसि नाहीं, तब इहु नन्द कहा थोरे ॥

आर्थिक समता का प्रतिपादन- कबीर ने आर्थिक समता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वह मानते थे कि निर्धन को कदम कदम पर धनवानों का अपमान सहना पड़ता है व उसका आर्थिक शोषण होता है। उस युग की आर्थिक विषमता का सजीव चित्रण कर उन्होंने युग चेतना के प्रहरी के दायित्व का सजगता के साथ निर्वाह किया-
निर्धन आदर कोइ न देई, लाख जतन करे औहु चिन्त न धरेई। कहैं कबीर निर्धन है सोई, जाकें हिरदै नाम न होई।
अतः कबीर की कविता मुखापेक्षी बात न होकर स्पष्ट कंठ से की गयी धार्मिक और सामाजिक विवेचना थी। वह सत्यान्वेषी तथा बुद्धि विवेक निर्णय के पक्षधर थे। वह

अन्य कवियों की भांति कल्पना लोक में मात्र विचरण नहीं करते थे, वरन् कोटि-कोटि जनता जो पाखण्ड व ऊंच-नीच व शोषित का जीवन जी रही थी, उसे सामाजिक समता का पथ दिखाया।

इस प्रकार कबीर प्रकृति से क्रान्तिकारी, स्वभाव से समाज सुधारक व अनुभूति से कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में अपने व्यक्तित्व व कृतित्व को आत्मसात कर काव्य सृजन किया। निःसन्देह उनका समाज सुधारक स्वरूप उनके कवि को महानता के शिखर पर आरूढ़ करता है। इनका सम्पूर्ण जीवन पीड़ित मानवता के दुख दर्द को व्यक्त करने में व्यतीत हुआ। कबीर पीड़ितों की वाणी थे, इसीलिए उनके काव्य में मुखरता, खरापन व विचारों की प्रखरता है।

7.7 कबीरदास की भाषा-शैली एवं विशेषताएँ

कबीर की भाषा के निर्णय का प्रश्न पर्याप्त विवादास्पद रहा है। इसका कारण कबीर के प्रामाणिक काव्य का संग्रह अभाव ही है। अलग-अलग विद्वानों ने कबीर की भाषा के सम्बन्ध में इसी कारण अपने-अपने मन से निर्णय दिया है। किसी ने उसे अवधी, किसी ने भोजपुरी, किसी ने सधुक्कड़ी, किसी ने राजस्थानी तथा किसी ने अनेक भाषाओं के मेल से बनी पंचमेल खिचड़ी और किसी ने बजभाषा कहा है। त्यों कबीर ने इस विवाद को यह कहकर और बढ़ावा दिया है।

बोली हमारी पूरवी, हमें लखै नहिं कोय।
हम को तो सोई लखै, धुर पूरब को होय ॥

भाषा विषयक विभिन्न मत

कबीर की भाषा के सम्बन्ध में विभिन्न मत जो विद्वानों ने व्यक्त किये हैं, ये हैं।

1. उसकी (साखी की) भाषा सधुक्कड़ी है अर्थात् राजस्थानी, पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रणेणी' और 'सबद' में काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

2.कबीर की बोली पूरबी ही अधिक होनी चाहिए क्योंकि उन्होंने कहा भी है, किन्तु डा. रामकुमार वर्मा ने अपने इस मत में सुधार किया और हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में यह लिखा है- 'कबीर ने अपनी भाषा पूरबी लिखी है, परन्तु नागरी प्रचारिणी सभा ने कबीर ग्रन्थावली का जो प्रमाणिक संस्करण प्रकाशित किया है, उसमें पूरबीपन किसी प्रकार भी नहीं है।' डा. - रामकुमार वर्मा

3. 'कबीर की भाषा पंचमेल खिचड़ी है।' डा. श्यामसुन्दर दास

मिश्रित भाषा- उपर्युक्त विद्वानों के मतों को देखने से पता चलता है कि कबीर की भाषा में किसी भी एक भाषा को महत्व नहीं मिला है। उसमें अनेक भाषाओं का मिश्रण है। उसमें एक और तो अंषलियां, जीभाड़ियां कसाइयां, दुखढ़ियां और रातड़ियां जैसे पंजाबी शब्दों का प्रयोग मिलता है दूसरी और विसूरणां, रोवण, सजणां, जांणि, छांणि, सताणी व रैणा आदि राजस्थानी बोली के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इसी प्रकार कबीर की भाषा में लैटयो, घेटयौ, पकरयौ, चल्यौ आदि प्रयोग ब्रजभाषा के मिलते हैं। इसके साथ ही कहीं जाऊंगा, आऊंगा, लागा, भागा, मिलाऊंगा, चित्त लाऊंगा, धागा टूटा आदि शुद्ध खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। अवधी के प्रयोगों से भी कबीर की भाषा अछूती भाषा की धरोहर है। इतना ही नहीं पीर, मुरीद, काजी, दरवेश, मुल्ला, कुरान, खुदाई, खालिक, दरोगा, हाजिरां, अकलि, अलह, पाक और नापाक आदि अरबी, फारसी के शब्द भी कबीर में पूरी तरह मिलते हैं। इससे यही प्रमाणित होता है कि कबीर की भाषा में अनेक भाषाओं और बोलियों का मिश्रण है। इसी से डा. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का यह मत ठीक ही प्रतीत होता है कि कबीर की भाषा में बंगला, बिहारी मैथिली, भोजपुरी, अवधी, बज खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, सिन्धी, लंहदा, अरबी-फारसी आदि सभी बोलियों को चढ़ाकर पकाया हुआ 'सधुक्कड़ अन्नकूट' विद्यमान है। वह सर्वत्र स्वतन्त्र है। उसमें लिग, वचन, कारक आदि किसी प्रकार का बन्धन नहीं है और न उसके शब्दों को छील-छीलकर या किसी एक भाषा के सांचे में ढालकर ही सुन्दर सुडौल बनाया गया है।

कबीर की भाषा में अनेक भाषाओं के मिश्रण के कारण निम्न हैं-

1. कबीर घुमक्कड़ी वृत्ति के संत थ

2. घुमक्कड़ी वृत्ति के कारण ही स्थान-स्थान पर जाने वाले कबीर अपने प्रवचनों और दृष्टिकोण की संप्रेषणीयता के लिए वहीं की भाषा को अपना लेते थे।

3. कबीर की वाणी वह वाणी है जिसे हरेक धर्मावलम्बी, हरेक भाषा का जानकार अपना सकता है। यही कबीर चाहते भी थे। अतः उनकी भाषा में विविध भाषाओं का मिश्रण मिलता है।

4. समय, स्थान और अधिकारी पात्र के अनुकूल बोलने के कारण कबीर की भाषा में विविधता के दर्शन होते हैं।

5. कबीर की भाषा में विविध भाषाओं की शब्दावली के मिश्रण का एक कारण यह भी हो सकता है कि वे भाषा को श्संस्करित जैसे कूपजलश् से निकाल कर बहुत नीर की तरह प्रचारित करना चाहते थे। एक शब्द में वे जनता के सामने एक लोक भाषा का प्रचार करना चाहते थे।

6. कबीर के शिष्य विभिन्न स्थानों और प्रदेशों में फैले हुए थे। अतः यों भी भाषा मिश्रण सम्भव था।

यही कारण है जिनकी वजह से कबीर की वाणी में भाषागत एकरूपता नहीं मिलती है। इतने पर भी यह स्पष्ट ही है कि कबीर की भाषा में सादगी और सरलता है। वह सहज विश्वसनीय भाषा है जिसमें आडंबरहीनता और अनअलंकृति को प्रमुख स्थान प्राप्त है। डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर की सांकेतिक और प्रतीकात्मक वर्णन प्रणाली को देखकर उनकी भाषा की गणना श्साध्य भाषाश् की परम्परा में की है, किन्तु इसके ठीक विपरीत डा. सरनाम सिंह शर्मा का मत है कि श्कबीर की भाषा के प्रवर्तकों (सिद्धों) का जो लक्ष्य था, उससे कबीर का लक्ष्य सर्वथा भिन्न था, जबकि पहले लोग भोली-भाली जनता को भान्ति में डालना चाहते थे, कबीर उसे शान्ति के पथ पर ले जाना चाहते थे। सिद्धों की भाषा गुमराह करने वाली थी और कबीर की भाषा राह दिखाने वाली थी।श् वस्तुतः कबीर की भाषा एक सहज प्रवाहशील भाषा है जो ऊबड़-खाबड़ रास्तों में भी अपनी राह बनाती हुई निरन्तर आगे बढ़ती गई है।

भाषा की विशेषताएं

कबीर की भाषा में विविध भाषाओं के शब्दों का संयोजन देखकर उसकी कतिपय सामान्य विशेषताएं निरूपित की जा सकती हैं। डा. गोविन्द त्रिगुणायत ने कबीर ग्रन्थावली और 'संत कबीर' नामक कबीर के दो संग्रहों के आधार पर कबीर की भाषा की निम्नांकित प्रवृत्तियां बतलाई है -

1. कबीर की भाषा में पंजाबीपन अधिक है। इसका कारण हज्ज करने जाते समय उन्हें पंजाब से गुजरना पड़ा था। इसी से उसमें पंजाबीपन आ गया है।

2. कबीर की भाषा में भोजपुरी का भी पुट मिलता है। डा. रामकुमार वर्मा ने कबीर की भाषा में पाई जाने वाली संज्ञा के लध्वन्त और दीर्घान्त दोनों रूपों के बहुत से उदाहरण उद्धृत किये है। यथा खंभवा, पहराना, मानवा, खटलवा। इतना ही नहीं उन्होंने भोजपुरी के अतीत काल की क्रिया के श्अलश् या 'अले' प्रत्यय के भी अनेक उदाहरण दिये हैं-

1. जुलहै तनि बुनि पार न पावल।
2. त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल ।
3. पंजाबी और भोजपुरी के अतिरिक्त कबीर की ऐसी अनेक उक्तियां हैं जो खड़ी बोली का सुन्दर उदाहरण कही जा सकती है-

भारी कहूं तो बहु डरूं, हल्का कहूं तो झूठ ॥
मैं का जानों राम कूं, नैनौं कबहुं न दीठ ।।

इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का अनुमान है कि 'सन्तों की खड़ी बोली की परम्परा सिद्धो से मिली है। जिस प्रकार सिद्धों के उपदेश की भाषा टकसाली हिन्दी है, उसी प्रकार सन्तों के उपदेश की भाषा खड़ी बोली है।'

4. कबीर की भाषा की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसका रूप अधिकतर विषय, व्यक्ति और भाव के अनुकूल है। वे जब जिस तरह के व्यक्ति या मत के सम्बन्ध में

अपनी राय देते थे तब तदनुकूल भाषा का ही प्रयोग करते थे यही कारण है कि हिन्दुओ, पण्डितों और वैष्णवों को सम्बोधित करते समय उनकी भाषा शुद्ध हिन्दी होती थी। यथा-

निरवैरी निहकामता, साई सेती नेह।
विषिया सूंन्यारा रहै, सतनि का अग एह ।।

उधर मुलमानों को समझाते समय उनकी भाषा में उर्दूपन अधिक आ जाता था। उदाहरणार्थ ये पंक्तियां देखिये –

मीयां तुम्हसी बोल्यों वाणी नहिं आव।
हम मसकीन खुदाई बन्दे, तुम्हारा जस मनि भावै ॥
अल्लाह अवलि दीन का साहिब जारे नहिं फरमाया ।।
मुरसिद पीर तुम्हारै है को, कहौ कहां थै आया ।।

5.कबीर की भाषा में विविध प्रान्तीय भाषाओं का मिश्रण है। बंगला, मैथिली, राजस्थानी, आदि सभी प्रान्तों की प्रभावात्मक शब्दावली कबीर की वाणी में मिलती है।
6.कबीर की भाषा सीधी, सरल और सादी होकर भी संकेतात्मक, प्रतीकात्मक व पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग के कारण दुरूह हो गई है, किन्तु उसका पारिभाषिक शब्द का अर्थ अमल में आते ही वह सरल और सहज ग्राह्य प्रतीत होने लगती है।
7.कबीर की भाषा में अधिकांश शब्दों के विकृत रूप प्रयुक्त हुए हैं। अतः अनेक बार उनके वास्तविक स्वरूप का पता लगाना कठिन हो जाता है। निम्नांकित पद में शब्दों की तोड़-मरोड़ एवं विकृति देखी जा सकती है-

रे दिल खोजि दिलहर खोजि, ना परि परेसानी मांहि।
महल माल अजीज औरति, कोई दस्तगीरी क्यूं नाहिं ॥

पीरां मुरीदां कजियां, मुलो अरू दरवेश।
कहां थे तुम किनि कीये अकलि है सब नेस ।।
कुरानां कतेबां अस पढ़ि-पढ़ि फिकरी या नहीं जाई।
टुक दुम करारी जै करै, हाजिरां सूर खुदाई ॥

निष्कर्ष - निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कबीर की भाषा में अनेक भाषाओं का मिश्रण है। वह एक व्यावहारिक भाषा है। उसमें तीखी भाव-व्यंजना, मार्मिकता और प्रेषणीयता तो है ही, अव्यवस्थित होकर भी वह गतिशील है। उसमें विषयानुकूलता और प्रसंगानुकूलता को विशेष महत्व प्राप्त है। कबीर की भाषा में अनेक शैलियों का विधान है। अतः वह अत्यन्त शक्तिशाली हो गई है। इन्हीं सब कारणों से कबीर को आचार्य द्विवेदी ने भाषा का 'डिक्टेटर' कहा है। यह ठीक भी है क्योंकि वह मर्म प्रहारक शब्दावली से युक्त है, व्यंग्यात्मकता के कारण उसमें एक गति है, उसमें स्वेच्छानुकूल अभिव्यक्ति का अपूर्व गुण है। कबीर की भाषा ओजस्विता और तेजस्विता से पूर्ण है। उसमें उक्ति-वैचित्र्य और अर्थ-सौष्ठव पूर्णतः देखा जा सकता है।

7.8 कबीरदास की भक्ति भावना का महत्व

भक्ति का महत्व

कबीर का कथन है कि माया के पास में पड़े हुए जीव का उद्धार केवल भगवद् भक्ति से ही हो सकता है। भक्ति के बिना माया जनित संशय का दुःख दूर नहीं हो सकता और न मुक्ति ही मिल सकती है।

'भाव भगति बिसवान बिन, कटै न संसै मूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मुक्ति नहीं रे भूल।

भाव भगति के बिना भव सागर से पार जाना असम्भव हैः

'जब लगि भाव- भगति नहीं करिहौं।
तब लग भौ सागर क्यों तरिहों ।।'

कबीर भाव भगति को कर्म, योग और ज्ञान से श्रेष्ठ मानते हैं। उनके विचार से हरि दर्शन ही एक मात्र महत्वपूर्ण है। राम का जप न करने वाले टेढ़े मेढ़े चलते हैं। बहुत से ज्ञानी राम-भक्ति न करने से डूब गये:

'कहे कबीर जिहि राम न चेत्यो बूढ़े बहुत सयाने।'
'क्या जप था क्या संजम, क्या व्रत क्या अस्नान।
जब लग मुक्ति न जानिए भाव भगति भगवान।'

कबीर में भक्ति के सभी रूप

कबीर में नवधा भक्ति और नारदीय- भक्ति के समस्त रूप मिलते हैं। 'नारद सूत्र' में भक्ति के ग्यारह रूप माने गये है। नारद को वैसे कबीर ने भक्ति शिरोमणि कहा है, किन्तु कबीर की भाव- भक्ति प्रणाली इससे भिन्न है।

कबीर में नवद्या भक्ति का रूप-

श्रवण **'सती पुकारे सति चढ़ों, सुनि रे मीत मसान।**
लोग बटाऊ चलि गये, हम तुम रहे मसान।'

कीर्तन **'ज्यों- ज्यों हरि गुन सांभल, त्यों- त्यों लागे तीर।'**

स्मरण **'मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहि आहि।'**

बन्दर **'जब मन राम का ही हो गया, तो सीस किसे नवाऊं।'**

पद सेवन **'मन के मोहन बीठुला, यह मन लागी तोहि।**
चरन कंवल मन मानियां, और न भावै सोहि।'

अर्चना **'मांहै पाती मांहि जल, मांहै पूजनहार।'**

दास्य **'गले राम की जेबड़ी, जित खैचे तित जाऊं।'**

सरल **'अंक भरे भरि भेटियां, मन में नांही धीर।**

कहै कबीर ते क्यूं मिले, जब लग दोइ सरीर।'

आत्म- निवेदन -

इस दशा में अभेद् भाव की स्थिति बनी रहने के कारण सुध बुध भूल जाती है। ऐसी रसानुभूति की स्थिति आ जाती है किः

'भलि भई जु भै पड़या, गई दसा सब भूल।

पाला गलि पांणी भया, दुलि मिलिया उस कूल ।।'

बूंद समुद्र में विलीन हो जाती है और फिर न उसका और न उसके ढूंढने वाले का ही पता लगता है और अन्त में मन ही मन यही कहना पड़ता हैः

'मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।

तेरा तुझको सौंपता, क्या लागै है मोर ॥'

नारद- सूक्त में वर्णित ग्यारह आसक्तियां -

कबीर में नारद सूक्त में वर्णित ग्यारह आसक्तियों के उदाहरण मिल जाते हैं। प्रत्येक के उदाहरण निम्नलिखित हैः

गुण महात्म्यसक्ति **'निरमल राम नाम गुन गावै, सो मगता मेरे मन भावै।'**

रूपासक्ति- **'कन्द्रप कोटि जाके लावन धरै। घट घट भीतर मनसा हरै ।।'**

पूजासक्ति

- **'जो पूजा हरि नाहि भावै, सा पूजन हार चढ़ावै।**

जेहि पूजा हरि मन भावै, सो पूजन हार न जावै ।।'

स्मरणसक्ति- **'भगति- भजन हरि नांव है, दूजा दुःख अपार।**
मनसा, बाचा, कर्मणा, कबीर सुमिरण सार ।।'

दास्यासक्ति- **'जो सुख प्रभु गोविन्द की सेवा।**
सो सुख राज ना लहियै ।।'

कान्ता सक्ति- **'हरि मेरा पीव मैं राम की बहुरिया।'**

वात्सल्यासक्ति- **'हरि जननी मैं बालक तोरा।'**

तन्मयासक्ति- **'कह कबीर हरि दरस दिखावौ ।**
हमहि बुलावौ कै तुम आवौ।'

पूर्ण विरहासक्ति- **'बाल्हा आव हमारे गेह रे।**
तुम गिन दुखिया देह रे।
सब कोई कहै तुम्हारी नारी मोको इहै सन्देह रे ।।
एक मन है सेज न सौवे, तब लग कैसा नेह रे ॥'

आत्म- निवेदनासक्ति- 'माधो मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति हेत नहीं साधी।

कारन कबन आइ जग जनम्यो, जननि कबन सचु पायो ।।'

कबीर ब्रह्म को निर्गुण मानते हुए सगुणोपासक-

कबीर निर्गुण निराकार के उपासक थे, परन्तु निर्गुण निराकार का केवल ध्यान ही किया जा सकता है। न तो उसमें प्रेम किया जा सकता है और न सेवा ही की जा सकती है। इसलिए कबीर को भी विवश होकर ब्रह्म के व्यक्त या सगुण रूप को अपनाना पड़ा। कबीर ने अनेक स्थलों पर इसी सगुण- भक्ति की सेवा, उपासना की चर्चा पर कहीं कहीं अवतारों का भी उल्लेख किया है

'भजि नारदादि सुखदि बंदित चरन पंकट भामिनी ।

'ओहि पुरुष देवाधि देव। भगति हेत नरसिंह भेव ॥'

शरणागत की भावना-

कबीर में शरणागत की भावना पूर्ण रूप से मिलती है, जो कि भक्ति का प्राण है। कहीं वे अपने को राम का गुलाम कहते हैं और कहीं राम के चरणों की धूल कहते हैं। कबीर के इस आत्म- निवेदन में तुलसी एवं सूर की गहरी तन्मयता मिलती हैः

'माधव कब करिहौ हो दाया।
का, क्रोध, अहंकार न व्याघे छूटै माया ।।'

भक्ति के साधनों में कबीर ने गुरु सेवा, भगवद् कृपा, नाम, जप, स्मरण, कीर्तनादि तथा सत्संग आदि सबको महत्व दिया है।

कबीर की साखियाँ, उनकी विचारधारा और भावधारा

साखी शब्द संस्कृत 'साक्षी' शब्द का अपभ्रंश है और साक्षी का अर्थ है 'गवाहीश् अर्थात् जो कुछ स्वयं देखता या अनुभव किया उसे सच्चाई और ईमानदारी के साथ प्रस्तुत कर देना ही साक्षी कहा जाता है। इस आधार पर कबीर की 'साखी' का तात्पर्य भी उनके साक्षात् या प्रत्यक्ष अथवा यथार्थ ज्ञान से लगाया जा सकता है।

साधारण रूप से 'साखी' से अभिप्राय महापुरुषों के आप्त वचनों से लिया गया है। नीति-काव्य के रचयिताओं ने नीति की बातें कहते समय 'साखी' का ही प्रयोग किया है। कबीर की साखियों में कबीर की विचारधारा और भावधारा का ही वर्णन है। उन्होंने 'साखी' को 'ज्ञान की आंख' कहा है-

साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देख मन माँहि।
बिन साखी संसार का झगरा छूटत नाहि।

अर्थात् जब हम अज्ञान के अंधकार में भटकते हुए ज्ञान के प्रकाश की अपेक्षा करते हैं, तब 'साखी' द्वारा हमको वह ज्ञान प्राप्त होता है। कबीर ने साखी के महत्व की चर्चा स्थान-स्थान पर की है। वे यह मानते हैं कि साखियाँ उन्हें आनंद प्रदान करती हैं।
पद गायें मन हरषिया, साधी कहयो आनंद। अतः पदों की अपेक्षा साखियाँ अधिक महत्वपूर्ण है। कबीर साखी कहने का उद्देश्य भी स्पष्ट करते हैं-

हरिजी यहे बिचारिये, साधी कहौ कबी,
भौं सागर में जीव है, जे कोई पकड़े तीर ॥

स्पष्ट है कि साखियाँ मानव मात्र को संसार के बंधनों से मुक्त करके आवागमन के चक्कर से छुड़ाने वाली है। साथ ही कबीर ने यह भी घोषित कर दिया है कि जो व्यक्ति 'साखी' तो कहता है, परंतु साखी को ग्रहण नहीं करता अथवा उसके अनुकूल आचरण नहीं करता, वह मोह रूपी नदी के जल में बहता रहता है और उसके पैर तक नहीं टिकते अर्थात् वह मोह से निकल नहीं पाता।

साखी कहें गहें नहीं, चाल चली नहिं जाय।
सलिल मोह नदिया बहै, पाँव नहीं ठहराय ।।

इस प्रकार साखियों में कबीर ने प्रामाणिक एवं प्रत्यक्ष अनुभव से संबंधित उन विचारों को रखा है जिनके अनुकूल आचरण करने से मानव मात्र का कल्याण हो सकता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि प्रामाणिकता की दृष्टि से साखियों का महत्व सर्वाधिक है। कुछ रमैनियाँ ऐसी होती है जिनके अंत में एक-एक साखी उद्धृत की गई हैं। साखी अद्भुत करने का अर्थ ही यह होता है कि कोई दूसरा आदमी मानो इस रमैनी को लिख रहा है और इस रमैनी की व्याख्या के प्रमाण में कबीर की साखी को गवाही के रूप में पेश कर हा है।

साखी की परंपरा- 'साखी' परंपरा अत्यंत प्राचीन है। श्वेतांबर उपनिषद में 'साखी' शब्द का प्रयोग परमसत्ता के अर्थ में हुआ है। यथा-

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतात्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साखी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।

'साखी' का प्रयोग परवर्ती काव्यकारों के अनुसार साक्षी या प्रत्यक्ष दृष्टा या प्रामाणिक ज्ञान है।

'साखी' का प्रयोग नीति काव्य में बहुत हुआ है। नीति काव्य के रचयिताओं ने नीति की बातें करते समय 'साखी' का ही प्रयोग किया है। यह साखी अपभ्रंश काल से प्रचलित है। संत काव्य में तो इसका बोलबाला ही है।

साखियों का महत्व- संतों का मत है कि साखी के बिना संसार का झगडा समाप्त नहीं होता है। अतः संसार में भटके मानव को सही मार्ग दिखाने का माध्यम ही साखी है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने स्पष्ट किया है कि ('साखी' का अर्थ प्रत्यक्ष ज्ञान मानते हुए) वह प्रत्यक्ष ज्ञान गुरु शिष्य को प्रदान करता है। संत संप्रदाय में अनुभव जन्य ज्ञान की महत्ता है, शास्त्रीय ज्ञान की नहीं। इस प्रकार सत्य की साक्षी देता हुआ ही गुरु जीवन के तत्व ज्ञान की शिक्षा शिष्य को देता है। संक्षेप में तत्व ज्ञान की शिक्षा जितनी प्रभावपूर्ण होती है, उतनी ही स्मरणीय है। इसी कारण संत संप्रदाय में 'साखी' इतनी अधिक मात्रा में है। यह भी कहा जा सकता है कि कबीर के समय में ही उनके शिष्य उनके प्रामाणिक कथनों को साखी के रूप में जनता के सम्मुख संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते थे। आगे चलकर वे 'साखियाँ' गुरु के सिद्धांत वाक्य के रूप में गृहीत हुई है।

साखियाँ कबीर की विचारधारा की प्रतिनिधि- नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' में कबीर की साखियों की संख्या 809 है। ये साखियाँ 59 अंगों में विभाजित है। इनमें कबीर ने अपने निवृत्तिमूलक तथा प्रवृत्तिमूलक दोनों ही प्रकार के विचारों का प्रतिपादन किया है। कबीर की साखियाँ साधना और सामान्य लोक जीवन

दोनों से संबंधित हैं। लौकिक आचरण संबंधी अंगों में से 'चेतावनी को अंग' विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। साखियों में कबीर का संपूर्ण प्रतिपादन उपलब्ध होता है। यदि केवल कबीर की साखियाँ ही उपलब्ध होतीं तब भी कबीर के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों ब्रह्म निरूपण, रहस्यवाद, गुरु-महिमा, ज्ञान-महिमा, बाह्याडम्बर की निरर्थकता, हठयोग साधना, माया-जीव का निरूपण आदि का पूर्ण प्रतिपादन हो जाता और हमको कबीर की वाणी में किसी प्रकार की अपूर्णता का अनुभव न होता।

कबीर की साखियों में वर्णित भाव

1. सदाचार और शुद्धाचरण- कबीर ने अपनी साखियों के माध्यम से मानव को सदाचार और शुद्धाचरण की शिक्षा दी है। वे अहंकार शून्य मधुर वाणी की ओर ध्यान खींचते हैं-

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरों को सुख होई।

संगति- संगति साधु की जाय, मूर्ख की नहीं, वे यह तथ्य तर्क सहित प्रस्तुत करते हैं-

मूरखि संग न कीजिए, लोहा जालि न तिराइ ।
कदली सीप भुजंग मुख, एक बूंद तिहुँ भाइ ।।

साधु संगति की महिमा की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं-

कबीरा संगति साधु की, कंदन निरफल होड़।
चंदन होसी बाँवना, नींव न कहसी कोई।

कबीर मन शुद्धि की ओर भी संकेत करते हैं, जो मन को वश में रख पाता है वह स्वयं करतार हो जाता है-

मन गोरख मन गौविदों मन ही औघड़ होड़।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता होड़ ।।

2. **गुरु-महिमा-** कबीर ने गुरु को बहुत महत्व प्रदान किया है, गुरु की महत्ता उन्होंने नाना प्रकार से गायी है-

सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपकार।
लोचन या, अअनत उघाड़िनत दिखाणहार।

3. **नाम महिमा-** कबीर ने भगवन्नाम को वेदों-पुराणों का सार बताया है। नाम-स्मरण के द्वारा साधक अपने प्रभु के निकट पहुँच जाता है

चिंता तो हरि नाम की, और न चिंता दास।
जे कुछ चितवै राम बिनु, लोह काल की पास ।।

4. **विरह की महिमा-** कबीर प्रेम की पूर्णता के लिए विरह को महत्वपूर्ण मानते हैं। विरह ही आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिए प्रेरित करता है-

विरह भुवंगम तन बसे, मंत्र न लागै कोड़।
राम वियोगी ना जिवै, त बोरा होइ ॥

5. संसार की नश्वरता- कबीर संसार को नश्वर मानते हैं साथ ही क्षण-भंगुर भी। कबीर मनुष्य को बार-बार चेतावनी देते हैं कि वह क्षण-भंगुर संसार के क्षणिक विषयों को छोड़कर भगवान का स्मरण करे

यह ऐसा संसार है जैसा सेवल फूल।
दिन दस के व्यौहार को झूठे रंग न भूल।

6.माया पाप की जड़ है- कबीर ने माया को समस्त अनर्थ एवं दुःख का मूल माना है. और उसको पापिनी, ठगिनी, डायन कहा है-

कबीर गुण की बाढ़ली, तीतर बानो छाँहि ।
बाहिर रहते ऊबरे, भागे मंदिर माँहि ।।

7. ब्रह्म स्वरूप विचार- ब्रह्म स्वरूप विचार एवं ब्रह्म निरूपण को लेकर कबीर ने कई साखियाँ लिखी है-

आदि मध्य अरू अंत लों, अविहड़ सदा अभंग।
कबीर उस करतार को, सेवक तजै न संग।

8. बाह्याचार खंडन- कबीर ने बाह्याचार का खंडन पर्याप्त मात्रा में किया है। उन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनों को फटकारा है-

दुनिया ऐसी बाबरी, पाथर पूजन जाइ।
घर की चकिया कोईन पूजै, जेहि का पीसा खाई।

9. प्रेमानुभूति- कबीर की प्रेमानुभूति रहस्यवाद की ही झलक है-

सपने में साईं मिले सोबत लिया जगाय।
आंख न खोलें डरपता मत सपना है जाय ।।

10. दार्शनिकता- कबीर की साखियों में दार्शनिकता का रंग भी चढ़ा हुआ है। इसी कारण कबीर ने छोटे-छोटे दोहों में ब्रह्म और जीव की अद्वैतता, जगत और ब्रह्म का अभेद तथा माया के द्वारा ब्रह्म और जीव एवं ब्रह्म एवं जगत की भिन्नता आदि का प्रतिपादन बड़े ही सुंदर एवं सजीव ढंग से किया है। कबीर की ये साखियाँ वेदांत के अद्वैतवाद की पोषक हैं। इसलिए इनमें संसार का मिध्याभाव, माया का प्रपंच, साधक की विरहानुभूति, हठयोग की साधना, ब्रह्मानंद की प्राप्ति आदि का निरूपण किया गया है। हठयोग की स्थिति का एक चित्र देखिए-

आकासे मुखि औधा कुआ, पाताले पनिहारि ।
ताका पाँणी को हंसा पीवे, विरला आदि विचारि ।।

इसी प्रकार आत्मा-परमात्मा के मिलन को कबीर ने बड़े ही रोचक ढंग से समझाते हुए बताया है कि-

सूरित समांणी निरति में, अजता माँहैं जाय।
लेख समांणां अलेख में, यूँ आपा माँहै आप ।।

काव्यात्मकता- कबीर की साखियों, अधिकतर दोहा छंद में ही मिलती हैं, पर कतिपय साखियाँ चौपाई, श्याम उल्लास, हरिपद, गीता सार तथा छप्पय छंद में भी मिलती हैं। साथ ही इनमें उच्चकोटि के काव्य के भी दर्शन होते हैं। श्विरहिणी कौ अंगश्, विप्रलंभ श्रृंगार की दृष्टि से अत्यंत उत्कृष्ट है, जहाँ कबीर ने विरहानुभूति का मर्मस्पर्शी निरूपण किया है। इसी प्रकार श्पत्तिन्नता कौ अंगश् भी रहस्य भावना की दृष्टि से उच्च कोटि के कवित्व का उदाहरण है। इतने छोटे छंद में उक्ति वैचित्र्य, भाव-गांभीर्य एवं अर्थ सौष्ठव का चमत्कार दिखाया है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार-सभी साखियाँ जीवन के भावात्मक एवं कल्पनात्मक विवेचन से परिपूर्ण है, इनमें सच्ची अनुभूति के साथ-

साथ काव्य-प्रतिभा का कौशल भी विद्यमान है तथा साखियाँ उच्च कोटि के व्यंग्य से परिपूर्ण होने के कारण हृदय पर सीधी चोट करती है।

उपसंहार- कबीर ने अपनी साखियों में अनुभवजन्य ज्ञान का निरूपण किया है और मानव-समाज को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान की है। यही कारण है कि विद्वानों ने कबीर की साखियों को उनकी चिंतन पद्धति एवं भाव-धारा का प्रतिनिधि माना है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार-कबीर की साखियाँ वैयक्तिक अनुभूतियों का भंडार हैं, प्रगल्भता एवं प्रभविष्णुता में बेजोड़ है; सहज स्वाभाविक सौंदर्य से ओतप्रोत है, अत्यंत साधित हैं तथा ज्ञान और भक्ति, नैतिकता और व्यावहारिकता, दार्शनिकता और भावुकता, आध्यात्मिकता और लौकिकता की समुच्चय है। साथ ही इनके द्वारा जहाँ समता तथा सहज प्रेम की भावनाएं जाग्रत की गई है। जिनसे विश्व-बंधुत्व की भावना को बल मिला है, ये साखियाँ व्यक्ति को आत्मनिरीक्षण की ओर भी उन्मुख करती हैं। शुद्धाचरण करने के लिए बाध्य करती हैं, संतोष, उदारता, परोपकार, सेवा आदि को अपनाने का आग्रह करती हैं, अनासक्तिपूर्ण कर्मों द्वारा मुक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा देती है तथा दुष्कर्मों के परित्याग एवं सत्कर्मों के अपनाने की भावना जाग्रत करती हुई मानव मात्र में आध्यात्मिकता, नम्रता, ईश्वर-विश्वास, सच्चरित्रता, सामाजिक एकता, भगवद् भक्ति आदि का संचार करती हैं। इसलिए कबीर की साखियाँ वाणी के अद्भुत सौंदर्य से ओतप्रोत हैं और इनमें कबीर का सर्वजयी व्यक्तित्व विद्यमान है।

स्व-प्रगति परीक्षण

1. कबीर.....शाखा के कवि थे।
2. कबीर के प्रमुख शिष्य.....थे।
3. कबीर की रचनाओं का संग्रह.....कहलाया।
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल कबीर की भाषा को .....नाम देते हैं।

7.9 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रमअंतर्गत भक्तिकालीन कवि कबीर के काव्य की विशेषताओ से परिचित हो चुके होंगे। कबीर के काव्य में रहस्यवाद, कबीर का समाज सुधारक रूप, उनकी भाषा शैली और विशेषताओं से अवगत हो चुके होंगे। कबीर भक्तिकाल के प्रमुख निर्गुण भक्ति काल के कवि हैं जिन्होंने अपने विचारों से समाज को एक नई दिशा प्रदान की।

7.10 मुख्य शब्द

दिसि - दिशा

सुमिरन - ईश्वर के नाम का जाप

बैरी - दुश्मन

सुरा – शराब

7.11 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. निर्गुण
2. धर्मदास
3. बीजक
4. सुधक्कड़ी

7.12 संदर्भ सूची

1. **सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद.** (2022). *हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि.* श्री विनोद पुस्तक मंदिर.
2. **राय, बाबू गुलाब.** (2020). *हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास.* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल.
3. **कपूर, श्याम चंद्र.** (2020). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन
4. **शुक्ल, आचार्य रामचंद्र.** (2021). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन.

7.13 अभ्यास प्रश्न

1. कबीर के जीवन वृत के विषय में लिखिए।
2. कबीर की भक्ति भावना पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
3. कबीर की दर्शनिकता विषय पर प्रकाश डालिए।
4. कबीर की काव्य कला पर प्रकाश डालिए।
5. 'कबीर का समाज सुधारक रूप अप्रतिम है' सिद्ध कीजिए।

ब्लॉक - III

इकाई - 8

जायसी के काव्य की समीक्षा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 जायसी के पद्मावत में लोक तत्व

8.4 जायसी के विरह वर्णन की विशेषताएँ

8.5 जायसी की रहस्य भावना के स्वरूप का परिचय

8.6 महाकाव्य की दृष्टि से 'पद्मावत' का महत्व

8.7 जायसी के प्रकृति-चित्रण की विशेषताएँ

8.8 जायसी के 'पद्मावत' में सौन्दर्य वर्णन

8.9 सार संक्षेप

8.10 मुख्य शब्द

8.11 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.12 संदर्भ सूची

8.13 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास के विद्वान कवि जायसी के बारे में हम चर्चा करेंगे जायसी द्वारा लिखित "पद्मावत' एक प्रसिद्ध काव्य है। जिसमें राजा रत्नसिंह और सिहल्द्वीप की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम का वर्णन है। इसी इकाई में हम जायसी की भक्तिभावना और उसके स्वरूप से परिचित हो सकेंगे । पद्मावत के वियोग वर्णन और उसके विशेषताओं से परिचित हो पाएंगे। जायसी के पदो में लोकतत्व और सौंदर्य वर्णन को समझ पाएंगे। इस काई में हम जायसी के व्यक्तित्व, उनके काव्य संसार और साहित्य साधना को भलीभाँति समझ पाएंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- जायसी की काव्य सौंदर्य के विषय में जान सकेंगे।
- जायसी के पद्मावत में विरह वर्णन को समझ पाएंगे।
- जायसी के रहस्य भावना के स्वरूप से परिचित हो पाएंगे।
- जायसी की प्रकृति चित्रण की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- जायसी के पद्मावत में महत्व से अवगत हो पाएंगे।

8.3 जायसी के पद्मावत में लोक तत्व

पद्मावत लोकजीवन का आख्यान

जायसी के पद्मावत में लोकपक्ष को पर्याप्त स्थान मिला है। एक तरफ उन्होंने इसमें मुहावरे और कहावतों के प्रयोग से लोकभाषा को संवारा है तो दूसरी तरफ लोकजीवन की अभिव्यक्ति करके भी लोकजीवन का काव्य कहलाने का अधिकारी बना दिया है। 'पद्मावत का शब्द कोष उसमें प्रयुक्त लोकोक्तियां, कहावतें, मुहावरे तथा सूक्तियां आदि भी सामूहिक रूप से 16वीं शताब्दी में प्रचलित बोलचाल की अवधि तत्कालीन लोकभाषा का वास्तविक रूप प्रकट करती है।'

जायसी के पद्मावत में लोकपक्ष की तस्वीर है। लोकजीवन को विविध रंगों में प्रस्तुत करने वाली यह तस्वीर बड़ी साफ और चमकती हुई है। लोकजीवन की अभिव्यक्ति पद्मावत में निम्नलिखित रूपों में देखी जा सकती है-

1. लोकजीवन से संबद्ध वर्णन ।
2. विरह वर्णन में लोक चेतना का स्पर्श ।
3. लोकजीवन से गृहीत प्रेम कहानी में लोककथाओं का समावेश
4. लोकजीवन में प्रचलित उपमानों का सन्निवेश ।

(1) जहां तक लोकजीवन से संबंधित वर्णन का प्रश्न है जायसी ने वस्तु वर्णन के विधान में लोकजीवन की स्पष्ट छवियां अंकित की हैं। पद्मावत में लोकजीवन के पर्व, त्यौहार, पनघट चित्र, विवाह चित्र सखियों का हास-परिहास, बालक्रीड़ाएं, सरोवर स्नान के लिए देव की मनौती आदि का समुचित समावेश किया गया है। पनघट का वर्णन बड़ा मधुर है। इस वर्णन के अनुसार पनिहारिनें पद्मिनी जाने घस होती थी। वे समूहों में या पंक्तिबद्ध होकर आया करती थीं। जायसी रूह है-

पानि भरइ आवहिं पनिहारी। रूप-सुरूप पदुमनी नारी ।।
आवहिं झुंड-झुंड सो पाती। गवन सोह सो भांतिहि भांती ।।

विवाह प्रसंग में जायसी ने विवाहादि की तैयारी का जो वर्णन किया है, वह भाविक रूप से ग्रामीण जीवन की परयाद दिलाता है-

साजा राजा बाजन बाजे।
मदनसहाय दहूं दिसि गाजे ॥
औ राता रथ सोन के राजा।
भए बरात मोहन सब राजा ॥
धरती सरग चहूं दिसि, पूरी रहे मसियार।
बाजत आवै राममंदिर कहूं होइ मंगलचार।

इस प्रकार अनेक त्यौहारों तथा पर्वा◌े का वर्णन भी पद्मावत में मिलता है।

(2) विरह वर्णन भी लोकजीवन को व्यंजित और स्पष्ट व्यक्त करता है। नागमति का विरह-वर्णन ग्रामीण जीवन की नारी की याद दिलाता है। बारहमास इसका ज्वलंत उदाहरण है। लोकजीवन की मास से संबंधित अनेक छविय हाहरमासा में सुरक्षित हैं। सिर्फ वर्षा काल के संदर्भ में लिखी गई एक ही पंक्ति पर्याप्त है-

पुष्प नखत सिर ऊपर आवा। हौ बिनु नाह मंदिर को छावा ॥
बससै मघा झकौरि झकौरी। मारेदुई नैन चुवहिं जस ओरी ।।
सावन बरसि मेह अति पानी। भरनि परी हौं विरह झुरानी ।।

नागमति के वियोग वर्णन में कवि ने गांव के प्राकृतिक व्यापारों के मध्य ही का चित्रण किया है। घुघची, पलाश, परवर और गेह आदि का उल्लेख बल लोकजवन की ही सूचना देता है। एक पंक्ति देखिए-

सखि झूमर गावहिं अंग मौरी।
हौं झुराव विधुरी मोरी जोरी ।।

(3) पद्मावत की लोकजीवन से ग्रहीत प्रेम कहानी में लोककथाओं का समावेश भी किया गया है। जायसी के पद्मावत का अधिक अंश लोककथाओं के सहयोग से आगे बढ़ता है। सुक और हीरामन तोते का विनियोग लोकजीवन के संस्पर्श को ही व्यक्त करता है। स्पष्ट ही है कि जायसी का झुकाव लोकजीवन की ओर था।

(4) पद्मावत में लोकजीवन की व्यंजना करने के लिए जायसी ने लोकजीवन के उपमानों को भी ग्रहण किया है। इन लोक-उपमानों तथा शब्द संयोगों के कारण पद्मावत लोक जीवन का हो काव्य ठहराता है। लोकजीवन से ग्रहीत प्रिय उपमानों में पपीहा, हिंडोला, पीतपत्ता, भरसाय (भाड़) और औरी प्रसिद्ध है। जायसी के पपीहे का उपमान देखिए-

पिउ वियोग सस बाउर जीऊ।
पपिहा नित बोले पिउ पीऊ।

वरहाकुल व्याकुल हृदय के निमित्त कवि जायसी ने हिंडोले का जो उपमान अपनाया है वह लोकजीवन के प्रति रुचि को ही प्रदर्शित करता है-

हिय हिंडोल अस डोले मोरा।
विरह झुलाय देह झकझोरा ।।

पीले पत्ते का अपमान विरह के कारण पति तथा कृश हुए शरीर के लिए अपनाया गया है-

तन अस पियर पात भा मोरा।
तहि पर विरह देह झकझोरा ।।

इसी संदर्भ में एक और उपमान प्रस्तुत करके इस प्रसंग को खत्म करते हैं। हृदय की टीस या पीड़ातिरेक की व्यंजना विभिन्न कवियों ने विभिन्न शैलियों में की है, किन्तु जायसी ने भाड़ में गर्म बालू में भुनते हुए अन्न का उपमान प्रस्तुत किया है तथा प्रिय वियोग में नेत्रों से प्रवाहित अश्रु वर्षा ऋतु के ओलों के समान प्रतीत होते हैं। देखिए तो सही कि कवि जायसी क्या कहते हैं-

लागिउ जरै-जरै जस भारू।
फिर फिर भंजेसि तजेऊ न बारू ।।
बरसै मघा झकोरि।
मम दुई नैन चुबहिं जस ओरी ।।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि जायसी ने लोकजीवन का संस्पर्श और बहुत स्पष्ट संस्पर्श पद्मावत में प्रस्तुत किया है। भाषा लोकोन्मुक्तता ने लोकजीवन के विविध पक्षों तथा पर्वा े को उद्घाटित किया है और साथ ही स्वयं जायसी ने यथावसर अनेक हिन्दू रीति रिवाजों और ग्रामीण वातावरण तथा तत्संबंधित पों तथा त्यौहारों को इस प्रकार व्यक्त किया है जिससे यदि पद्मावत को लोकजीवन का महाकाव्य कह दिया जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। पद्मावत के

विविध पक्षों में जहां दरशन, काव्य और आध्यात्मक का विशिष्ट गौरव है वैसे ही इसके लोक पक्ष का भी। लोक का विस्तृत विवेचन विद्वानों को आमंत्रित कर रहा है।

8.4 जायसी के विरह वर्णन की विशेषताएँ

जायसी के विरह वर्णन के प्रकार

भारतीय काव्य शास्त्र की दृष्टि से विप्रलम्भ श्रृंगाल पाँच प्रकार का माना गया है 1. अभिलाषा मूलक विरह 2. ईर्ष्या मूलक विरह 3. वियोग मूलक विरह 4. प्रवास मूलक विरह 5. शाप मूलक विरह। इनके प्रकारों में अभिलाषा मूलक विरह वर्णन 'पद्मावती वियोग खण्ड' में पद्मावती के विरह में लक्षित होता है। इसके अतिरिक्त वियोग मूलक विरह, ईर्ष्या मूलक विरह और प्रवास मूलक विरह वर्णन नागमति की विप्रलम्भ अवस्था में देखने को मिलता है। इसके साथ ही अवस्था के आधार पर पूर्वराग, प्रवास और करुणा जैसे विरह के प्रकारों का निरूपण भी नागमति तथा पद्मावती के विरह में दृष्टिगोचर होता है। अभिप्राय यह है कि जायसी के काव्य में विरह-मूलक विप्रलम्भ श्रृंगार के सभी प्रकारों का समावेश मिलता है।

जायसी के विरह वर्णन की विशेषताएं

जायसी के विरह वर्णन की निम्नांकित विशेषताएँ हैं-

1. वेदनापरक मार्मिक विरहोक्तियां जायसी के विरह- वर्णन में वेदना की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने विरह वर्णन करते समय विरह में तपने वाले वेदनात्मक स्वरूप को अधिक अपनाया है। इसलिए आपने विरही की पीड़ा, व्यथा, वेदना, कसक एवं टीस के बड़े ही मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किये हैं। आपने प्रेमी की उस विलक्षण दशा को भी चित्रित किया है जिसका स्मरण आते ही विरही व्यथित हो उठता है तथा अत्यधिक दुःखी होता हुआ भी उसी प्रेम का स्मरण करता है। उस

समय उसकी दशा ऐसी होती है जैसी बालू में पड़े चने की होती है। जैसे चना गर्म बालू में भूने जाने पर उछल पड़ता है पर बाहर नहीं जाता, उस प्रकार विरही प्रेमी को बार बार याद करके दुख पाता है, परन्तु विस्मृत नहीं कर पाता है।

2. रोदन का प्राधान्य- जायसी के विरह वर्णन में रोदन का भाव विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। स्त्री और पुरूष पात्र आंसू बहाते हुए अपनी विरह व्यथा को प्रकट करते हैं। उनके आंसुओं में कहीं तो पर्वत के शिखर टूट जाते हैं, समुद्र मर्यादा छोड़ देते हैं और सारी सृष्टि डूब जाती है।

3. विरह की सर्वव्यापकता- जायसी का विरह एकांकी नहीं हैं। वह समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है इसलिए विरह व्याकुल का प्रभाव मनुष्य तक ही सीमित नहीं है वरन् पशु, आकाश, पाताल, स्वर्ग आदि समस्त ब्रह्माण्ड में विरह का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, जैसे-

'विरह के अगि सूर अरि काया।
रातहिं दिवस जैर औहि ताया ।।'

4. विरह में सात्विकता की प्रधानता- जायसी का विरह वर्णन अत्यन्त हृदय स्पर्शी और पवित्र है। उनके विरह वर्णन में कहीं भी अश्लीलता के दर्शन नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त जायसी ने विरह वर्णन, मनोविज्ञान के सामान्य नियमों को अपनी दृष्टि में रखकर किया है। उन्होंने यह दिखाया है कि दुख की अवस्था में कष्टदायक वस्तुएं तो कष्टप्रद होती ही हैं लेकिन आनन्ददायक वस्तुएं भी कष्टप्रद होती हैं। जैसे-

कातिक सरद चन्द उजियारी।
जग शीतल हो विरहा जारी ।।

5. प्रकृति के संवेदनापरक रूप की योजना- जायसी के विरह वर्णन की यह एक अनूठी विशेषता रही है कि उसमें पेड़, पौधे और पशु पक्षी आदि भी विरहिणी नागमती के प्रति संवेदनात्मक भाव रखते और उसके विरह दुख से अनुतापित होते

चित्रित किए गए हैं। उदाहरणार्थ, जायसी ने भ्रमर और कागों के माध्यम से स्व-पति रत्नसेन तक यह संदेश पहुंचाने की इच्छा व्यक्त की है कि वह उसकी विरहाग्नि में जल कर मर चुकी है और हम उस आग के धुएं से ही काले पड़ गए हैं।

'पिठ सौं कहेह संदेसडा हे भौंरा ! हे काग !
सो धनि बिरहै जरि मुई तोहिक धुवां हम्ह लाग ।।'

6. विरही जनों की शारीरिक कृशता जायसी ने अपने विरह वर्णन में विरही पात्रों की कृशता का अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है, जैसे नागमती की दुर्बलता का एक उदाहरण देखिए-

'हाड़ भए सब किकरी, नतै भई जस लाति।
रोवं-रोवं ते धुनि उठैं, कही विथा केहिं भांति ।।'

7. विरह दशा में अपनी उच्च सामाजिक स्थिति का विस्मरण- जायसी के विरह वर्णन की एक विशेषता यह भी कही जा सकती है कि विरह के कारण उनके नागमती आदि कुछ पात्र अपनी उच्च सामाजिक स्थिति को भूलकर सामान्य नर-नारियों की भांति रोने-कलपने और गृह-दशा के सम्बन्ध में चिन्ता व्यक्त करने लगते हैं। जायसी का विरह वर्णन अत्यन्त हृदय स्पर्शी और पवित्र है। नागमती का विरह वर्णन करने में जायसी ने अपनी अपूर्व भावुकता का परिचय दिया है। नागमती विरह की दशा में अपना रानीपन भूल जाती है। वह अपने को सामान्य स्त्री के रूप में समझने लगती है। जिस प्रकार चौमासे के आने पर, पति के न आने पर साधारण स्त्री की जो दशा होती है वह नागमती की है। उदाहरणार्थ-

'पुष्प नखत सिर ऊपर आवा।
हौ बिनु नाह मदिर को छावा ।।'

8. भारतीय एवं फारसी पद्धतियों का सम्मिश्रण- जायसी का विरह वर्णन भारतीय और फारसी दोनों ही पद्धतियों का मिश्रण दृष्टिगत होता है। भारतीय पद्धत्ति का अनुसरण करते हुए उन्होंने बारहमासे की योजना करते हुए वर्ष के प्रत्येक महीने में विरहिणी नागमती की शारीरिक और मानसिक दयनीय दशा का चित्रण किया है। उदाहराणार्थ आषाढ़ महीने में आकाश में छाये बादलो को गरजते देख-सुनकर नागमती कह उठती है।

'ओनै घटा आई चहूं फेरी, कंत आवक मदन हौं फेरी।'

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'जायसी के विरह वर्णन में वेदना है, व्यथा तथा पीड़ा का आधिक्य है। कोमलता, सरलता, मार्मिक वर्णन तथा गम्भीरता का सुन्दर समन्वय उसमें है। उन्होंने चिन्ता, व्यथा, मूर्छा, व्याधि आदि समस्त दशाओं का सुन्दर चित्र अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। उनका यह विरह-वर्णन रीतिकालीन कवियों यथा बिहारीलाल की भांति अतिश्योक्तिपूर्ण तथा मजाक की सीमा तक नहीं पहुंचा। उसमें संवेदनशीलता तथा प्रभावोत्पादकता है। प्रत्येक शब्द में हृदय को दौलायमान करने की अपूर्व शक्ति है। विरह का प्रत्येक स्थल टीस, पीड़ा आह, दर्द तथा तड़प से पूर्ण है। यह निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि जायसी का विरह वर्णन भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है, उनकी विरह व्यथा में जड़ चेतना को प्रभावित करने की अद्भुत शक्ति है।' विरहणी नागमती की भग्न हृदय की निम्नांकित चीत्कार प्रत्येक सहृदय को विगलित एवं करुणा अप्लावित करने में सक्षम है-

यह तन जारौ झारि कै, कहौ कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहां पांव ।।

जायसी के इस प्रकार के मार्मिक विरहोद्गारों के परिप्रेक्ष्य में ही तो समर्थ आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह मत व्यक्त किया था कि 'जायसी को हम विप्रलंभ,

श्रृंगार का प्रधान कवि कह सकते हैं। जो वेदना, कोमलता, सरलता और गम्भीरता इनके कथनों में है वह अन्यत्र दुर्लभ है।'

8.5 जायसी की रहस्य भावना के स्वरूप का परिचय

जायसी ने अपने काव्य में जिस रहस्यवाद को अपनाया है, वह पूर्णतया सूफी मत से प्रभावित है और सूफी मत प्रेम प्रधान होने के कारण भारतीय ज्ञानात्मक रहस्यवाद का भावात्मक रूप है। सूफी मत के अनुसार कवि उस परब्रहम की कल्पना प्रियतम के रूप में करता है। साहित्य में इस प्रकार के प्रेम प्रणय को माधुर्य भाव का प्रणय कहा गया है। अद्वैतवाद के अनुसार एक ओर आत्मा एवं परमात्मा का एक्य और दूसरी और ब्रहम एवं जगत की एकता अन्तर्भूत है। अपनी साधना पद्धति में भक्त तथा सन्त कवि प्रथम प्रकार की स्थिति को ही महत्व देते हैं। लेकिन सूफी कवि अपनी रहस्यमयी भावना में प्रकृति की प्रत्येक विभूति में सृष्टि के कण-कण में, सृष्टि के प्रत्येक कार्य में उस परोक्ष सत्ता का संकेत व आभास रखता है। वास्तव में अद्वैत वाद के मूल में एक दार्शनिक सिद्धान्त है, वह तत्व चिन्तन का फल है। वह ज्ञान क्षेत्र की वस्तु है, लेकिन जब भावना व कल्पना के द्वार रहस्यवाद की कोई सृष्टि होती है तो वह उच्चकोटि का रहस्यवाद है। जायसी इसी कोटि के रहस्यवाद के जन्म पिता थे। वह भावुक थे, उन्होंने उस परब्रहम की अनुभूति तथा उसको अपनी सरल भाषा द्वारा विविध रूपकों में बांधा। जायसी की विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम के विरह में सदैव पोड़ा, कसक और उसके मधुर मिलन के लिए सर्वथा छटपटा रही है, तिलमिला रही है।श् इसी से जायसी के रहस्यवाद का सरस एवं रोचक वर्णन मिलता है। जीवन का प्राप्य केवल प्रेम है-

'मनुष्य प्रेम भएउ बैकुण्ठी। नाहिं न काह छार भर मूठी।'

एक ऐसी बाजी है जिसकी प्राप्ति में लाभ ही लाभ है-

'मुहम्मद बाजी प्रेम के, ज्यौं भावें त्यों खेलें।
तिल फूलहिं के सज्यों, होड़ फुलायन तेल।'

सूफी शब्द धर्म में रहस्यवाद का पर्यायवाची है, अतः सूफी रचनाओं में रहस्य भाव की सहज, सरस और मार्मिक अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक ही है। जायसी के काव्य में लगभग सभी प्रकार के रहस्यवादों को सरस अभिव्यक्ति मिलती है। उनकी इस साधना का लक्ष्य दिव्य आनन्द की उपलब्धि है। जायसी आस्तिक सन्त हैं। उन्होंने कहा 'वह परमस्वामी एक है, उसका आदि और अन्त नहीं है। केवल वही शाश्वत स्थिति है और सब कुछ नश्वर है।'

1. भावनात्मक रहस्यवाद- सूफी परम्परा के कवियों में भी इस रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। जायसी भारतवर्ष के कवि है। इस सम्बन्ध में डा. वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने कहा है- 'जायसी सच्चे पृथ्वी पुत्र थे, थे वे भारतीय जनमानस के कितने निकट थे, इस दूरी की कल्पना करना कठिन है। गांव में रहने वाली जनता का जो मानसिक धरातल है, उसके ज्ञान की जो उपकरण सामग्री है, उसके परिचय का जो क्षितिज है, उसी सीमा के हर्षित स्वर में कवि ने अपने गान का स्वर ऊंचा किया है। जनता की उक्तियां, भावनाएँ मानों स्वयं छन्द में बंधकर उनके काव्य में गुन्थ गयी हैं।' यही कारण है कि उन्होंने विविध प्रकृति व्यापारों में उस अपूर्व सत्ता का आभास किया। पद्मावती के सौन्दर्य व दीप्ति के द्वारा उस अव्यक्त व अगोचर सत्ता की ओर संकेत दिया

'रवि ससि नखत दिपवि ओहि जोती, रतन पदारथ मानिक मोती।
ऊह जह विहसि सुभावहि इसी, तह-तह छिटकि जोति परगसी ।।'
'जेड़ बह पाई छांह अनूपा,
फिरि नहिं आइ सहे यह धूपा।'

कह कर उस विराट सत्ता को अनुपम छाया से युक्त बताया है।

सूफी मत के अनुसार गुरु का महत्व है, वह शिष्य के हृदय में उस परमात्मा के प्रति विरह की चिगारी को जलाता है। उस तक पहुंचने का मार्ग बतलाता है-

'को गुरु कगुवा होई सखि, मोहि लावै मग मांह।
तन मन धन बलि-बलि, करो जोर मिला नांह।'

जायसी ने अपने रहस्यवाद में आत्मा-परमात्मा के आध्यात्मिक मिलन का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है -

'जस किछु देई धरै आपन लेइ संभारि।
तस सिंगार सब लीन्सेहि मोहि केन्हेसि ठठियारि ।।'

2. साधनात्मक रहस्यवाद जायसी के पद्मावत में भावनात्मक रहस्यवाद के साथ-साथ यत्र-तत्र साधनात्मक रहस्यवाद की भी नियोजना हुई है। उनके हठयोगियों ने इगला, पिंगला, सुषन्ना आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करने के साथ शरीर रूपी किले में जो नौ द्वार आदि बताए हैं, वे जायसी की साधनात्मक रहस्यवाद में आस्था को अभिव्यंजित करते हैं। पद्मावत के 'पार्वती महेश खण्ड' में महादेव द्वारा सिंहलगढ़ का जो वर्णन किया गया है साधनात्मक रहस्यवाद से प्रभावित है

'नौ पोरों तेहि गढ़ मझियारा,
औ तह फिरहिं पांच कोट वारा।
दसवां दुआर सुपूत एक ताका,
अगम चढ़ाव पर सुठि बांका।'

जायसी ने इस साधनात्मक रहस्यवाद में सूफियों की चार दशाओं का भी अन्तर्भाव दिया है। ये चार दशाएं हैं 1. सरीयत 2. तरीकत 3. हकीकत 4. मारिफत इन दशाओं में शरीकत का अर्थ है धर्मानुकूल आचरण करना, तरीकत का अभिप्राय है-सांसारिक क्रियाओं से दूर होकर पावन हृदय से ईश्वर का चिन्तन करना। इसी प्रकार

हकीकत की दशा में साधक तत्व दृष्टि को प्राप्त करके त्रिकालज्ञ हो जाता है, जबकि मारिफत को अन्तिम सिद्धावस्था में बाधक प्रेम के माध्यम से ईश्वर में लीन हो जाता है।

3. अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद- जायसीकृत पद्मावत में यत्र-तत्र अभिव्यक्ति मूलक रहस्यवाद की भी व्यंजना हुई है। इस प्रकार के रहस्यवाद में अभिव्यक्ति का चमत्कार प्रधान तथा रहस्यवाद की भावना गौण होती है। अभिप्राय यह है कि साधारण से भाव को प्रकट करने के लिए भी कवि ऐसे प्रतीकों की योजना करता है कि पाठक का मन भाव या विचार की ओर न रहकर उस चमत्कारिक अर्थ की ओर आकर्षित हो जाता है। जायसी की यद्यपि चमत्कार प्रदर्शन की ओर अभिरुचि नहीं थी तथापि उन्होंने भी युग प्रभाव के कारण इस प्रकार की चमत्कारबाजी प्रदर्शित की है। उदाहरण के लिए 'रत्नसेन-पद्मावती' विवाह खण्ड में कवि ने अभिव्यक्तमूलक रहस्यवाद की शब्दावली का प्रयोग करते हुए नाद, मद और पेड़ शब्दों का प्रयोग किया है 'नाद जब हृदय में होता है तो काया में मद उत्पन्न हो जाता है, जहां मन है वहां पेड़ है, छाया नहीं है।' कहा जा सकता है कि जायसी ने इस प्रकार के उल्लेख सत्संगति द्वारा अर्जित ज्ञान के आधार पर किये हैं।

निष्कर्ष- अंततः कहा जा सकता है कि जायसी के रहस्यवाद में सूफी प्रेम तत्व एवं भारतीय ज्ञान का सुन्दर समन्वय हुआ है। डा. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने उचित ही कहा है कि- 'जायसी के रहस्यवाद में रहस्यात्मक अनुभूति का प्राधान्य है, उस अनुभूति के वर्णनों में भावुकता का प्राधान्य है। इसी से जायसी के रहस्यवाद का सरस एवं रोचक वर्णन मिलता है, उसमें भावात्मक वर्णनों की प्रचुरता दिखाई देती है, उसमें सरस एवं मधुर उक्तियों का बाहुल्य दिखाई देता है और उसमें संवेदनशीलता एवं सहानुभूति के साथ-साथ रमणीयता एवं रसमयता के दर्शन होते हैं।' ऐसी दशा में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह अभिमत पूर्णतः उचित प्रतीत होता है कि 'हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वितीय रहस्यवाद है तो जायसी में ही है।'

8.6 महाकाव्य की दृष्टि से 'पद्मावत' का महत्व

जायसी प्रणीत 'पद्मावत' मावन जीवन की विविधता से युक्त महाकाव्य है। साहित्य दर्पणकार के अनुसार महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक या लोक प्रसिद्ध हो जो नाटकियों से युक्त आठ से अधिक सर्गों में विभाजित हो तथा सर्गों में सानुबन्धता हो। नायक देवता या उत्तम वंश में उत्पन्न क्षत्रिय राजा हो सकता है, जो धीरोदात्त हो। रस की दृष्टि से श्रृंगार, शान्त अथवा वीर रस में से कोई एक रस प्रधान हो। लक्ष्य की दृष्टि से कथानक धर्म, काम, अर्थ अथवा मोक्षोन्मुख हो । इन प्रमुख लक्षणों के अतिरिक्त साहित्य दर्पणकार ने महाकाव्य की कुछ अन्य विशेषताएं भी बतलाई है जैसे -

1. प्रारम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार और कथावस्तु का निर्देश ।
2. कहीं खलों की निन्दा और कहीं सज्जनों की स्तुति ।
3. एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हो, किन्तु सर्गान्त के छन्द में भिन्नता हो, साथ ही एक सर्ग विभिन्न छन्दों वाला हो।

4.सर्गान्त में आगे की कथा की सूचना हो।

5. नामकरण कवि के नाम, नायक के नाम या उद्देश्य के अनुसार हो।

6. संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात, अंधकार, प्रदोष, दिन, प्रातः दोपहर, शिकार, पर्वत, मौसम, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, युद्ध, ब्याह, सन्तति, अभ्युदय आदि के वर्णन हों।

कथानक - 'पद्मावत' की मुख्य कथा रत्नसेन-पद्मावती की कथा है। इस कथा को पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। 'रत्नसेन-सन्तति खण्ड' तक की कथा पूर्वार्ध के अन्तर्गत है और 'राघव चेतन देश निकाला खण्ड' से 'सत्ती खण्ड' तक कथा का उत्तरार्ध है। इसका पूर्वार्ध जहां काल्पनिक है, वहां उत्तरार्ध ऐतिहासिक आधार पर स्थित है। इस प्रकार कथानक में कल्पना और इतिहास का

सुन्दर समन्वय हुआ है। मसनवी शैली में लिखा होने के कारण 'पद्मावत' में सर्ग बद्धता नहीं है, परन्तु कथावस्तु घटनाओं और वस्तु-वर्णनों के आधार पर 58 खण्डों में विभाजित है। प्रत्येक खण्ड न तो बहुत छोटा है और न बहुत बड़ा है। एकाध खण्ड अवश्य छोटे हो गये हैं, जैसे 'रत्नसेन-सन्तति-खण्ड' एक ही छन्द का है, परन्तु इससे कथा के प्रवाह में विराम नहीं पड़ता है। प्रत्येक खण्ड सानुबन्ध क्रम श्रृंखला में बंधा हुआ है। 'नागमती वियोग खण्ड' और 'सन्देश खण्ड' पाठकों को कथानक के बीच अधिक समय तक ठहरा लेते हैं। इनसे कथानक विराम अवश्य लेता है, परन्तु कथा की श्रृंखला टूटने नहीं पाती। ये स्थल इतने रसमय और मार्मिक है कि इनमें संकोच होने से 'पद्मावत' के काव्य तत्व को हानि पहुंचती है।

नायक - 'पद्मावत' का नायक रलसेन श्रेष्ठ क्षत्रिय कुलोद्भव है। उत्साह, शौर्य, पराक्रम, दया-दाक्षिण्य, स्वाभिमान आदि समस्त गुणों की दृष्टि से वह धीरोदात्त नायक है-

जंबूदीप चित्तउर देसा, चित्रसेन बड़ तहां नरेसा।'

रतन सेन यह ताकर बेटा, कुल चौहान जाइ नहिं मेटा।'

नायिका- नायिका पद्मावती अलौकिक सुन्दरी होने के साथ-साथ प्रेम, शौर्य, तेज, पति-परायणता, दया, क्षमा आदि उदात्त गुणों से सम्पन्न है। वह उच्च कुलोद्भव क्षत्रिय वंश की राजकुमारी है।

रस - रस की दृष्टि से श्रृंगार रस प्रधान है। श्रृंगार के साथ सहायक रूप में वीर, अद्भुत, शान्त आदि रसों का निरूपण हुआ है।

उद्देश्य- पद्मावत का उद्देश्य महान है। पद्मावती तथा नागमती के सती होने पर भौतिक प्रेम आध्यात्मिक प्रेम में परिणित हो जाता है। कवि भारतीय कथा के माध्यम से सूफी सिद्धान्तों का विवेचन करता हुआ प्रेम को सर्वोपरि सिद्ध करता है और आत्म बलिदान एवं अनन्य प्रेम के द्वारा ही अभीष्ट फल प्राप्ति की व्यंजना करता है। कथानक के बीच में आध्यात्मिक संकेत कथा-प्रवाह में बाधक बनते हैं,

परन्तु फिर भी सम्बन्ध निर्वाह में कवि को अद्भुत सफलता मिली है। 'पद्मावत का प्रधान फल मोक्ष है।'

काव्य और कथा-खण्डों का नामकरण - 'पद्मावत' का नामकरण नायिका पद्मावती के नाम पर है तथा कथानक खण्डों के नाम घटना एवं वस्तु वर्णन के आधार पर हैं। विस्तृत वर्णन महाकाव्य के अनुरूप ही 'पद्मावत' में व्यापक और विशाल वर्णन हैं। कथानक नगर, दुर्ग, समुद्र, युद्ध, संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, यात्रा, ऋतु, ब्याह, ज्यौनार, संयोग-वियोग आदि के उदात्त और विशाल वर्णन से युक्त है।

महाकाव्य की अन्य विशेषताएँ

उपर्युक्त प्रमुख विशेषताओं के साथ-साथ पद्मावत में महाकाव्य की अन्य विशेषताएं भी हैं। प्रारम्भ में ईश्वर आदि की स्तुति के रूप में मंगलाचरण है-

'सुमिरौं आदि एक करतारू, जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू।
कीन्हेसी प्रथम जोति परगासू, कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू।'

खल निन्दा तथा सज्जन-प्रशंसा का भी उल्लेख है। कथावस्तु का निर्देश भी स्तुत्ति-खण्ड के अन्तिम छन्द में दिया गया है-

'सिंहलद्वीप पद्मिनी रानी, रतनसेन चितउर गढ़ आनी।
अलाउद्दीन देहली सुलतानू, राघवचेतन कीन्ह बखानू।
सुना साहि गढ़ छेंका आई, हिन्दू तुरकन भई लराई।
आदि अन्त जस गाथा अहै, लिखि भाषा चौपाई कहै।'

डा. राजदेव सिंह और उषा जैन ने पद्मावत के काव्य रूप पर विचार करते हुए उसे 'रोमांस काव्य' माना है। उनके अनुसार 'पद्मावत' कथा काव्य है जिसे रोमांस

काव्य या प्रेमाख्यान काव्य भी कहते हैं। रोमांस काव्य में कवि का लक्ष्य किसी महान आदर्श की प्रतिष्ठा करने का नहीं रहता। वह सौन्दर्य, प्रेम और विरहजन्य अभिव्यक्ति को ही अपना सबसे बड़ा लक्ष्य मानता है। इस दृष्टि से वे सब आक्षेप निराधार सिद्ध हो जाते हैं जो कि महाकाव्य मानकर इस पर लगाए गए हैं। अतः 'पद्मावत' रोमांस काव्य है।

इन्होंने रोमांस काव्य के निम्न लक्षणों को आधार मानकर पद्मावत की परीक्षा की है-

1. रोमांस काव्य में आदर्श और उदात्त प्रेम व्यापारों की अधिकता तथा साहस, शौर्य एवं संघर्ष का मिश्रण होता है।
2. इसमें कल्पना और सम्भावना के द्वारा कथा को आगे बढ़ाया जाता है।
3. चमत्कारपूर्ण घटनाओं के द्वारा कथा का विकास होता है।
4. व्यक्तित्व की प्रधानता होती है।
5. आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति होती है।
6. सहज, दुर्लभ, असम्भव और अद्भुत कार्यों की प्रधानता होती है।

7.रोमांस काव्य के पात्र असाधारण होते हैं और उनका दर्शन विरल होता है।

8.इसमें क्रीड़ा, समारोह, रण-प्रयाण, श्मशान यात्रा के दृश्य, धार्मिक युद्ध इत्यादि का वर्णन होता है।

9. काव्य की आत्मानुभूति, कल्पना और आवेग का प्राधान्य होता है।
10. पहले रोमान्स काव्य गद्य और पद्म मिश्रित थे, लेकिन अब केवल पद्य बद्ध होते हैं।

अब इन समस्त लक्षणों के आधार पर 'पद्मावत' का परीक्षण करने पर हम पाते हैं कि रोमांचक कथा-आख्यायिका, रोमांचक महाकाव्य, रोमांस काव्य या कथा काव्य में मनोरंजन और रसात्मकता के साथ-साथ, भावुकता और कल्पना का प्राधान्य रहता है जबकि 'पद्मावत' में भावुकता और काल्पनिकता के साथ-साथ शास्त्रीय महाकाव्य की तरह बौद्धिकता, पांडित्य प्रदर्शन, रहस्यवाद और आध्यात्मिकता

की प्रवृत्ति भी है, अतः 'पद्मावत' रोमांस काव्य, कथा-काव्य, रोमांचक कथा, आख्यायिका या रोमांचक महाकाव्य नहीं है।

'पद्मावत' के सन्दर्भ में केवल यही कहा जा सकता है कि उसमें महाकाव्य के कतिपय परम्परागत लक्षण भले ही न मिलें, फिर भी वह हिन्दी के श्रेष्ठतम महाकाव्यों में से एक है। महाकाव्य की अमरता उसकी आन्तरिक प्राण शक्ति, सशक्त प्राणवत्ता और अनरुद्ध जीवनी शक्ति के कारण भी होती है। गम्भीर जीवन-दर्शन, महान उदार, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक प्रेम संदेश, लोक प्रवृत्तियों का अन्तः स्पन्दन, लोकभाषा का पूर्ण निखार, लोकमंगल की भावना, आध्यात्मिक साधन, मानवता ने 'पद्मावत' में एक महान जीवन-दर्शन और सशक्त प्राणवत्ता का उपस्थान किया है। अपने युग की साधना का शाश्वत अमर संदेश 'पद्मावत' में मूर्तिवान है।

8.7 जायसी के प्रकृति-चित्रण की विशेषताएँ

प्रकृति अनादिकाल से मानव की सहचरी रही है। मानव और प्रकृति का पुरातन संयोग है। दोनों ही सदा एक-दूसरे पर मुग्ध रहे है। कवियों की अनुभूतियाँ प्रकृति की गोद में पल्लवित एवं विकसित हुई हैं। प्रकृति ने कविता के श्रृंगार में सर्वाधिक योग प्रदान किया है। देश और काल के भेद से कवियों ने विविध रूपों में प्रकृति को निहारा है। प्रकृति ने जायसी पर भी अपना मनोमुग्धकारी प्रभाव डाला है। पद्मावत के अनेक सुंदर और हृदयग्राही स्थलों से उनके सूक्ष्म निरीक्षण और अनुभव शक्ति का पता चलता है। जायसी ने प्रकृति के क्रीड़ा-कलाप को भावपूर्ण दृष्टि से देखा है तथा प्रकृति के व्यापारों के साथ मानव व्यापारों का साम्य स्थापित करते हुए सूक्ष्म मनोभावों के सरस एवं सुंदर चित्र अंकित किए हैं। यही कारण है कि जायसी का 'पद्मावत' प्रकृति परी पर अंकित मानव-भावनाओं का आकर्षण चित्र है तथा

विभिन्न अलंकारों से सुसज्जित प्रकृति-वधू का श्रृंगार है। जायसी ने प्रकृति के कई रूपों को उभारा है।

(1) आलंबन रूप- प्रकृति के इस रूप चित्रण में कई शैलियाँ अपनायी गई हैं। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार एक तो कवि ने बिम्ब ग्रहण-प्रणाली के आधार पर रम्य एवं भयंकर रूप में चित्रित करते हुए प्रकृति के संश्लिष्ट एवं बिम्बग्राही चित्र प्रस्तुत किये हैं और दूसरी ओर नाम परिगणन प्रणाली को अपनाकर प्राकृतिक वस्तुओं के केवल नाम ही गिना दिये हैं।

(i) बिम्ब ग्रहण प्रणाली- इसके दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं। 'मानसरोदक' का वर्णन करते हुए कवि ने प्रकृति के रमणीक रूप की अत्यंत भव्य एवं आकर्षक झाँकी प्रस्तुत की है-

मान सरोदक बरनौ काहा। भवा समुद अस अति अवगाह।
पानी मोति असि निरमल तास् । अमृत आनि कपूर सुवास ।।
लंकदीप कै सिला अनाई। बाँधा सरवर घाट बनाई ॥
खंड खंड सीढ़ी भई गरेरी। उतरहिं चढ़हिं लोग चहुँ फेरी ॥
फूला कवल रहा होइ राता। सहस-सहस पखुरिन कर छाता ।।

इसी के साथ कवि ने प्रकृति के भयानक रूप की झाँकी अंकित करते हुए 'किलकिला' समुद्र का वर्णन करते हुए कहा कि जिसकी गगनचुंबी लहरों को देखते ही धैर्य जाता रहता है और जो भूमि से आकाश तक लहरों के रूप में खड़ा-सा प्रतीत होता है-

पुनि किलकिला समुद महें आए। गा धीरज देखत डर खाए ।
भा किलकिल अस उठै हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा ।।
उठे लहरि परवत कै नाई। फिर आवै जोजन सौ ताई ॥
धरती लेई सरग लहिं बाढ़ा। सकल समुद्र जानहुँ भा ठाढ़ा ।।

(ii) नाम परिगणन शैली- इस प्रणाली का अनुसरण करते हुए जायसी ने सिहलद्वीप के उन समस्त वृक्षों के नाम गिना डाले हैं जो वहाँ के उपवनों में विद्यमान हैं।

आंव अति सघन सोहाये। औ जस फरे अधिक सिर नाये ।।
कटहर डार पींडसन पाके। बड़हर सो अनूप अति ताके ।।
खिरनी पाकि खाँड अस मीठी। जामुन पाकि भंवर अति डीठी ।।
नारिअर फरे फरहरी। फुरै जानु इन्द्रासन बुरी ।।
लवंग सुपारी जायफल, सब फर फरे अपूर ।।
आस-पास घन इमली, और घन तार खजूर ।।

(2) उद्दीपन रूप- इस रूप में प्रकृति के सुखदायी और दुखदायी दोनों रूपों का चित्रण हुआ है। रत्नसेन और पद्मावती के मिलनकाल में प्रकृति, दोनों के हृदय सुखद भावनाओं का संचार करती दिखाई देती है

पद्मावती चाहत ऋतु पाई। गगन सोहावन भूमि सौहाई।
चमकि बीजु बरसै जल सीना। दादुर मोर सबड़ सुठि लोना ।।
रंग राती पीतम संगी जागी। गरजै गगन चौंकि गर लागी ।।
सीतल बूँद ऊंच चौवारा। हरिअर जब देखहिं संसारा ।।

वहीं यही प्रकृति वियोग काल में पीड़ादायक भी है। विरह-व्यथित नागमती के मन में प्रकृत्ति सुखद भावों को उद्दीप्त करती हुई उसे पीड़ा प्रदान कर रही है-

खड़ग बीज चमकें चहुँ ओरा। बुंदबान बरसहिं घन घोरा ।।
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारू मदन हौं घेरी ।।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ ॥

(3) **रहस्यात्मक रूप-** इस शैली में जायसी ने प्रकृति के कण-कण में अपने प्रियतम की छाया देखी है। स्थान-स्थान पर वे लौकिक सौंदर्य द्वारा अनंत सौंदर्य का संकेत देते हैं। यथा-

(i) रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती ॥

(ii) नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन ज्योति नग हीर ।।

अपने इस आध्यात्मिक संकेतों में कवि इतना सिद्धहस्त है कि वह सारी प्रकृति को सजीव चित्रित करता है। पद्मावती जब नहाने जाती है तो सरोवर भी उसके रूप पर मुग्ध हो जाता है-

सरवर रूप विमोहा, हिऐ हिलोरई लेई।
पाँव छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरेहि देई ।।

(4) **प्रतीकात्मक रूप-** इस शैली में कवि प्रकृति की कुछ विशेष वस्तुओं को प्रतीक रूप में ग्रहण करता है। जायसी ने भी इस शैली को अपनाया है और इससे कथा भाग भी स्पष्ट हो गया है तथा उन प्रतीकों के माध्यम से अपने आशय को भी स्पष्ट कर दिया है। श्पद्मावतश् में सूरज, चाँद, कँवल, भँवरा आदि प्रतीकों को आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना के लिए बार-बार प्रयोग किया है। यथा-

कँवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गयउ सुखाई ॥
अबहु बेलि फिर पलुहैं जो पीउ सींचे आइ ।।

(5) **मानवीकरण रूप-** कवि ने प्रकृति के मानवीकरण रूप की झाँकी भी अंकित की है। जायसी का मान सरोवर एक व्यक्ति की भाँति चेष्टा करता दिखाई देता है। भा

निरमल तिन्ह पायन्ह परसे, कहकर पद्मावती के चरण स्पर्श द्वारा पवित्र होते हुए दिखाया गया है तथा 'भा सीतल गै तपनि बुझाई' कहकर पद्मावती के शरीर की मधुर एवं शीतल गंध का स्पर्श करते ही उसकी सभी प्रकार की तपन शांत होने लगती है तथा वह शीतलता का अनुभव करने लगता है-भी अंकित है। इस प्रकार मान सरोवर को मानवों की तरह चेष्टाएं करते हुए दिखाकर कवि ने प्रकृति के मानवीकरण रूप की चर्चा की है।

(6) वातावरण निर्माण- जायसी ने प्रकृति को वातावरण निर्माण के लिए भी प्रयोग किया है। जिस समय राजा रत्नसेन साधना-पथ के सभी विनों को पार करके सिद्धि प्राप्ति के निकट जा पहुँचते हैं, उस समय उस वातावरण की सृष्टि करने के लिए कवि ने सातवें समुद्र 'मानसर' का वर्णन किया है, जिसमें पहुँचते ही सभी प्रसन्न एवं हर्ष से परिपूर्ण हो जाते हैं उनका यह उल्लास सरोवर में विद्यमान पुरइन की भाँति छा जाता है। अज्ञान की रात्रि व्यतीत हो जाती है और प्रभात होते ही ज्ञान का आलोक चारों ओर फैल जाता है-

देखि मानसर रूप सुहावा। हिय हुलास पुरइन होई छावा ।।
गा अंधियार रैनि-मसि छूटी। भा भिनसार किरनी रवि फूटी ॥

(7) संवेदनात्मक रूप- जायसी ने प्रकृति को इस रूप में भी प्रयोग किया है। प्रकृति वियोगिनी नागमती के प्रति संवेदना भी प्रकट करती है। एक पक्षी वियोगिनी नागमती के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए, नागमती से उसकी विरह-व्यथा के बारे में पूछता है-

तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी।
केहि दुख रैन न लावसि आँखी ।।

पक्षी वियोगिनी नागमती की व्यथा सुनकर उसके विरह जन्य दुःख को दूर करने के लिए उसका संदेश सिंहलद्वीप तक ले जाने को तैयार हो जाता है।

(8) संदेशवाहक रूप- जायसी ने प्रकृति को इस रूप में भी चित्रित किया है। एक पक्षी नागमती का संदेश लेकर सिहलद्वीप जाता है, उसका संदेश पाकर राजा रत्नसेन चित्तौड लौटने पर विवश हो जाता है-

लेई सो संदेस विहंगम चला।
उठी आगि सगरौं सिंघला ।।

(9) आलंकारिक रूप- अलंकारों की गहरी भावात्मक व्यंजना हेतु प्रकृति का प्रयोग करते हुए कवि ने प्रकृति के अनेक सादृश्यों को अपनाया है। रूप-वर्णन हो या विरह-वर्णन-जायसी ने सभी स्थलों पर एक-से-एक सुंदर एवं मौलिक उपनामों की सृष्टि की है-

(i) **बरनौ माँग सीस उपराहीं। सेंदुर अबहि चढ़ा तेहि नाहीं ॥**
बिनु सेंदुर जानहु दिया। उजियर पंथ रैन महंकिया ।।

(ii) **कित कर मुँह नैन भये, जीनु हरा जेहि बाट**
सूखा नीर बिछोह जिमी दराकि गएउ हिए फाट ।।

इस प्रकार के अनेक चमत्कारपूर्ण कल्पना प्रसूत वर्णन जायसी में मिलेंगे। दरअसल उपमान रूप में जायसी के पद्मावत में प्रकृति-वर्णन बहुत अधिक मात्रा में मिल जाता है। यह भी माना जाता है कि कदाचित सारे हिन्दी काव्य में प्रकृति की इतनी खोज किसी कवि ने की हो। जब वे समासोक्ति का सहारा लेते हैं तो छोटे-छोटे इंगित में आध्यात्म संबंधी बड़ी-बड़ी बातें कह जाते हैं

जेड़ वह पाई छाँह अनूपा। फिरि निहिं आइ सहै वह धूपा ।।
अस अमराउ सघन घन, बरनि न पादौ अंत ।।

फूलै फलै छहौ ऋतु, जानहु सदा बसंत ।।

उपसंहार- यद्यपि जायसी ने प्रकृति के चित्रण की सभी शैलियों को अपनाया है, पर वे प्रकृति का भव्य-रूप उपस्थित नहीं कर सके। वे अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण के प्रतीकों में खोये रहे या मनुष्य के सुख-दुःख के रंगों में ही उसको देखा। प्रकृति का स्वतंत्र मनोमुग्धकारी स्वरूप उनकी आंखों से ओझल रहा। किन्तु यह सब होते हुए भी, उनकी काव्यानुभूति पर कोई आंच नहीं आती है। प्रकृति के माध्यम से अपने प्रियतम की जो छवि प्रस्तुत की है, वह अद्वितीय है। उसके साथ-साथ रागात्मक वृत्ति के सुख-दुःख की जो वैविध्यपूर्ण अभिव्यंजना वे कर पाये हैं, उससे उनके सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण एवं सहृदयता का पता लगता है। प्रेम और प्रकृति को एक रंग में रंग कर जायसी ने अपने काव्य में अद्भुत आकर्षण उत्पन्न कर दिया है।- डॉ. देवीशरण रस्तोगी

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार सबसे अधिक कवि का ध्यान षट्-ऋतु वर्णन एवं बारहमासों के वर्णन की ओर गया है। वे ऋतु-वर्णन मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति के आलंबन रूप में अंकित होने के कारण अत्यंत सरस एवं प्रभावोत्पादक हैं। इनमें कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के साथ-साथ परिवर्तनों की जानकारी भी विद्यमान है। इसलिए कवि ने ग्रीष्म काल में सूखे हुए तालाबों की दरारों को वर्षा का पहला जल कैसे मिलाकर एक कर देता है। इसका बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है-

सरवर-हिया घटत निति जाई।
टूक-टूक होइ कै बिहराई।
विहरत हिया करहु पिउ टेका।
दीठि दवँगरा मेखहु एका।

कवि ने प्रकृति में ऐसी विराट सत्ता के दर्शन किए हैं। जिसके उदर में संपूर्ण विश्व समाया हुआ है तथा जो अनंत सौंदर्य के साथ प्रकृति के कण-कण में विद्यमान है।

8.8 जायसी के 'पद्मावत' में सौन्दर्य वर्णन

जायसी प्रेममार्गी सूफी कवि थे। प्रेम का आधार ही सौंदर्य है। निर्गुण संतों ने भी उसे तेज पुंज कहा है और सगुण कवियों ने तो अपने आराध्य के रूप-सौंदर्य के विलक्षण चित्रण किए हैं। साथ ही 'पद्मावती' का रूप सौंदर्य भी विलक्षण था-यह ऐतिहासिक सत्य है। अतः जायसी ने अपने प्रेमी कवि रूप और पद्मावत की नायिका के विलक्षण रूप की रक्षार्थ जी खोलकर रूप का चित्रण किया है।

पद्मावत के रूप-वर्णन संबंधी स्थल 'पद्मावत' मूलतः प्रेम-प्रधान काव्य है और इसलिए उसमें सौंदर्य-वर्णन बड़े मनोयोग के साथ उपस्थित किया गया है। ऐसे प्रमुख स्थल हैं-'सिंहलद्वीप वर्णन खंड' का पनिहारी वर्णन तथा वेश्या वर्णन, 'मानसरोदक खंड' का पद्मावती वर्णन, 'नख-शिख खंड' का पद्मावती-वर्णन, 'पद्मावती रत्नसेन भेंट खंड' का पद्मावती-श्रृंगार वर्णन, 'नागमती-पद्मावती विवाह खंड' में नागमती पद्मावती वर्णन, 'स्त्री-भेद वर्णन खंड' में स्त्री सौंदर्य वर्णन, 'पद्मावती रूप-चर्चा खंड' में पद्मावती वर्णन, 'चित्तौड़गढ़ वर्णन खंड' में पद्मावती वर्णन ।

पद्मावती के रूप-वर्णन की प्रधानता इन सभी स्थलों का अवलोकन करने के बाद यह स्पष्ट हो सकेगा कि सबसे अधिक विस्तार के साथ जायसी ने पद्मावती के रूप का वर्णन किया है। यह स्वाभाविक भी था ? सूफी धर्म प्रेम प्रधान है और डॉ. शंभुनाथ सिंह की मान्यता है, प्रेम वहीं होगा जहाँ रूप होगा। जायसी ने 'पद्मावत' में पद्मावती के सौंदर्य का जो इतने अधिक विस्तार के साथ तथा मनोयोग के साथ वर्णन किया है, उसका मुख्य रहस्य यही है। साथ ही जायसी ने लौकिक प्रेम की व्यंजना के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना करते हुए पद्मावती को जिस अलौकिक सत्ता के रूप में देखा है, उसका भी प्रभाव जायसी के सौंदर्य वर्णन पर है। यह तथ्य भी विशेष उल्लेखनीय है कि पद्मावती का सौंदर्य लौकिक और अलौकिक

दोनों है। 'नख-शिख वर्णन' में जहाँ यह पूर्णतः लौकिक रहा है, वहीं मानसरोदक खंड में उसकी आभा कण-कण में व्याप्त दिखाकर जायसी ने उसे अलौकिकता प्रदान कर दी है-जहाँ प्रकृति के तत्व भी उसके रूप पर आसक्त हो उठे हैं-

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइन होई छावा। गा अंधियार रैन मसि छूटि। भा भिनसार किरन रवि फूटी ॥

1. जायसी का प्रसिद्ध महाकाव्य.....है।
2. पद्मावत मैं सिंहलद्वीप .....का प्रतीक है।
3. जायसी के सौंदर्य वर्णन में पद्मावत.....का चित्रण मिलता है।

8.9 सार संक्षेप

इस इकाई में हम जायसी के पद्मावत में लोक पक्ष का पर्याप्त अध्ययन किया । जायसी के बिरहा वर्णन की विशेषताएं एवं विरह वर्णन के प्रकार पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अंतर्गत हम पद्मावत के महत्व महाकाव्य की दृष्टि ,उसकी विशेषताएं जायसी के प्रकृति चित्रण ,विशेषताएं एवं पद्मावत के सौंदर्य वर्णन को भी भली भांति समझ सकेंगे।

8.10 मुख्य शब्द

हिया - हृदय

बिछोह - वियोग

बाउर - बावला

8.11 स्व-प्रति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. पद्मावत
2. हृदय
3. नख शिख

8.12 संदर्भ सूची

1. देवी, ड. सुमित्रा. (2022). *मलिक मुहम्मद जायसी का साहित्यिक योगदान*. साहित्य भवन.
2. **कपूर, श्याम चंद्र.** (2020). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. लोकभारती प्रकाशन
3. **राय, बाबू गुलाब.** (2020). *हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास*. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल.
4. . यादव, ड. रामनिवास. (2021). *मलिक मुहम्मद जायसी की काव्यकृतियाँ*. हिंदी प्रकाशन मंडल.
5. **सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद.** (2022). *हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि*. श्री विनोद पुस्तक मंदिर.

8.13 अभ्यास प्रश्न

1. जायसी के पद्मावत के सौंदर्य वर्णन को बताइए।
2. महाकाव्य की दृष्टि से पद्मावत का महत्व लिखिए।
3. जायसी की रहस्य भावना के स्वरूप को समझाइए।
4. जायसी के विरह वर्णन की विशेषताएं लिखिए।

इकाई - 9

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 हिन्दी साहित्य के आदिकाल की परिस्थितियों का संक्षिप्त परिचय

9.4 हिन्दी के आदिकाल के विभिन्न नाम और आचार्यों के मत

9.5 आदिकालीन साहित्य का वर्गीकरण और विशेषतायें

9.6 सिद्ध साहित्य का संक्षेप में परिचय एवं प्रमुख विशेषतायें

9.7 नाथपंथी काव्य का संक्षिप्त परिचय एवं प्रमुख विशेषतायें

9.8 रासो काव्य परम्परा और उसमें पृथ्वीराज रासो का स्थान

9.9 आदिकाल के प्रमुख रचनाकार और उनकी विशेषताएं

9.10 सार संक्षेप

9.11 मुख्य शब्द

9.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.13 संदर्भ सूची

9.14 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल प्रारंभिक काल है। युग की परिस्थितियों की दृष्टि से इस काल में प्रमुख रूप से रासो साहित्य की

रचना हुई । आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियां में रासो साहित्य की प्रवृत्तियों की मानी जा सकती है आदिकालीन साहित्य में जैन साहित्य वस्तुतः अपभ्रंश भाषा में लिखा गया है, अतःइसे हम आधारभूत सामग्री के रूप में हम ग्रहण कर सकेंगे रासो ग्रंथों में भी बहुत सारे ग्रंथ कालांतर में परिवर्तित एवं परिवर्धित हुए तथापि उनका मूल रूप आदिकाल में ही रचा गया। अतः रासो साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को ही आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियां कहना समीचीन प्रतीत होता है इस काल में हम नाथ साहित्य एवं जैन साहित्य के बारे में हम अवगत हो सकेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिंदी साहित्य के इतिहास के आदिकाल की प्रवृत्तियों को समझ पाएंगे।
- आदिकाल की साहित्य परंपरा से अवगत हो पाएंगे।
- आदिकाल की सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के विषय में अपना ज्ञानवर्धन कर सकेंगे।
- सिद्ध साहित्य की विशेषताओं से अवगत हो पाएंगे।
- नाथ साहित्य के विषय में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।

9.3 हिन्दी साहित्य के आदिकाल की परिस्थितियों का संक्षिप्त परिचय

आदिकाल की पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियां

किसी भी युग का साहित्यकार अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। उन परिस्थितियों का समन्वित प्रभाव परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप से उसके मानस में पूंजीभूत होता है, जो कालांतर में उसके काव्य ग्रंथों में प्रस्फुटित होता है। इसी कारण साहित्य को समाज का दर्पण या प्रतिबिम्ब कहा गया है। साहित्य लोक चेतना का उद्घाटन करता है। इस तरह वीरगाथाकालीन परिस्थितियों का आकलन जरूरी है।

(1)राजनीतिक परिस्थितियां- राजनीतिक दृष्टि से यह युग सामंतवादी था, जिसमें भारत का अखंडत्व छिन्न-भिन्न हो गया था और अनेक राजपूत वंशों ने अपने स्वतंत्र राज्यों की स्थापना कर ली थी। इनमें चंदेल, कलचुरि, प्रतिहार, परमार और चौहान राजवंश प्रमुख थे। राजपूतों के खंड राज्य परस्पर ईर्ष्या एवं द्वेष से अभिभूत थे, जिनमें देश भक्ति का सर्वथा अभाव था। वे संगठित होकर विदेशी आक्रामकों का सामना नहीं करते थे। अपने रक्त का अभिमान उनमें इतना प्रबल था कि प्रत्येक राजवंश, दूसरे को अपने से हीन समझता था। आभिजात्य की यह भावना ही कभी-कभी युद्ध का आह्वान करती थी। वंशगत अभिमान के अतिरिक्त उन्हें शौर्य प्रदर्शन का भी व्यसन था। इतिहास साक्षी है कि उस समय कुछ युद्ध शक्ति प्रदर्शन मात्र के लिए ही हुए थे। राजकुमारियों के स्वयंवर तक कभी-कभी रक्त में आरंजित हो जाते थे। शक्ति या शौर्य का जितना अपव्यय इस युग में हुआ, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। दुःख का विषय यह है कि इन राजपूत नरेशों ने शक्तिशाली होते हुए भी संगठित होकर मुसलमान आक्रमणकारियों का कभी सामना नहीं किया। महमूद गजनवी ने एक-एक करके सभी राजपूत नरेशों को पराजित किया, भारत की संपत्ति को लूटा, सोमनाथ के मंदिर को नष्ट किया और वहां की संपत्ति को ऊंटो पर लादकर गजनी ले

गया। मुहम्मद गौरी ने इन वंशों को और जर्जर कर दिया। जयचंद ने स्वयं मुहम्मद गौरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था। तराइन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की पराजय हुई और इस प्रकार हिन्दू राज्य का अंतिम आशा दीप भी बुझ गया।

(2) सामाजिक परिस्थितियां- इस समय सामाजिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी। आए

दिन विदेशियों के आक्रमणों से लोक-जीवन एवं लोक-संपत्ति अरक्षित थी। वर्ण-व्यवस्था शिथिल होती जा रही थी। ब्राह्मणों का सम्मान गिरता जा रहा था और युद्ध प्रिय क्षत्रियों का उत्कर्ष हो रहा था। अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों का लोकमानस पर अखंड साम्राज्य था। राष्ट्रीयता का अभाव था। राजपूत नरेश तथा दरबारी विलासप्रिय जीवन व्यतीत करते थे।

(3) धार्मिक परिस्थितियां- इस समय भारत में जैन, बौद्ध तथा बाह्मण धर्म का प्रचार था।

सम्राट हर्षवर्धन के अनंतर बौद्ध तथा जैन धर्मों का हास हो रहा था। हिंसा प्रिय राजपूत नरेशों की छत्रछाया में ब्राह्मण धर्म का उत्कर्ष हो रहा था, जिसमें क्षत्रियों को मृगया की स्वीकृति थी और युद्ध क्षात्र धर्म समझा जाता था। ब्राह्मण धर्म, शैव, वैष्णव तथा शाक्त तीन भागों में विभाजित था। उक्त तीनों संप्रदायों में पशु-बलि, योग तथा तांत्रिकता के लिए अवकाश था। शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य ने पुनः वैदिक धर्म के उत्थान के लिए प्रयास किया था। संक्षेप में इस काल की धार्मिक स्थिति भी शोचनीय थी।

(4) साहित्यिक परिस्थितियां- इस युग के अधिकांश कवि चारण थे, जिन्हें राज्याश्रय प्राप्त था। वे राजपूत नरेशों के दरबारी कवि थे और अपने-अपने आश्रयदाताओं का यशगान करते थे। यही उनका कवि कर्म था। उनकी

रचनाएं वीररसपरक होने के साथ ही श्रृंगारपरक भी होती थी। युद्ध काल में तथा युद्ध से पूर्व वे अपनी वीररस प्रसविनी लेखनी द्वारा सैनिकों के रक्त में शौर्य एवं साहस का संचार करते थे। कभी-कभी तो ये चारण कवि युद्धों में अपनी तलवार का चमत्कार तक दिखाते थे। मृत्यु के समय ये कवि अपने काव्य ग्रंथों को पैतृक संपत्ति के रूप में अपनी संतति को सौंप जाते थे जो बाद में उनमें परिवर्द्धन करते रहते थे। साहित्य सृजन एक व्यवसाय था। इनका काव्य राष्ट्रीय कम तथा वैयक्तिक अधिक था। लोक चेतना की इन्होंने उपेक्षा की थी। संक्षेप में, आदिकाल का साहित्य एकांगी तथा संकीर्ण था।

आदिकाल में दो प्रकार के काव्य ग्रंथ मिलते हैं-अपभ्रंश के ग्रंथ तथा देश भाषा ग्रंथ। अपभ्रंश या प्राकृत भाषा यद्यपि उस समय जनभाषा तो नहीं थी, किन्तु कवियों की काव्य भाषा अवश्य थी। पंडित रामचंद्र शुक्ल ने इन ग्रंथों को उपदेशपरक होने के कारण साहित्य ग्रंथों की कोटि में स्वीकार नहीं किया। सिद्ध साहित्य तथा नाथ साहित्य इसी भाषा के अंतर्गत है। इन काव्य ग्रंथों का हिन्दी साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। बाद के भक्तिकालीन कवि कबीर पर भी नाथ संप्रदाय का स्पष्ट प्रभाव था। अतः साहित्यिक परिस्थितियों के संदर्भ में उक्त दोनों संप्रदायों की चचां कर देना भी समीचीन था।

(5) आर्थिक परिस्थिति- तत्कालीन समाज स्पष्टतः दो वर्गों में बंटा था-उच्च और निम्न या शासक तथा शासित उच्च शासक वर्ग सर्वसाधन संपन्न था और साथ ही साथ आर्थिक शोषणकर्ता भी। दूसरी ओर जन-सामान्य की स्थिति दयनीय थी। वह दोशीय और विदेशी दोनों ही प्रकार के अत्याचारों की शिकार थी, दोनों ही ओर से पीसी जाने वाली राजनैतिक और धार्मिक

दोनों ही ओर से उसका निर्वाध शोषण किया जाता था जिसका एक परिणाम उसका मन ही मन विद्रोही बनने लगना भी था।

(6) **सांस्कृतिक परिस्थिति-** विवेचन्य गुण को एक उच्च तथा परिपक्व संस्कृति विरासत में मिली थी। उसी का अनुकरण इस युग में भी किया गया। इस समय की सुंदर स्थापत्य कला, संगीत प्रेम और अजंता एलौरा वाला कला प्रेम आदि इसी उच्च संस्कृति की देन थे। दूसरी ओर, इस्लाम प्रवेश के साथ-साथ इस्लामी संस्कृति का भी भारत में प्रवेश हुआ था।

9.4 हिन्दी के आदिकाल के विभिन्न नाम और आचार्यों के मत

1. 'उस समय जो भाट, चारण किसी राजा के पराक्रम, विजय, शत्रु-कन्या हरण आदि का अत्युक्तिपूर्ण आलाप करता या रण क्षेत्रों में जाकर वीरों के हृदय में उत्साह की उमंगें भरता था, वही सम्मान पाता था। इस समय तो वीरगाथाओं की उन्नति सम्भव थी। जैसे यूरोप वीरगाथाओं का प्रसंग युद्ध और प्रेम रहा, वैसे यहां भी था।' आचार्य शुक्ल
2. 'इस युग के अन्तर्गत उन्होंने जिन रचनाओं को स्थान दिया है उनमें अधिकांश सोलहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक में रचित हैं और जो रचनाएं इस काल की सीमा में आती हैं, उनमें किसी का भी रचयिता कोई चारण नहीं है। डा. गणपति चन्द्र गुप्त

आदिकाल के विभिन्न नाम

हिन्दी साहित्य का आरम्भिक काल जिसे विद्वानों ने आदिकाल, वीरगाथा काल, चारणकाल, रासोकाल, अपभ्रंशकाल आदि अनेक नामों ने सम्बोधित किया है हिन्दी का सर्वाधिक विवादग्रस्त काल है। अतएव इसके नामकरण के प्रसंग में विचार अपेक्षित हैं।

मिश्र बन्धुओं एंव आचार्य शुक्ल के मत- सर्वप्रथम मिश्र बन्धुओं ने इस पर विचार किया और इसे 'आदिकाल' के नाम से अभिहित किया। तदुपरान्त वीरगाथों की प्रधानता देखकर आचार्य शुक्ल ने इसे वीरगाथा काल कहा।
शुक्लजी के इस नामकरण के सन्दर्भ में तीन बातें विशेष उल्लेखनीय हैं-
(क) प्रथमतः उन्होंने इस काल में वीरगाथात्मक रचनाओं की प्रधानता मानी है।
(ख) नाथ-पंथी, योगियों व सिद्धों की कृतियों को उन्होंने शुद्ध साहित्य में स्थान नहीं दिया।
(ग) जैनों द्वारा रचित साहित्य को मार्मिक साहित्य कहकर उसे रचनात्मक साहित्य की सीमा से निकाल दिया।
1. **आचार्य शुक्ल के मत की समीक्षा-** शुक्ल जी के मतानुसार इस युग में दो प्रकार की रचनायें उपलब्ध होती हैं। प्रथम अपभ्रंश की और द्वितीय देश भाषा की। अपभ्रंश की केवल चार रचनायें उपलब्ध हैं। ये है 'विजयपाल रासो', हम्मीर रासो, कीर्तिपताका व कौतिलता, देश की आठ साहित्यिक रचनायें यथा खुमान रासो, पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, जयचन्द प्रकाश, जयमयंक जसचन्द्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियां और विद्यापति पदावली मानी जाती हैं। इस युग को वीरगाथाकाल कहना ही समीचीन है। किन्तु वास्तविकता इससे परे है। क्योंकि खुमान रासो और परमाल रासो को परवर्ती युग की रचना सिद्ध किया जा चुका है और पृथ्वीराज रासो अर्धप्रमाणिक रचना माना जाता है। इतना ही नहीं, विजयपाल रासो तथा

हम्मीर रासो की प्रमाणिकता भी संदिग्ध ही है। खुसरों की पहेलियां में वीरगाथात्मक कोई प्रवृत्ति परिलक्षित नहीं होती। शेष रही विद्यापति की पदावली जिसकी भावभूमि रसराज श्रृंगार से अनुप्राणित है, उसमें राधाकृष्ण के श्रृंगारी चित्र ही अंकित हैं। अतएव आचार्य शुक्ल ने जिन कृतियों के आधार पर इसे वीरगाथाकाल कहना उपयुक्त समझा था, उन कृतियों की प्रामाणिकता के अभाव में उनके द्वारा प्रतिपादित नामकरण भी वास्तविकता से परे प्रतीत होता है।

2. **डा. रामकुमार वर्मा का अभिमत एवं उसकी समीक्षा-** शुक्लजी ने इस साक्ष्य पर कि वीरगाथाओं के प्रणेता राज्याश्रित चारण थे, इस युग को चारणकाल कहना अधिक उपयुक्त माना है। डा. वर्मा के मत का खण्डन करते हुए डा. गणपतिचन्द्र गुप्त लिखते हैं कि इस युग के अन्तर्गत उन्होंने (वर्मा जी) जिन रचनाओं को स्थान दिया है उनमें से अधिकांश सोलहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक में रचित हैं और जो रचनायें इस काल की सीमा में आती हैं उनमें किसी का भी रचयिता कोई चारण नहीं है। इस प्रकार डा. गुप्त के अनुसार इस काल का नाम चारण काल असंगत प्रतीत होता है। चारण काल की ही भांति इसे रासोकाल कहना भी अनुपयुक्त होता है क्योंकि प्रथमतः एक तो रासो ग्रन्थ संख्या में भी अल्प ही हैं, फिर रासो कहने से केवल एक विशेष प्रकार की रचनाओं का ही वोध होता है अन्य कृतियां छूट जाती हैं।

3. **आचार्य महावीर प्रदास द्विवेदी का मत और उसकी समीक्षा-** द्विवेदीजी ने इस काल को बीजवपन काल की संज्ञा से विभूषित किया है। वास्तव में यह नाम भी उचित नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि इस काल में अपने पूर्ववर्ती साहित्य की प्रायः सभी काव्य रूढ़ियों का सफल निर्वाह हुआ है और साथ ही कुछ नवीन साहित्यक पद्धतियों का भी विकास हुआ है। अतएव इस काल के साहित्य पर 'Literature in fancy' की उक्ति चरितार्थ नहीं होती।

4. **राहुल सांस्कृत्यायन का मत और उसकी समीक्षा-** सांस्कृत्यायन जी ने इस काल को सिद्ध सामन्त काल कहा है, क्योंकि उन्होंने इस काल के साहित्य में केवल सामन्तों की स्तुति तथा सिद्धों की वाणी नामक मात्र दो प्रवृत्तियां ही प्रमुख मानी हैं। लेकिन ज्ञातव्य है कि इस काल विशेष में सिद्धों के अतिरिक्त जैन कवियों ने भी महत्वपूर्ण रचनायें प्रस्तुत की हैं। व्यापकता एवं प्रभाव की दृष्टि से जैन कवियों का यह साहित्य कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि इस काल को 'सिद्ध सामन्त' युग कहना उचित नहीं है।

5. **डा. हजारी प्रसाद का मत** इस काल के नामकरण के सन्दर्भ में डा. द्विवेदी का मत सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। उन्होनें मिश्र बन्धुओं द्वारा रखा गया नाम 'आदिकाल' ही स्वीकार किया है। 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' तथा 'हिन्दी साहित्य' नामक अपनी दोनों कृतियों में वे इसे 'आदिकाल' ही स्वीकारते हैं। 'आदिकाल' स्वीकार कर लेने के उपरान्त भी वे इस नाम से पूर्णतः सन्तुष्ट प्रतीत नहीं होते। वे स्पष्ट लिखते हैं कि 'वस्तुतः हिन्दी का आदिकाल. एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम मनोभावनापन्न, परम्परा विनिर्युक्ति, काव्य रूढ़ियों के अछूते साहित्य का काल है, यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परम्परा प्रेमी रूढ़िग्रस्त, सजग और सचेत कवियों का काल है।'

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य काल के नामकरण के सम्बन्ध में पर्याप्त मतान्तर है। किसी एक सर्वमान्य नामकरण के लिए पर्याप्त

अनुसंधान अपेक्षित है, किन्तु जब तक एक सन्तोषजनक नाम पर न पहुँचा जाय तब तक के लिए आदिकाल नाम ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

9.5 आदिकालीन साहित्य का वर्गीकरण और विशेषतायें

आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियों का लेखा-जोखा करने के लिए निम्नलिखित रचनाओं को आधार बनाया जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने जिन बारह पुस्तकों को आधार बनाया था, उनमें अपभ्रंश की रचनायें भी सम्मिलित थी 1. पृथ्वीराज रासो 2. परमाल रासो या आल्हा खण्ड 3. विद्यापति पदावली 4. कीर्तिकला 5. कीर्तिपताका 6. सन्देश रासक 7. पउम चरित्र 8. भविष्यत्त कथा 9. परमात्मा प्रकाश 10. बौद्ध गान और दोहा 11. स्वयंभू छंद 12. प्राकृत पैंगलम्

इन रचनाओं से आदिकालीन साहित्य की मुख्य पांच प्रवृत्तियां स्पष्ट होती हैं-

1. सिद्ध साहित्य 2. नाथ साहित्य 3. जैन साहित्य 4. वीर गाथा साहित्य 5. भक्ति श्रृंगार तथा अन्य भाव सम्बन्धी रचनाएँ।

सिद्ध साहित्य और उसकी विशेषताएं

वैदिक धर्म के कर्म-काण्ड और बाह्याचारो के विरोध में बौद्ध धर्म का उदय हुआ था। कालांतर में स्वयं बौद्ध मत उन अनेक बुराइयों और विवाद का शिकार हो गया, जिनके विरुद्ध इसने मोर्चा लिया था। ईसा की प्रथम शताब्दी में बौद्ध धर्म हीनयान और महायान दो शाखाओं में बंट गया। हीनयान बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के प्रति आस्थावान रहा, जबकि महायान व्यवहार पक्ष को महत्व देने लगा। हीनयान में केवल विरक्तों और

सन्यासियों को ही आश्रय दिया गया और महायान गृहस्थों, सन्यासियों, छोटे-बड़े सबको मोक्ष दिलाने का दावा करने लगा। बौद्ध धर्म अपनी चरम उन्नति के शिखर से गिरने लगा। गुप्त सम्राटों ने हिन्दू धर्म में अपनी आस्था व्यक्त करके बौद्ध धर्म को धक्का पहुंचाया। रही-सही शक्ति को कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य ने नष्ट कर दिया। यह धर्म भारत से निर्वासित हो गया। इसे तिब्बत, नेपाल और जापान में ही शरण मिल सकी। शंकर के शैव मत से प्रभावित होकर इस धर्म ने जनता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए तंत्र-मंत्र और अभिचार का मार्ग अपनाया। कर्मकाण्डों का विरोधी धर्म स्वयं समाधि, मन्त्र-तन्त्र, डाकिनी-शाकिनी, भैरवी चक्र, मद्य-मैथुन में उलझ गया और सदाचार से हाथ धो बैठा। नास्तिक धर्म ने बुद्ध की भगवान रूप से पूजा प्रारम्भ कर दी। इस धर्म में निवृत्ति का स्थान प्रवृत्ति ने ले लिया तथा संयम के स्थान पर सुख प्राप्ति लक्ष्य बन गया। महायान शाखा मंत्रयान में बदल गई ।

तथा मंत्रयान से वज्रयान और सहजयान का प्रादुर्भाव हुआ। वज्रयान और सहजयान में पाण्डित्य का कोई स्थान नहीं रहा। डा. रामकुमार वर्मा का मत है 'बाद में जब मंत्रयान में मद्य और मैथुन का प्रवेश हुआ तो वही वज्रयान में परिवर्तित होता है। इस प्रकार वज्रयान में मंत्रयान के मंत्र और हठयोग के साथ मद्य और मैथुन को जोड़ दिया गया और महायान अपने 800 वर्ष के जीवन क्रम से वज्रयान होकर सदाचार से हाथ धो बैठा।'

सिद्ध साहित्य को तीन भागों में बांटा जा सकता है 1. नीति या आचार सम्बन्धी रचनाएं 2. उपदेशपरक रचनाएं 3. साधन सम्बन्धी या रहस्यवादी रचनाएं।

नीति या आचार

रागदेश मोह लाईऊ छार।
परम मोख लवए मुक्तिहार ।।
उपदेश भाव न होई अभावण जाड़।
अइस संबोहे को पति आइ ?
साधना जहि मन पवन न संचरङ्ग,
रवि ससि नाहिं प्रवेश।
तहि घट चित्त विसाम कर, सहरे कहिऊ उवेस।

सिद्ध साहित्य की विशेषताएँ -

सिद्ध साहित्य के अनुशीलन से उसकी निम्नलिखित विशेषताएं परिलक्षित होती हैं-

1. तान्त्रिक साधना में सिद्धान्त पक्ष के स्थान पर आचरण पक्ष पर अधिक बल दिया गया है।
2. इन सम्प्रदायों में देवता, मन्त्र व तत्व निरूपण शब्दावली भिन्न है, किन्तु सब की साधना पद्धति समान है।
3. इस साधना पद्धति में शिव और शक्ति की मिथुनरत युगबद्धता की स्वीकृति है, ये गुह्याचारों पर विश्वास करते हैं।
4. उपनिषदों में ब्रह्मानन्द को सहवास सुख से सौ गुना कहा गया है जबकि सिद्धों ने उसे सहवास के सुख के समान बताया है।
5. इन सम्प्रदायों में योग साधना पर बल दिया गया है। ब्रह्माण्ड में जो शिव और शक्ति है वही शरीर में सहस्त्रधार कुंडलिनी है।
6. इन्होंने ब्राह्मण धर्म तथा वैदिक धर्म का खण्डन किया है।
7. तंत्र-मंत्र के द्वारा ये चमत्कार उत्पन्न करके लोगों को प्रभावित करना चाहते थे।

8. ये सिद्ध मृत्यु पर्यन्त मोक्ष प्राप्त करने की अपेक्षा जीवन में सिद्धियां प्राप्त करना श्रेयस्कर समझते थे :

9. इन सम्प्रदायों में जाति पांति और वर्ण भेद का विरोध किया गया है।

नाथ साहित्य और उसकी विशेषताएं

नाथ सम्प्रदाय का विकास बौद्धों की वज्रयान-सहजयान शाखा से ही हुआ है। स्वयं गोरखनाथ को चौरासी सिद्धों में गोरक्षपा नाम से स्थान दिया गया है। सिद्धों की परंपरा से हटकर गोरखनाथ ने स्वतंत्र नाथ पंथ का प्रचार प्रसार किया। वज्रयान की अश्लीलता तथा वीभत्स विधानों से दूर रहने वाले हिन्दू योगियों ने नाथ पंथ का प्रवर्तन किया। नाथ पंथ शैवमत का पोषक है। यह पंथ सिद्धो और संतों के बीच की कड़ी है। सिद्धों के मार्ग पर तो ये लोग चले नहीं किन्तु उसमें पर्याप्त संशोधन करके नाथों ने अपनाया, जिससे संतों के लिए राजमार्ग तैयार हो गया है। नाथ सम्प्रदाय पर कौल सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा है, कौलों की अष्टांग योग पद्धति के ये विरोधी रहे हैं। सिद्धों का प्रभाव भारत के पूर्वी भाग पर था किन्तु नाथों का प्रभाव क्षेत्र भारत का पश्चिमी भाग- राजस्थान, पंजाब रहा है।

नाथ पंथ के अनुयायी सैद्धान्तिक रूप से शैवमत के अनुयायी थे और व्यवहार में हठयोग से प्रभावित । इनकी ईश्वर सम्बन्धी भावना शून्यवाद में है जो वज्रयान से ली गई है। कबीर इसी शून्य को सहज, सुन्न, सहस्त्रदल आदि नामों से पुकारते थे। नाथों ने निवृत्ति पर अधिक बल दिया था। वैराग्य को ही ये मुक्ति का साधन मानते थे। वैराग्य गुरु द्वारा ही प्राप्त होता है अतः इस सम्प्रदाय में गुरु का बहुत महत्व है। इनके आध्यात्मिक संकेत रहस्यात्मक शैली में हैं। उलट बांसियों, प्रतीकों और रूपकों में नाथों ने अपने

रहस्य संकेत दिये हैं जिन्हें समझना सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन है। इन्द्रिय विग्रह की साधना के लिए गोरखनाथ तथा अन्य नाथों ने नारी से दूर रहने का उपदेश दिया है। कबीर का नारी निन्दा प्रकरण इन्हीं नाथों की प्रभावी देन है। इन्द्रिय निग्रह से आगे प्राण साधना और उससे भी आगे मनः साधना इनका लक्ष्य था। बाह्य जगत से खीचकर मन को अन्तर्जगत की ओर प्रवृत्त करना ही मनः साधन है। इसके लिए नाथों ने कुछ साधन बताए हैं, जैसे नाड़ी-साधन, कुण्डलिनी, इंगला पिंगला और सुषम्ना को जगाना, षटचक्र, सूरत योग, अनहद नाद आदि। शिव और शक्ति को मूल तत्व मानकर नाथों ने ब्रह्मचार के आडम्बरों का खण्डन किया है।

जैन साहित्य और उसकी विशेषताएं

भगवान बुद्ध ने जिस प्रकार बौद्ध धर्म का प्रवर्तन किया था उसी प्रकार भगवान महावीर ने जैन धर्म का प्रवर्तन कर प्रचार किया था। जैन धर्म हिन्दू धर्म के समीप है। जैन धर्म के अनुसार ईश्वर का अस्तित्व तो है किन्तु वह सृष्टि का नियामक नही है। मनुष्य अपने कर्मों से ही साधना द्वारा स्वयं परमात्मा बन सकता है। इस धर्म ने जीवन के प्रति आस्था और दृढ़ता का भाव जगाया। अहिंसा, करुणा, दया, त्याग, तपस्या का प्रचार प्रसार किया। उपवास, व्रत तथा कृच्छ साधना पर अधिक बल दिया गया है। कर्मकाण्डों से परे जाति वर्ण भेद से परे सबको मुक्ति का अधिकार प्राप्त करने का संदेश जैन धर्म देता है। यों तो उत्तर भारत में जैन धर्म के अनुयायी सर्वत्र ही हैं किन्तु आठवीं से तेरहवीं शती तक गुजरात में जैन धर्म का व्यापक प्रभाव था। जैन मुनियों ने अपभ्रंश में अपनी रचनाएं लिखी थी जो अधिकतर धार्मिक है। अहिंसा, कष्ट-सहिष्णुता, विरक्ति और सदाचार इनका कथ्य है। कुछ गृहस्थ जैन कवियों ने व्याकरण आदि ग्रन्थों की

रचना की जिनमें साहित्यिक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। हिन्दू पुराणों और महाकाव्यों के नायक राम-कृष्ण को अपने सिद्धान्तों के अनुरूप बनाकर इन जैन कवियों ने प्रस्तुत किया है। लोक प्रचलित विश्वासों और आख्यानों को भी जैन धर्म के रंग में रंगकर इन कवियों ने प्रस्तुत किया है। ये जैन कवि सामान्यतः उच्च वर्ग के थे अतः इनमें किसी वर्ग के प्रति कटुता का भाव नहीं है। जैन कवियों में स्वयंभू बहुत प्रसिद्ध हैं जिन्होंने पउम चरिउ (पदम-चरित्र) यानी राम कथा का सृजन किया। पुष्पदन्त ने नागकुमार चरित्र तथा यशोधर चरित्र की रचना की। धनपाल ने भविष्यत कथा, रामसिंह ने पाहुड दोहा, हेमचन्द्र ने शब्दानुशासन आदि ग्रन्थों की रचना करके आदिकाल की साहित्य सम्पन्नता में वृद्धि की।

वीरगाथात्मक साहित्य और उसकी विशेषताएं

यह काल भारतीय इतिहास में युद्ध और अशांति का काल था। राजनीतिक दृष्टि से पतनोन्मुख सामाजिक रूप से दीन-हीन तथा धार्मिक दृष्टि से अवनति का काल था। सिद्ध नाथ और जैन कवियों की धार्मिक आध्यात्मिक रचनाओं के साथ राजस्थान में चारण-कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता का गुणगान करने के लिए वीरगाथाओं की रचना की। यह समय भी ऐसा था, जिनमें वीरगाथाएं ही जन-रुचि तथा देश की पृष्ठभूमि के अनुकूल प्रश्रय पा सकती थीं। किसी राजकन्या के सौन्दर्य का समाचार पाकर सैन्य आक्रमण द्वारा सुन्दरी का अपहरण करना, रक्तपात करना और फिर विजित वस्तु की तरह सौन्दर्य का उपभोग करना यही वीरगाथाओं का कथ्य श्रृंगार रहा है। श्रृंगार के लिए वीर भाव की सृष्टि इन काव्यों में हैं। एक ओर विदेशी आक्रमणोंप्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य

तथा उसका इतिहास के कारण राजनीतिक युद्ध होते थे तो दूसरी ओर प्रेम श्रृंगार के लिए कल्पित गाथाएँ भी इस काल के कवि गढ़ते थे।

ये वीर गाथाएं दो रूपों में मिलती है, प्रबंध रूप में और वीर गीतों के रूप में। खुमान रासो (दलपत्ति विजयकृत), पृथ्वीराज रासो (चन्दबरदाई कृत), हम्मीर रासो (शीरगंधर कृत), जयचन्द्र प्रकाश (भट्ट केदार कृत), जयमयंक जस चन्द्रिका (मधुकर कवि कृत), आदि प्रबंध रूप में हैं तथा आल्हा खण्ड या परमाल रासो (जागनिक कृत), वीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह कृत) वीर गीतों से युक्त मुक्तक रूप में हैं।

9.6 सिद्ध साहित्य का संक्षेप में परिचय एवं प्रमुख विशेषतायें

सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है। उनमें से कुछ तो सहजयानी और कुछ वज्रयानी थे। सहजयान का प्रवर्तन बौद्ध धर्म (वज्रयान) में प्रचलित बाह्याचार के विरुद्ध जन्म लेने वाली प्रतिक्रिया की देन था। जीवन के सहज रूप को स्वीकार करने के कारण सहजयान में जीवन के भोग के लिए बहुत स्थान सुरक्षित था। वज्रयानियों ने भोग की इस प्रवृत्ति को घोर श्रृंगारिकता के समीप ला खड़ा किया था। हर्ष का विषय है कि हिन्दी काव्य वज्रयानी घोर श्रृंगारिकता से बच निकला। यह सहजयान से भी प्रभावित हुआ। सहजयान की प्रमुख धारणाएं चार थीं-

(1) चित्तशुद्धि तथा आत्मनिग्रह में अटूट आस्था ।

(2) रहस्यवाद ।

(3) पूरी अक्खड़ता के साथ अन्य संप्रदायों का खण्डन-मण्डन ।

(4) सर्व प्रकार के बाह्याडम्बर का कट्टर विरोध ।

राहुल जी ने अपनी 'हिन्दी काव्यधारा' में इन सिद्धों की रचनाओं को प्रकाशित करके हिन्दी के विद्वानों का ध्यान इनकी ओर आकर्षित किया। इनमें सबसे पहला कवि सरहपा है। (जिनका ससेजव्रह नाम भी है।) राहुल

जी के अनुसार इनका काल सं. 817 है। राहुल जी ने इन सिद्धों की भाषा को लोक भाषा के अधिक समीप देखकर इसे हिन्दी का प्राचीन रूप माना। इसी आधार पर काशीप्रसाद जायसवाल ने सिद्ध सरहपा को हिन्दी का प्रथम कवि मान लिया। डॉ. जयकिशन प्रसाद के अनुसार प्रमुख सिद्ध नाथ है- सरहपा, सबरवा, भूसुकया, लुइया, विरुपा, डोंबिया, दारिकया, गुण्डरीपा, गोरसपा, टेण्टणवा, महीपा, भादेवा, तिलोमा, शान्तिवा, कुवुरिया, कमरिया, कण्हपा ।

सिद्ध साहित्य की प्रवृत्तियाँ

इन रचनाओं को देखने से पता चलता है कि इनकी शैली उलटबाँसी शैली है। ऊपर से इन रचनाओं का बड़ा कुत्सित अर्थ निकलता है किन्तु संप्रदाय के जानकार उसके मूल एवं साधनात्मक अर्थ को समझने में समर्थ हो सकते हैं। डॉ. जयकिशन प्रसाद ने इन प्रवृत्तियों का उल्लेख निम्न प्रकार किया है-

(1) बाह्याचार खण्डन- इन्होंने बाह्याचार का खण्डन करते हुए चित्तशुद्धि तथा आत्मनिग्रह में अटूट आस्था प्रकट की। अतः साधना पर जोर देते हुए पण्डितों को फटकारते हुए शास्त्रीय (परंपरा) मार्ग का खण्डन किया है-

जहणग्गाविअ होई मुत्ति, ता सुणह सियालह। अर्थात् नग्न रहने से मुक्ति मिल जाती तो कुत्ते और स्यार भी मोक्ष (मुक्ति) के अधिकारी बन गये होते ।

(2) **वाममार्ग का उपदेश-** इनमें वाममार्गी प्रवृत्तियाँ प्रमुख थीं। अतः इन्होंने उनका डटकर प्रचार किया है-

नाद न बिन्दु न रवि न शशि मण्डल।
चिअराअ सहाबे मूलक ।

अजु रे अजु जाई मा लेहु रे बंक।
निअहि वोहि मा जहु रे लंक ॥

(3) **दान परोपकार-** इन्होंने आचरण की महत्ता पर बल देते हुए दान-पुण्य और परोपकार की महत्ता को भी स्पष्ट किया है-

जो अत्थी अण ठीअद, सो जइ णाइ निरास।
खण उस रीव भिक्खवरु, ऽ छा (1) जहु रे गिहवास ।।
पर उआरण कीअउ, अत्थिण, दीअउ दाण।
रहु संसारे कवण फलु, वरु छडुहुँ अप्पाण ।।

(यदि अर्धी जन निराश चला गया तो ऐसे गृहवास से टूटा मृत्पात्र ले भीख माँगना अच्छा । दान और परोपकार के बिना इस संसार में रहने का क्या फल ? उससे तो जीवन छोड़ देना अच्छा ।)

(4) **संधा भाषा या संधावचन-**डॉ. जयकिशन प्रसाद के अनुसार- "रहस्यमार्गियों की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार ये सिद्ध लोग अपनी बानी को पहेली या उलटबाँसी के रूप में रखते थे और उनका सांकेतिक अर्थ भी बताया करते थे। इनकी
शैली पद-शैली थी।"

(5) **तांत्रिक साधना-** सिद्धों ने वामाचार का प्रतिपादन करते हुए योग-तंत्र की साधना में मद्य तथा स्त्रियों के अबाध सेवन का भी महत्व प्रतिपादित किया है-

गंगा जउंना माझे रे बहई नाई।

तहि बुडिलि मातेगि पोइआ लीले पार करेउ।

(6) **अंतर्मुखी साधना-** इन कवियों ने अंतर्मुखी साधना पर विशेष बल दिया है। विरुपा की ये पंक्तियाँ इसी प्रकार की हैं। पर यह साधना वारुणी-प्रेरित थी-

सहजे थिर करि वारुणी साधा। जे अजरामर होइ दिट काँधा। दशमि दुआरत चिह्न रेखइया। आइल गराहक अपणे बहिआ। चउशाडि धड़िइ देर पसारा। पइठल गराइक नाहि निसारा।

सिद्ध साहित्य का परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत और डॉ. देवीशरण रस्तोगी के अनुसार यह प्रभाव इस प्रकार है-

(1) इन्होंने बाह्याचार का खण्डन किया था। इसका प्रभाव संत-काव्य पर पड़ा। जहाँ सरहपा कहते हैं-जहणग्गा विअ होइ मुत्ति, ता सुणह सियालह (यदि नग्न रहने से मुक्ति मिल जाती
तो कुत्ते और स्यार कभी के अधिकारी बन गये होते) और कबीर कहते हैं-

मूँड़ मुँड़ाये हरि मिलै, तो सब कोई लेय मुड़ाइ ।
बार-बार के पूँड़ते, भेड़ के बैकुण्ड जाइ ।।

(2) कोरा शास्त्र ज्ञान उनके अनुसार मरुस्थल है। सरहपा ने शास्वार्थ को मरुस्थल माना

बहुसात्थात्थ मरुत्थालिहिं, तिसिअ मरिब्बो तेहिं ।

कबीर ने पोथी-ज्ञान, वाद-विवाद को हेय माना है-

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोइ।
ढाई अक्षर प्रे म का, पढ़ें सो पंडित होइ ।।

(3) परोपकार दान की महत्ता- सरहपा ने कहा है- "यदि अर्थी जन निराश चला गया तो ऐसे गृहवास से टूटा मृत्यांत्र ले भीख मांगना अच्छा। दान और पर-उपकार के बिना इस संसार में रहने का क्या फल ? कबीर कहते हैं-
जालौं इहै बडपणां, सरलै पेडि खजूरि । पंखी छां न बीसवै, फल लागै ते दूरि ।।
(कबीर)

(4) सिद्धों की सहजावस्था के बहुत से तत्व और पारिभाषिक शब्द जैसे नाद, बिन्दु, सुरति, निरति, सहज, शून्य, संत काव्यधारा में आये।

(5) परकीया की भावना- सिद्धों ने परकीया भावना को महत्व दिया। घर में वैसी आकर्षित होती ही थीं-जैसी कि कृष्ण की ओर गोपियाँ होती थीं-

राग देस मोह लाइअ छार।
परम मोख लवए मुक्तिहार।
मरिअ सासु नणंद घरेशाली ।
माअ मारिआ, कणई, भइअक बाली ।।

यह प्रभाव रीतिकालीन कवियों पर लक्षित होता है।

(6) युगनद्ध भावना- इसका अर्थ है स्त्री-पुरुष का आलिगनबद्ध जोड़ा।

कण्हपा का वचन है-"जिमि लौण बिलिजड़ पाणि एहि तिमि धरणी लई चित्त।" इसका प्रभाव विद्यापत्ति आदि श्रृंगारी कवियों पर पड़ा।

(7) हठयोग साधना- इन सिद्धों में हठयोग साधना अत्यंत विकृत रूप में पायी जाती है। इसका प्रभाव भी निर्गुण कवियों पर है।

(8) शैली- सिद्धों की चर्या पदों की पद-शैली का प्रभाव भी हिन्दी के संत कवियों के 'सबद' पर पड़ा। शैली के अतिरिक्त वस्तु और विषय प्रतिपादन के दृष्टिकोण से भी सिद्धों के चर्या पदों और कबीर आदि के पदों में अद्भुत साम्य है। सिद्धों ने चर्या पदों में सांप्रदायिक साधना को अभिव्यक्ति दी। कबीर आदि ने भी योग-साधना को 'सबद' में अभिव्यक्ति प्रदान की है।

(9) भाषागत साम्य- सिद्धों ने पूर्वी मिश्रित भाषा का प्रयोग चर्या गीतों में और खड़ी बोली के समान अक्खड़ अपभ्रंश भाषा का प्रयोग दोहों में किया। यह भाषागत विभेद निर्गुण संत काव्य में भी दृष्टिगत होता है।

9.7 नाथपंथी काव्य का संक्षिप्त परिचय एवं प्रमुख विशेषतायें

सिद्धों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप नाथपंथी काव्य के रूप में एक ऐसी योग-मार्गी धारा का विकास हुआ जो वाममार्गी भोग-प्रधान सिद्धों की योग साधना के विरोध में उठ खड़ी हुई। इसका प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ को माना जाता है। इन्होंने पतंजलि के उच्च लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति को विशेष महत्व प्रदान किया। उनके समय के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान इन्हें 10वीं तथा अन्य 13वीं शताब्दी का मानते हैं। आचार्य शुक्ल की मान्यता है कि, "पृथ्वीराज के समय के आस-पास ही विशेषतः कुछ पीछे, गोरखनाथ के होने का अनुमान दृढ़ होता है।" डॉ. हजारी

प्रसाद द्विवेदी का कथन है है कि 10वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कश्मीरी आचार्य अभिनव गुप्त ने अपने 'तंत्रलोक' में मच्छेय विभु या मत्स्येन्द्रनाथ की वंदना की है। इससे सिद्ध होता है कि मत्स्येन्द्रनाथ 10वीं शताब्दी से पूर्व अवतरित हुए थे। तिब्बती परंपरा के साथ तथ्य को मिलाकर देखें तो यह समय 9वीं शताब्दी के आरंभ में पड़ता है। गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे, इसलिए उनका समय भी इसी के आस-पास पड़ता है।

नाथों की संख्या और रचनाएं आचार्य शुक्ल के अनुसार इनकी संख्या नौ है, जो इस प्रकार है-नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चंद्र, सत्यनाथ, भीमनाथ गोरखनाथ, चर्पट, जलंधर और मल्यार्जुन।

नाथपंथ में गोरखनाथ को ही अन्यतम माना जाता है। उन्होंने लगभग 40 ग्रंथों की रचना की है। परंतु डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल ने 14 ग्रंथों को स्वीकार किया है, इस प्रकार हैं-सबदी, पद, सिष्यादरसन, प्राण संकली, नरवै बोध, आत्मबोध, अमैमात्र जोग, पंद्रह तिथि, सप्तवार, मछीन्द्र-गोरख बोध, रोमावली, ग्यानतिलक, ज्ञान चौंतीसा, पंचमात्रा ।

इन ग्रंथों में गुरु महिमा, वैराग्य, इन्द्रिय निग्रह, प्राण साधना विषयों का विवेचन मिलता है। डॉ. राजनाथ शर्मा उनका साहित्य की दृष्टि से कोई मूल्य स्वीकार नहीं करते। आचार्य शुक्ल भी इन्हें साहित्य की श्रेणी में स्वीकार नहीं करते "उनकी रचनाओं का जीवन की स्वाभाविक सरणियों, अनुभूतियों और दशाओं से कोई संबंध नहीं। वे सांप्रदायिक शिक्षा मात्र है, अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकती। इन रचनाओं की परंपरा को हम काव्य या साहित्य की कोई धारा नहीं कह सकते।"

नाथ साहित्य की कतिपय विशेषताएं

(1) **बाह्याचार का खंडन-** इनके बाह्याचार खण्डन की एक विशेषता यह भी है कि यह अपनी हास्य-व्यंग्यात्मक पकड़ रखने के कारण बेजोड़ हैं।
गोरखनाथ की वाणी है-

दूधाधारी पर धरि चित्त, नागा लकड़ी चाहे नित्त।
मौनी कसै मयंत्र की आस, बिनु गुर गुदड़ी नहीं बेसास ।।

अर्थात् दुग्धाहारी का मन सदा दूसरों के घर में पड़ा रहता है। सोचता रहता है कि अमुक के घर से दूध आ जाता तो अच्छा रहता या अमुक के घर से दूध आ ही रहा है। शरीर गर्म रखने के लिए नागा को लकड़ियों की चिता करनी पड़ती है और मौनी को ऐसे साथी की आवश्यकता पड़ती है जो उसके स्थान पर बोलकर मार्ग दिखा सकें
(2)**दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन-** नाथों ने पुस्तक- ज्ञान की भर्त्सना की है। ब्रह्म तत्व को उन्होंने द्वैताद्वैत विलक्षण के रूप में स्वीकार किया है और माया के दो रूप स्वीकार किए है-विद्या (मोक्षदायक रूप) और अविद्या (बंधनकारक रूप)-

वसति न सून्यं सून्यं न वसति, अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिखर में बालक बोलें, ताका नाव धरउगे कैसा ।।

(गोरखनाथ)
(3) **साधना पद्धति-** इनकी साधना पद्धति कुण्डलिनी योग की है। इनके अनुसार गगन-मंडल में औंधे मुँह का अमृत कुंड है। उस कुंड के अमृत का भोगी बन जाने पर व्यक्ति अजर-अमर हो जाता है। इस अमृत का अधिकारी बनने के लिए व्यक्ति को तीन साधनाएं करनी पड़ती है-इन्द्रिय, निग्रह, प्राण साधना और मन साधना। गोरख के अनुसार-

गगन मण्डल में औधा कुआं, तहँ अमृत का वासा ।

सगुरा होय से झरझर पिया, निगुरा जाहि पियासा ।।

प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास

(4) **सहज भावना**- इन्होंने आचरण की पवित्रता, गर्वहीनता, सहज जीवन पद्धति पर बल

दिया है। ये ही मानव के कल्याण के साधन हैं। गोरखनाथ कहते हैं-

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चलिबा, धोरे धरिबा पाँव।

गरब न करिबा, सहजै रहिबा, भणत गोरख राँव ।।

(5) **वेदशास्त्र का पठन निरर्थक-** आचार्य शुक्लानुसार नाथ संप्रदाय के सिद्धांत ग्रंथों में वेदशास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराकर विद्वानों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गयी है-

योगशास्त्र पठेन्नित्यं किमन्यैः शास्त्रं विस्तरैः ।

(6) **तीर्थाटन का विरोध-** यह भावना सिद्धों में भी थी और नाथों के माध्यम से यह भावना निर्गुण संतों तक पहुँची है-

प्रतरन्नपि गंगायां नैव श्वा शुद्धि मर्हति।

तस्माद्धर्मधियां पुंसां तीर्थस्नानं तु निष्फलम् ।।

(7) **अंतः साधना पर बल-** सिद्धों की भाँति इन्होंने भी अंतः साधना पर बल दिया है। अंतः साधना के वर्णन में हृदय को दर्पण कहा गया है, जिसमें आत्मा के स्वरूप का प्रतिबिम्ब पड़ता है

हृदयं दर्पणं यस्य मनस्तत्र विलोकयेत् ।

दृश्यते प्रतिबिम्बेन आत्मरूपं सुनिश्चितम् ।।

(8) **भाषा और अभिव्यक्ति**- आचार्य शुक्ल के अनुसार "उनकी भाषा देशभाषा मिश्रित अर्थात अपंभ्रंश अर्थात् पुरानी हिन्दी है है। उन्होंने भरसक उसी सर्वमान्य व्यापक काव्य-भाषा में लिखा है जो उस समय गुजरात, राजपूताना, बजमंडल से लेकर बिहार तक लिखने-पढ़ने की सिद्ध भाषा थी।" इसमें कुछ पूर्वी प्रयोग (भडले, बूडिलि) भी मिलते हैं, पर उनकी उपदेश की भाषा पुरानी टकसाली हिन्दी है।

नाथ साहित्य का परवर्ती काव्य पर प्रभाव

डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार "नाथपंथी साहित्य का महत्व इस दृष्टि से स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उसने हिन्दी के परवर्ती संत-काव्य को गहरे रूप से प्रभावित किया था। इस नाथपंथी साहित्य में जहाँ एक ओर उलटबासियों की शैली में रहस्यात्मक साधना की व्यंजना पाई जाती है, वहाँ जनता की बोली में धार्मिक पाखंड, जाति-प्रथा, मूर्तिपूजा आदि का तीखा खंडन भी मिलता है। ये हठ योग की साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध कर शून्य में समाधि लगा, ब्रह्म का साक्षात्कार किया करते थे। कबीर आदि संत कवियों में हमें जो रहस्यात्मकता, रूढ़ियों का खंडन और हठयोग साधना से संबंधित उक्तियाँ मिलती हैं, उन पर इन नाथपंथी साधन कवियों का ही प्रभाव रहा है।"

सहज स्थिति भी इनमें पायी जाती है। हिन्दी के संत कवियों ने 'सहज' का कितना अधिक प्रयोग किया और वह उनकी चेतना में कितनी दूर तक घर किये हुए हैं, इसका अनुमान उनकी बानियों के 'सहज कौ अंग' अंश के आधार पर भली-भाँति लगाया जा सकता है।

डॉ. त्रिगुणायत ने नाथ-पंथियों के प्रभाव को (कबीर की विचारधारा) संत कवियों पर चार रूप में दर्शाया है-स्वरूप, दार्शनिक सिद्धांत, साधना पद्धति और भाषा अभिव्यक्ति ।

जहाँ तक स्वरूप का प्रश्न है-कबीर आदि के कितने ही पदों तथा साखियों में योगी का जो स्वरूप वर्णित है, वह नाथ-योगियों का ही रूप है-

मन में आसण मन में रहना, मन का जप-तप-मनसू कहना।
मन में खपरा मन में सींगी, अनहद नाद बजावै रंगी ॥

दार्शनिक सिद्धांत की स्थिति में भी कबीर आदि उनसे प्रभावित हैं।

गोरख ने कहा है-

वसति न सून्यं सून्यं न वसति, अगम अगोचर ऐसा। गगन शिखर में बालक बोलै, ताका नाव धरउगे कैसा ।।

तो कबीर कहते है-

सरीर सरोवर भीतर, आछे कमल अनूप। परम ज्योति पुरुषोत्तम, जाके देह न रूप ।।

साधना पद्धति के क्षेत्र में साम्य इस प्रकार देखा जा सकता है-

(1)

गगन मण्डल में औधा कुआं, तहँ अमृत का वासा।
सगुरा होय सो झरझरा पिया, निगुरा जाहि पियासा ।।

(गोरख)

(2)

आकते से मुख औधा कुआं, पाताले पनिहारि। ताका पाणी को हंसा पियै, बिरला आदि विचारि ॥

(कबीर)

उपसंहार- इस काव्य का भले ही शुक्ल जी ने साहित्यिक महत्व स्वीकार न किया हो, परंतु उसने संत काव्य को प्रभावित किया है। सच तो यह है कि संत कवियों ने जिस विचारधारा तथा काव्य-रचना को अपनाया, वह आदि-काल के बौद्ध सिद्धों तथा नाथों की परंपरा का ही विकसित रूप था। आचार्य शुक्ल भी इस प्रभाव को इस रूप में स्वीकार करते हैं-"कबीर आदि संतों को नाथपंथियों से जिस प्रकार 'साखी' और 'बानी' शब्द मिले, उसी प्रकार साखी और बानी के लिए बहुत सामग्री और सधुक्कड़ी भाषा भी।" यह तथ्य हिन्दी काव्य के विकास-क्रम में इनको ऐतिहासिक महत्व प्रदान करता है।

9.8 रासो काव्य परम्परा और उसमें पृथ्वीराज रासो का स्थान

साहित्य का निर्माण परम्पराओं से होता है। कोई भी कवि किसी न किसी परम्परा का सहारा लेकर काव्य रचना में प्रवृत्त होता है। हिन्दी साहित्य में प्रत्येक युग किसी न किसी परम्परा का सहारा लेकर निर्मित हुआ है। रासो काव्य परम्परा भी इसका अपवाद नहीं है। रासो की परम्परायें हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल से प्रारम्भ हुई और निरन्तर निर्बाध रूप से विकसित होती रहीं। इस परम्परा के बीच-बीच में कतिपय परिवर्तन भी हुए किन्तु वे परिवर्तन ऐसे नहीं थे जिन्हें मौलिक
और विशिष्ट परिवर्तन कहा जा सके।

हिन्दी परम्परा के आदि कवि कवि चन्द्र बरदाई का जन्म हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण घटना है। उनके आविर्भाव का समय न केवल संघर्षमय था, बल्कि भारी उथल-पुथल और परिवर्तनों का भी समय था। चन्द्र बरदाई हिन्दी की परम्परा के आदि कवि और अपभ्रंश परम्परा के अंतिम कवि थे। रासो का विकास अपभ्रंश परम्परा में हुआ और उसकी परम्परा आधुनिक

युग तक बराबर चली आ रही है। हिन्दी को जो रासो परम्परा प्राप्त हुई, वह गुजराती से आई है। रासो परम्परा में

प्रथम रासो ग्रन्थ संदेश रासक है, जिसकी रचना अब्दुल रहमान ने की बताई है।

सन्देश रासक रासो साहित्य के शोधकर्ताओं और प्राचीन साहित्य के समीक्षको की

धारणा रही है कि रासो परम्परा का श्री गणेश अब्दुल रहमान की कृति से हुआ है। विद्वानों की मान्यता है कि रासो परम्परा में प्रथम प्रामाणिक कृति सन्देश रासक ही है। राहुल सांस्कृत्यायन ने इसका रचना काल वि. 11 वीं शताब्दी माना है। मुनि जिन विजय के अनुसार इसकी रचना 12 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 13 वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में स्वीकार की. है। इस ग्रन्थ की कहानी बड़ी

सरस और मार्मिक है। इसमें प्रोषितपतिका नायिका के विरह का मार्मिक वर्णन मिलता है। इसकी नायिका पथिक के माध्यम से अपने पति के पास प्रेम संदेश भेजती है। सन्देश रासक का ऋतु वर्णन बड़ा ही मार्मिक है।

मंजु रास- डा. विपिन बिहारी त्रिवेदी की मान्यता है कि संदेश रासक के पूर्व मंजुरास नामक ग्रन्थ मिलता है। इसमें मालवा के शासक मंजु और कर्नाटक के तैलप की बहिन मृणालवती के प्रेम का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ के कतिपय छन्द 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' और मेरूतुंग के प्रबंध चितामणि में भी प्राप्त होते हैं।

भरतेश्वर बाहुबली रास - शालिभद्र द्वारा रचित भरतेश्वर बाहुबली रास भी एक महत्वपूर्ण

रचना के रूप में प्राप्त होता है। यह रासो वीर रसात्मक है। इसमें ऋषभ के भरतेश्वर और बाहुबली के दो पुत्रों के युद्धों का वर्णन किया गया है। इसका

रचना काल संवत् 1241 स्वीकार किया गया है। शालिभद्र ने ही बुद्धिरास भी लिखा। इसी समय लिखे गये रासो काव्यों में कवि आसगु कृत जीवदया रास तथा चन्दन बाल रास, कवि देल्हणकृत जयसुकुमाल रास, जीवंधन कृत मुक्तावलि रास व उपदेश रसायन रास का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है।

उपदेश रसायन रास रासो प्रायः वीर रसात्मक रहे हैं, आपवादिक रूप से कतिपय ऐसे रासो ग्रन्थ भी लिखे गये हैं, जो वीरभावेतर पद्धति पर लिखे गये हैं, जिन दत्सूरि ने उपदेश रसायन की रचना की है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस कृति को बीर काव्य परम्परा की कोटि में नहीं स्वीकार किया जा सकता है। इसका कारण इस ग्रन्थ का नीति काव्य शैली में लिखा होना है। नीति काव्य शैली के साथ-साथ इसमें जैन धर्म सम्बन्धी सामग्री की प्रधानता है।

डिंगल में रासो ग्रन्थ इस परम्परा में जो रासो ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें प्रायः चरित्र की ही प्रधानता रही। इस परम्परा में आने वाली रचनाओं में ऐतिहासिक तत्वों की रक्षा नहीं की गई। इनके आकार-प्रकार, विषय वस्तु और वर्णन शैली में पर्याप्त विभिन्नता है। 12 वीं शताब्दी से लेकर 15 वीं शताब्दी के बीच रासो परम्परा का पर्याप्त विकास हुआ है। इस अवधि में लिखे गये रासो या रास ग्रन्थ निम्नांकित है 1. बीसलदेव रासो, 2. जम्बू स्वामी रास 3. रेवन्तगिरि रास 4. कच्छुनि रास 5. गौतम रास 6. दशाण भद्र रास 7. वस्तुपाल तेजपाल रास 8. श्रेणिक रास 9. पेपड़ रास 10. समरसिंह रास 11. सप्तक्षेत्रि रास 12. चन्दन बाला रास। इन सभी रासो का संक्षिप्त परिचय

यहां दिया जा रहा है-

बीसलदेव रासो - बीसलदेव रासो, रासो परम्परा का प्रसिद्ध और महत्वूपर्ण ग्रन्थ है। इसके

रचयिता नरपति नाल्ह माने जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार यह ग्रन्थ वीरगीत के रूप में सबसे प्राचीन है। इसमें समयानुसार भाषा के परिवर्तन का आभास भी मिलता है। कतिपय विद्वानों की दृढ़ धारणा है कि इसको वीर काव्य परम्परा का ग्रन्थ न मानकर प्रेम गीत परम्परा का ही मानना चाहिए। इसका प्रमुख कारण यह है कि इसमें वीर भावों का चित्रण नहीं के बराबर है। डा. हरिहरनाथ टण्डन के शब्दों में इस ग्रन्थ में कवि ने प्रेम और विरह के मधुर चित्र खींचे हैं। वियोग का चित्रण अत्यन्त मार्मिक है। कवि की सहृदयता और भावुकता का दिग्दर्शन राजमती का विरह ही है। कलापक्ष का निर्वाह कवि ने अच्छी तरह नहीं किया है। छंद दोषों का तो बाहुल्य है।

17 वी 18 वीं शताब्दी के रासो ग्रन्थ का पता उस समय लगा जबकि पण्डित मोतीलाल मेनारिया, नरोत्तम स्वामी और डा. दशरथ शर्मा व श्री अगरचन्द्र नाहटा ने हस्तलिखित प्रतियों को खोज निकाला। 17 वीं शताब्दी के रासो ग्रन्थों की नामावली इस प्रकार है 1. कुमारपाल रास रचयिता ऋषभदास 2. राम रासो रचयिता माधोदास 3. विनोद रासो रचयिता सुमतिहस । अठाहरवी शताब्दी के रासो ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं 1. छत्रसाल रासो रचयिता डूंगरसी 2, संगतसिह रासो रचयिता गिरिधर चारण 3. खुम्माण रासो रचयिता दलपति विजय। 19 वीं शताब्दी में जिन
रासो ग्रन्थों का पता चला है, उनमें श्रीपाल रास विशेष उल्लेखनीय रचना है। 18 वी शताब्दी के रासो ग्रन्थों में खुम्मान रासो को उपेक्षित नहीं किया जा सकता है।

खुम्मान रासो इस रासों के रचयिता के रूप में दलपति विजय का नाम प्रसिद्ध है। इन्हें दौलत विजय भी कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ में मेवाड़ के खुम्मान अथवा सूर्यवंश की महत्ता का वर्णन किया गया है-

कवि दीजै कमला कला, जोड़णा कवित जुगति।
सूरजि बंस तणौ सुजस, वरणन करू विगति ।।

हास्य मिश्रित रासो ग्रन्थ- रासो काव्य परम्परा में हास्य मिश्रित रासो ग्रन्थों को भी नहीं भुलाया जा सकता है। इस वर्ग में आने वाले ग्रन्थों में मकाड़ रासो, ऊंदर रासो, खीचड़ रासो और गोधा रासो आदि हैं। ये सभी रासो ग्रन्थ डिगल भाषा में लिखे गये हैं।

पिंगल या बृजभाषा के रासो ग्रन्थ- डिगल के रासो ग्रन्थों की जो परम्परा मिलती है, वैसी ही परम्परा पिंगल के ग्रन्थों की भी मिलती है। पिगल या ब्रजभाषा में लिखे गये रासो ग्रन्थों की नामावली इस प्रकार है 1. हम्मीर रासो (शांरगधर कृत) 2. परमाल रासो (जगनिक कृत) 3. विजयपाल रासो (नल्लहसिह मट्ट कृत) 4. काहिया को रासे (गुलाब कवि कृत) 5. कायम रासो (जानकवि कृत) 6. रतन रासो (जोधराज कृत) 7. बुद्धि रासो (जल्हकवि कृत) 8. राउजैतसी रौ रासो (अज्ञात)। इन रासो ग्रन्थों का विशेष महत्व है हम्मीर रासो, परमाल रासो और विजयपाल रासो । इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

हम्मीर रासो- यह ग्रन्थ देशी भाषा का वीरगाथात्मक महाकाव्य बताया गया है। यह अनुपलब्ध है इसके विषय में आचार्य शुक्ल का यह अभिमत है 'प्राकृत पिंगल सूत्र में कुछ पद्य असली हम्मीर रासो के है।'

परमाल रासो- जगनिक को इसका रचयिता स्वीकार किया गया है। वे कालिजर के राजा परमाल के चारण और राजकवि थे। यह ग्रन्थ आल्हाखण्ड नाम से भी प्रसिद्ध है। लोक वीरगाथा के रूप में इसका विकास लोकगायकों द्वारा होता रहा है। सन् 1882 ई. में सर चार्लस इलिट ने अनेक भाटों की सहायता से इसका सम्पादन करवाया था। यह वीर रसात्मक काव्य है, इस का आधार पृथ्वीराज रासो का महोबा समय है। डा. सुन्दर दास की मान्यता

है कि जिन प्रतियों के आधार पर यह संस्करण संपादित हुआ है, उनमें यह नाम नहीं है।

विजयपाल रासो- इस ग्रन्थ के रचयिता नल्लसिह भट्ट माने जाते हैं, जो विजयपाल के दरबारी कवि थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने इसका रचना काल वि. 1100 (सन् 1043) माना है। इतने पर भी यह सच लगता है कि अपने वर्तमान रूप से यह 16 वीं शताब्दी की रचना प्रतीत होती है। इस ग्रन्थ में विजयपाल की विजय यात्राओं का वर्णन है। यह वीर रसात्मक रचना है। यों तो इसके 42 छन्द उपलब्ध है फिर भी इसके महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

पृथ्वीराज रासो का स्थान

यह तो निर्विवाद सत्य है कि रासो काव्य परम्परा में पृथ्वीराज रासो का स्थान और महत्व सर्वोपरि है। एक प्रकार से कृष्ण भक्ति धारा में जो स्थान सूरदास के सूरसागर का है, राम भक्तिधारा में जो महत्व तुलसी दास के रामचरित मानस को प्राप्त है, वही महत्व रासो काव्य परम्परा में पृथ्वीराज रासो को प्राप्त है। अनेक विद्वानों ने इस कृति को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल ने इसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य माना है, तो स्वर्गीय गुलाबराय ने स्वाभाविक विकासशील महाकाव्य माना है और मोतीलाल मेनारिया ने इसमें महाकाव्य को भव्यता और दृष्य काव्य की सजीवता देखी है। डा. विपिन बिहारी ने कतिपय त्रुटियों के होते हुए भी हिन्दी के इस प्रबन्ध काव्य को निर्विवाद रूप से महाकाव्य सिद्ध करने में कुछ उठा नहीं रखा है।

इसके विपरीत डा. श्यामसुन्दर दास ने इसे महाकाव्य नहीं माना है। उनका मत है कि इसमें न तो कोई प्रधान युद्ध है और न किसी महान परिणाम

का उल्लेख ही है। सबसे प्रधान बात तो यह है कि इस रासो में घटनाएं एक दूसरे से असम्बद्ध है तथा कथानक भी शिथिल और अनियमित है, महाकाव्यों की भांति न तो किसी एक आदर्श में घटनाओं का संक्रमण होता है और न अनेक कथानकों की एकरूपता ही प्रतिष्ठित होती है। डा. उदयनारायण तिवारी ने इसे महाकाव्य नहीं माना है रासो को एक विशालकाय वीर काव्य ग्रन्थ कहना ही उचित है। स्थान स्थान पर इसके कथानक में शिथिलता है। पृथ्वीराज रासो की महत्ता और विशिष्टता के अनेक कारण हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. पृथ्वीराज रासो में आये वस्तु वर्णन आकर्षक हैं। उनमें विविधता, विभिन्नता और सरसता है।

2. रासो में प्रकृति चित्रण की छटा भी पूरी अद्वितीयता से संयुक्त है।

3. पृथ्वीराज रासो वीर काव्य है, फिर भी उसमें यथावसर वीर रूप के साथ ही रौद्र, भयानक और वीभत्स रस का चित्रण तो मिलता ही है, श्रृंगार को भी चित्रित किया गया है।

4. कलात्मकता की दृष्टि से भी पृथ्वीराज रासो अप्रतिम कृति है। उसकी भाषा मिश्रित है, उसकी अलंकार योजना विशिष्ट है। रसानुकूल अलंकारों का प्रयोग कृति को अत्यधिक आकर्षक बनाने में सफल हुआ है।

5. यों तो विद्वानों ने चन्द कवि को छप्पय का सम्राट माना है। यह तो सच ही है कि चन्द कवि के छप्पय जितने सरस, स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक हैं, उतने अन्य किसी वीरकाव्य में नहीं हैं। पृथ्वीराज रासो में 72 छन्दों का प्रयोग कवि की प्रतिभा को उदाहृत करता है।

निष्कर्ष

यद्यपि रासो की परम्परा में पृथ्वीराज रासो सर्वोपरि है तथापि उसकी प्रामाणिकता - अप्रामाणिकता को लेकर पर्याप्त विवाद हिन्दी जगत में रहा है। यदि इस प्रश्न को उपेक्षित कर दिया जाय तो इसके काव्य सौष्ठव के आधार पर ही इस ग्रन्थ के महत्व को आंका जा सकता है। वस्तुतः यह ग्रन्थ कवि की प्रौढ़ अनुभूति और उर्वर कल्पना शक्ति का प्रमाण है। इतिहास और कल्पना के मणिकांचन योग से समुन्नत यह ग्रन्थ उत्कृष्टता का द्योतक है। डा द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने इस ग्रन्थ के महत्व और रासो परम्परा में योगदान को इन शब्दों के माध्यम से स्पष्ट किया है 'यह ग्रन्थ राष्ट्रीय भावों को उद्बुद्ध करने तथा वीर भावनाओं को जागृत करने की महती प्रेरणा में लिखा गया है। इसलिए इस महाकाव्य की महत्ता अक्षुण्ण है। इसका गौरव चिरस्थायी है, इसका प्रभाव शाश्वत है और इन सभी विशेषताओं का मूल कारण इसका अद्वितीय काव्य सौष्ठव है जो अत्यन्त उन्नत और उच्चकोटि का है।' अधिकांश समीक्षकों ने इसकी महत्ता को खुले मन से स्वीकार किया है।

9.9आदिकाल के प्रमुख रचनाकार और उनकी विशेषताएं

आदिकाल के प्रमुख रचनाकार और रचनाएं

हिन्दी के शैशव अर्थात् वीरगाथा-काल में प्रणीत काव्य ग्रंथ, प्रबंध काव्य तथा मुक्तक बीर गीतों के रूप में उपलब्ध है। सभी प्रायःवीर रस प्रधान हैं और 'रासो' कहलाते हैं। प्रत्येक ग्रंथ तथा उसके रचियता का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

दलपति विजय का खुमान रासो- 'खुमान रासो' वीरगाथा काल का प्रथम प्रबंध काव्य है। इसकी एक उपलब्ध हस्तलिखित प्रति पर 'दलपति विजय'

का नाम लिखा है, किन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उक्त कवि इसके मूल रचयिता है, उद्धर्ता है या परिशिष्ट रचयिता। शिवसिंह सरोज के अनुसार, "खुमान रासो' किसी अज्ञात नाम भाट कवि की रचना है, जिसमें रामचंद्र से लेकर खुम्माण द्वितीय तक के युद्धों का वर्णन है। इस ग्रंथ में कवि भोज के पश्चात् मेवाड़ के राज सिहासन पर बैठने वाले खुम्माण द्वितीय के युद्धों का सजीव वर्णन है। खुम्माण द्वितीय का समय संवत् 870 से 1900 तक का है। इतिहास में प्रसिद्ध है कि खुम्माण द्वितीय के शासन काल में बगदाद के खलीफा अलमामू ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। वीर खुम्म खुम्माण ने अन्य राजपूत राजाओं की सहायता से चित्तौड़ की रक्षा की थी। खुम्माण ने 24 युद्धों में अपने शौर्य का परिचय दिया था। कर्नल टाड ने भी अपने इतिहास में खुम्माण द्वितीय के युद्धों का सविस्तार वर्णन किया है। 'खुम्माण रासो' की प्राप्त प्रति अपूर्ण है, जिसमें महाराणा प्रताप तक का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि मूल प्रति में परवर्ती कवियों द्वारा प्रक्षिप्त अंश समाविष्ट कर दिया गया है। मोतीलाल मेनारिया ने इसे 18वीं शती की रचना माना है। अगरचंद नाहटा ने समस्त हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर अपना निष्कर्ष निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है-"

(1) इस ग्रंथ में बप्पा रावल से लगाकर राजसिंह तक का वृत्तांत है, पर राणा खुम्माण का वृत्तांत विस्तार से होने के कारण ग्रंथ का नाम 'खुम्माण रासो' रखा गया है।

(2) इसकी भाषा राजस्थानी है।

(3) इसके रचयिता जैन-कवि दलपति विजय हैं, जिनका दीक्षा से पूर्व का नाम दलपत था।

(4) ग्रंथ निर्माण काल सं. 1730 से सं. 1760 के मध्य का है।

इस ग्रंथ में विविध छंदों का प्रयोग है। कविता की दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यंत सरल है।

पिड़ चित्तौड़ न आविऊ, सावण पहिली तीज।
जोवै बाट बिरहिणी, खिण-खिण अणवै खीज ॥

नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो- 'बीसलदेव रासो' गेय मुक्तक परंपरा का प्रतिनिधि ग्रंथ है। प्रायः इतिहासकारों ने इस ग्रंथ को वीर काव्यों की कोटि में रखा है, किन्तु वास्तव में यह रासो ग्रंथ प्रेमाख्यान काव्यों की कोटि का है। इसमें विवाहोपरांत दांपत्य प्रेम के विकास का चित्रण है और प्रोषित-पतिका के वियोगजन्य संताप का बारहमासा आदि के आधार पर निरूपण है। इस दृष्टि से इस काव्य ग्रंथ को 'संदेश रासक' या 'ढोला मारू' जैसे काव्यों की कोटि में रखना अधिक वैज्ञानिक है। इस ग्रंथ का रचनाकाल, रचयिता तथा चरितनायक भी अन्य रासो ग्रंथों की भांति विवादग्रस्त है। कुछ विद्वान अजमेर और सांभर के राजा विग्रहराज चतुर्थ को इसका चरित नायक मानते हैं तो कुछ विग्रहराज तृतीय को। ओझाजी के अनुसार विग्रहराज तृतीय अधिक उपयुक्त है। उनका कहना है कि यदि बीसलदेव को विग्रहराज चतुर्थ माना जाए तो राजमती का उनके साथ विवाह इतिहास के विरुद्ध पड़ता है।

'बीसलदेव रासो'चार खंडों का एक विरह काव्य है। प्रथम खंड में अजमेर के विग्रहराज चतुर्थ (उपनाम बीसलदेव) का परमाय वंशज राजा भोज की कन्या राजमती से विवाह वर्णित है। द्वितीय खंड में राजमती के व्यंग्य से बीसलदेव के उड़ीसा प्रवास, तृतीय खंड में राजमती के विरह और चतुर्थ खंड में राजमती का नैहर चले जाना तथा बीसलदेव का उसे नैहर से लाने आदि का वर्णन है। सारी कथा ललित मुक्तकों में नियोजित है। इस ग्रंथ के

रचयिता, विग्रहराज चतुर्थ के समकालीन कवि नरपति नाल्ह हैं जो सं. 1212 के लगभग हुए। कवि ने स्वयं इस ग्रंथ का रचना-काल 'बारा सो बहोतरा 'लिखा है। मोतीलाल मेनारिया तथा डॉ. हजारीप्रसाद ने भी नरपति नाल्ह का समय 1212 ही माना है और उन्हीं को इस ग्रंथ का प्रणेता स्वीकार किया है। इस ग्रंथ में भी समय-समयप्राचीन एवं पर इतने परिवर्तन हुए हैं कि इसका वास्तविक स्वरूप दब सा गया है, जिससे ऐतिहासिक भ्रांतियां उत्पन्न हो गई है। इस ग्रंथ का रचना काल भी भांत एवं विवादग्रस्त है। पं. रामचंद्र शुक्ल इसका रचना काल 1212 मानते हैं तो डॉ. गौरीशंकर ओझा संवत् 1272 के पक्ष में है। इस ग्रंथ की भाषा में अपभ्रंश तथा हिन्दीपन दोनों ही हैं। डॉ. वर्मा के अनुसार इस ग्रंथ की भाषा अपभ्रंश से सद्यः विकसित हिन्दी है।

जगनिक का परमाल रासो जगनिक का कालिजर के राजा परमाल (परमर्दि देव) का दरबारी कवि होना प्रसिद्ध है। परमाल कन्नौज के अधिपति जयचंद के मित्र तथा सामंत थे। इसलिए पृथ्वीराज चौहान ने इन पर भी आक्रमण किया था। जगनिक ने अपने आल्ह खंड में जिसे 'परमाल-रासो' कहा है, उसमें इन्हीं परमाल राजा के वीर सामंत आल्हा ऊदल की वीर-गाथाएं चित्रित की हैं। आल्हा ऊदल और उनके भाई देवा, मलखे, सुलखे आदि महोबा के बनाफर क्षत्रिय थे, जिनकी वीरता का लोहा स्वयं पृथ्वीराज चौहान मानते थे। जगनिक कृत आल्हा खंड एक वीरगति काव्य है, जिसमें आल्हा ऊदल के बावन युद्ध वर्णित हैं। यह ग्रंथ अत्यंत लोकप्रिय है। आज भी वर्षा ऋतु में गांव-गांव में अल्हैतों द्वारा 'आल्हा' का गायन होता है। समय-समय पर किए गए परिवर्तनों तथा परिवर्द्धनों के कारण इसका भी मूलरूप दब-सा गया है। इस ग्रंथ को सबसे पहले फर्रुखाबाद के कलेक्टर मि. चार्ल्स इलियट ने प्रकाशित कराया।

चंदबरदाई का पृथ्वीराज रासो 'पृथ्वीराज रासो' वीरगाथा काल का सर्वाधिक प्रमुख प्रतिनिधि ग्रंथ और हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। वीरगाथा काल का प्रसिद्ध प्रासाद असंदिग्ध रूप से इसी पर आधारित है। यह एक उत्कृष्ट प्रबंध काव्य है, जिसमें वीर भावों की सजीव व्यंजना है। 69 अध्यायों का यह विशाल ग्रंथ छप्पय, कवित्त, दूहा, तोमर, त्रोटक और गाहा आदि छंदों में लिखा गया है। इसके रचयिता पृथ्वीराज के समसामयिक कवि चंदबरदाई थे। पृथ्वीराज रासो के प्रणेता चंदबरदाई का जीवन काल सं. 1225 से 1249 तक माना जाता है। रासो के अनुसार इनकी जन्म भूमि लाहौर थी और ये भट्ट जाति के जगातगोत्रिय थे। ये दिल्ली के अंतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के न केवल राजकवि वरन् सखा तथा सामंत भी थे। चंदबरदाई षट्द्भाषा, व्याकरण, ज्योतिष तथा काव्यशास्त्र आदि अनेक विधाओं के मर्मज्ञ थे। जनश्रुति के आधार पर जलंधर देवी का इष्ट होने के कारण ये अदृष्ट काव्य की भी रचना करते थे। अपने आश्रयदाता एवं सखा पृथ्वीराज का इन्होंने जीवन के अंतिम क्षण तक साथ नहीं छोड़ा। शहाबुद्दीन गौरी जब पृथ्वीराज को पकड़कर गजनी ले गया तो ये भी गजनी चले गए और एक दोहा पढ़कर चौहान सम्राट को गौरी को मारने का संकेत दिया। सम्राट ने शब्द बेधी बाण द्वारा गौरी को मार डाला। बाद में पृथ्वीराज तथा चंदबरदाई दोनों ने साथ ही साथ अपने जीवन का अंत करने की व्यवस्था की। गजनी जाते समय चंदबरदाई ने इस पंक्ति के अनुसार 'पृथ्वीराज रासो'ग्रंथ अपने पुत्र जल्हण को सौंप दिया-

"पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चलि गज्जन नृप काज ।"

कहा जाता है कि ग्रंथ का अंतिम भाग उनके पुत्र जल्हण ने ही पूरा किया। 'पृथ्वीराज रासो' 1270 पृष्ठों का एक विशाल काव्य ग्रंथ है। ग्रंथ के प्रारंभ में दिल्ली के राजा अनंगपाल के दोनों दौहित्र अजमेर के पृथ्वीराज चौहान और कन्नौज के जयचंद का वर्णन है। अनंगपाल ने पृथ्वीराज को अपना

दत्तक पुत्र मानकर उन्हें अपना दिल्ली का राज्य दे दिया। इससे जयचंद तथा पृथ्वीराज में ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। जयचंद ने अपनी पुत्री संयोगिता के स्वयंवर में पृथ्वीराज को न बुलाकर अन्य सभी राजाओं को बुलाया और पृथ्वीराज की स्वर्ण प्रतिमा द्वारपाल के रूप में खड़ी करके उन्हें अपमानित किया। संयोगिता ने इसी हेम-प्रतिमा के गले में अपनी 'जयमाल' डालकर अपने पिता से पृथ्वीराज के अपमान का प्रतिशोध लिया। अवसर पाकर पृथ्वीराज तथा उनके सामत संयोगिता का हरण कर ले गए। जयचंद इससे और अधिक क्रुद्ध हुआ। बाद में शहाबुद्दीन गौरी ने पृथ्वीराज पर 11 बार आक्रमण किए। अंत में चौहान सम्राट पराभूत हुए और गौरी उन्हें पकड़कर गजनी ले गया और उनकी आंखें फुड़वा दी। बाद में चंदबरदाई के संकेत से चौहान सम्राट ने गौरी के जीवन को तो समाप्त कर ही दिया, साथ ही अपना तथा चंदबरदाई का भी अंत कर लिया, यही इस काव्य का प्रमुख विषय है।

'पृथ्वीराज रासो' की घटनाओं एवं संवतों के ऐतिहासिक कसौटी पर खरे न उतरने से इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध हो गई है। इससे विद्वानों के चार वर्ग हो गए हैं। प्रथम वर्ग के विद्वान पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक मानते हैं। यह वर्ग न तो चंदबरदाई के अस्तित्व को स्वीकार करता है और न 'रासो 'को पृथ्वीराज की समकालीन रचना मानता है। ये विद्वान हैं- कविराज श्यामलदास, कविराज मुरारिदान, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डॉ. बूलर, मारिसन, मुशी देवीप्रसाद, श्री अमृतलाल शील, रामचंद्र शुक्ल और डॉ. रामकुमार वर्मा। द्वितीय वर्ग चंद को पृथ्वीराज का समकालीन और 'रासो' के वर्तमान रूप को प्रामाणिक मानता है। इस में है- श्यामसुन्दरदास, मथुराप्रसाद, मोहनलाल विष्णुलाल पंडया, मिश्र बंधु आदि। तृतीय वर्ग स्वीकार करता है कि पृथ्वीराज के दरबार में चंद नाम का कवि था, जिसने 'रासो' लिखा, किन्तु अब वह अपने मूल रूप में अप्राप्य है। वर्तमान तो

परिवर्तित एवं विकृत है। इसका समर्थन डॉ. सुनीत कुमार चटर्जी, डॉ. दशरथ ओझा आदि ने भी किया है। चतुर्थ वर्ग चंद को पृथ्वीराज का समकालीन मानता है, किन्तु उसके अनुसार चंद ने 'पृथ्वीराज रासो' की प्रबंध काव्य के रूप में रचना नहीं की। नरोत्तम स्वामी इसी मत के समर्थक हैं। उक्त मत विषमताओं के होते हुए भी अधिकांश विद्वान पृथ्वीराज रासो को चंद की एक प्रामाणिक रचना मानते हैं। यह जाली ग्रंथ नहीं है। हिन्दी साहित्य में इसका अपना निजी महत्व है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो इस विवाद से ऊबकर यहां तक लिख डाला है 'निरर्थक मंथन से जो प्रस्तर फेन राशि तैयार हुई है, उसे पार करके ग्रंथ के साहित्यिक रस तक पहुंचना हिन्दी के विद्यार्थी के लिए असंभव सा व्यापार हो गया है।'

शारंगधर का हम्मीर रासो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार' हम्मीर रासो' हम्मीर की समसामयिक रचना हो सकती है, जिसके रचयिता शारंगधर हैं। राहुल सांस्कृत्यायन इसे उज्जवल की रचना मानते हैं। इस ग्रंथ की प्रामाणिक सामग्री तथा रचयिता की विवादग्रस्तता के बीच इतना सत्य है कि इस ग्रंथ के समस्त छंद वीर रस के सुन्दर उदाहरण हैं।

लल्हसिंह भाट का विजयपाल रासो इस ग्रंथ के संबंध में भी प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाई। यह एक विविध छंदों का 'रासो' काव्य है, जिसमें विजयपालसिह और बंग राजा के युद्ध का सजीव वर्णन है। इसके रचयिता लल्हसिह भाट हैं।

भट्ट केदार का जयचंद प्रकाश- जिस प्रकार चंदबरदाई ने अपने काव्य-ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज की कीर्ति का वर्णन किया है, उसी प्रकार भट्ट केदार ने कन्नौज के गहरवार क्षत्रिय राजा जयचंद की अपने 'जयचंद प्रकाश' नामक ग्रंथ में यश प्रशस्ति का वर्णन किया है। यह ग्रंथ अब अनुपलब्ध है।

मधुकर का जयमयंक जसचंद्रिका भट्ट केदार की ही भांति मधुकर कवि ने भी कन्नौज नरेश जयचंद के यश-प्रताप पर आधारित 'जयचंद जसचंद्रिका'

नामक एक वृहदाकार प्रशस्ति-ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ भी आज अनुपलब्ध है।

अन्य कवि एवं रचनाएं- उक्त कवियों के अतिरिक्त वीरगाथा काल में ही कुछ ऐसे कवि भी हुए, जिन्होंने युग प्रवृत्तियों की सर्वथा उपेक्षा करके स्वतंत्र काव्य रचना की। इनमें खुसरो तथा विद्यापति के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रत्येक का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

अमीर खुसरो अमीर खुसरो का जीवन काल सं. 1310 से 1381 वि. तक है। ये अत्यंत मिलनसार एवं विनोदी प्रकृति के व्यक्ति थे और फारसी के सफल शायर थे। इन्होंने सबसे पहले जनभाषा में रचना की। इनकी रचनाओं में खड़ी बोली का प्रथम रूप देखने को मिलता है। इनकी पहेलियां, मुकरियां तथा दो सखुने ठेठ साधारण जनता की बोल-चाल में लिखे गए हैं। इन्होंने अंतर्लापिका और बहिर्लापिका पहेलियां लिखी है, एक उदाहरण इस प्रकार है-

एक थाल मोती से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरै, मोती उससे एक न गिरै ॥

विद्यापति- मैथिल-कोकिल के नाम से हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रसिद्ध विद्यापति की जन्मभूमि बिहार है, जहां की अमराइयों में उनकी मधुर पदावली के कभी गूंजे स्वर आज भी ध्वनित हैं। संस्कृत कवि जयदेव के 'गीत गोविन्द 'के आधार पर इनके द्वारा रचित श्री राधाकृष्ण विषयक मधुर पदावली इन्हें 'हिन्दी का जयदेव' कहलाने में सर्वथा समर्थ है। डॉ. उमेश मिश्र के अनुसार इनका जन्म संवत् 1425 है। यद्यपि इनका काव्य विषय राधा-कृष्ण की भक्ति है, किन्तु इसमें भौतिक प्रेम-प्रधान श्रृंगारिक भावनाएं भक्ति क्षेत्र को पार कर गई हैं। बिहारी की ही भांति इन्होंने भी वय संधि का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त अपने आश्रयदाताओं

का भी नाम लिया है। अतः कुछ विद्वान इन्हें भक्त कवि न मानकर श्रृंगारिक कवि मानते हैं।

9.10 सार संक्षेप

हमने पाठ्यक्रमअंतर्गत आदिकाल की सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक स्थितियों से भलीभाँति परिचित हो सकेंगे ।

आदिकालीन कवियों, रासो काव्य परंपरा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। रासो काव्य परंपरा की जुड़ी विभिन्न रचनाएं उनके रचनाकार की जानकारी प्राप्त होगी। रासो ग्रंथ एवं रचनाएं एवं उनके महत्व से हम भली-भांति परिचित हो पाएंगे।

9.11मुख्य शब्द

रासो- किसी राजा का पद्यात्मक चरित्र वर्णन

देशाटन - देश भ्रमण

भाटों - चारण कवि

9.12 स्व .प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

स्वप्रगति परीक्षण

1. हिंदी साहित्य के आदिकाल में सर्वाधिक ग्रंथ .....से परिपूर्ण है।

2. सिद्धो की संख्या.....बताई गई है।

3. भक्ति आंदोलन का प्रारंभ .....से होता है।

4. बीसलदेव रासो के रचयिता.....है।

9.13 संदर्भ सूची

1. वर्मा, S. (2020). *प्राचीन हिन्दी काव्य का इतिहास*. पटना: लोकभारती प्रकाशन.
2. शुक्ला, P. (2021). *मध्यकालीन काव्य और उसकी परंपरा*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
3. सिंह, M. (2022). *भारत में काव्यशास्त्र का विकास और मध्यकालीन काव्य*. भोपाल: साहित्य प्रकाशन.
4. यादव, R. (2023). *प्राचीन काव्य और मध्यकालीन काव्य: ऐतिहासिक दृष्टिकोण*. जयपुर: ज्ञानदीप प्रकाशन.
5. शर्मा, A. (2023). *हिन्दी काव्य के इतिहास में मध्यकालीन काव्य की भूमिका*. लखनऊ: संस्कृत प्रकाशन.

9.14 अभ्यास प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के आदिकाल की पृष्ठभूमि व प्रवृत्तियों पर सार गर्भित निबंध लिखिये?
2. सिद्ध साहित्य पर परिचय आत्मक टिप्पणी लिखिए?
3. सिद्ध साहित्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. नाथ साहित्य के उद्भव, विकास एवं कवियों और उनके साहित्य का उल्लेख कीजिए।
5. रासो ग्रंथों का परिचय दीजिए।

ब्लॉक - IV

इकाई -10

हिन्दी साहित्य का इतिहास भक्तिकाल

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का आविर्भाव और परिस्थितियाँ

10.4 भक्तिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ और श्रेष्ठतम युग

10.5 निगुर्ण भक्ति काव्यधारा की प्रमुख विशेषतायें
10.6 सार संक्षेप
10.7 मुख्य शब्द
10.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रन्थ
10.10 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम भक्ति काल की परिस्थितियों एवं साहित्य से अवगत हो पाएंगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत् 1375 वि. से 1700 वि. तक के कालखंड को भक्ति काल कहा है। उनके अनुसार इस कालखंड में भक्ति भावना की प्रधानता थी इसलिए प्रवृत्ति की दृष्टि से उसका यह नामकरण उचित है मध्यकाल को दो खंडोंमें विभक्त किया गया है पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल पूर्व मध्यकाल को भक्ति काल तथा उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल कहा जाता है।

भक्ति काल में हम भक्ति काल के उदय की परिस्थितियों उनकी सामाजिक ,सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों से अवगत हो पाएंगे । भक्तिकाल का वर्गीकरण दो धारा में किया गया है निर्गुण धारा और सगुण धारा । निर्गुण धारा के अंतर्गत हम उसकी प्रमुख प्रवृत्तियां एवं साहित्य से अवगत हो पाएंगे।

10.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- भक्ति काल की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि और परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- भक्ति काल की काव्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- अपने पाठ्यक्रमअंतर्गत भक्ति काल की काव्य परंपरा एवं उसके महत्व को जान सकेंगे ।
- भक्ति आंदोलन के कारण को समझ पाएंगे।
- भक्ति काल के प्रमुख रचयिता एवं उनके साहित्य को समझ पाएंगे।

10.3 हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का आविर्भाव और परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का आविर्भाव और परिस्थितियाँ

भक्तिकाल का आविर्भाव निम्न परिस्थितियों में हुआ:-

राजनैतिक परिस्थितियां- वीर गाथा काल के समाप्त होते ही साहित्यिक क्षेत्र में क्रान्ति

की लहर दौड़ती दिखाई दी। भारत में मुसलमानों का शासन स्थापित हो चुका था। उनका आतंक चारों और छाता चला गया। अनेक हिन्दू राजाओं ने मुसलमान शासकों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। फलतः हिन्दुओं के हृदय से गौरव, गर्व और उत्साह समाप्त होता चला गया। हिन्दुओं के देव मन्दिरों को मुसलमानों ने भूमिसात् करना प्रारम्भ कर दिया। देवताओं की मूर्तियों को तोड़ दिया। आराध्य व पूज्य पुरुषों को अपमानित करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी स्थिति में भी हिन्दू जाति से प्रतिवाद या प्रतिशोध की कोई लहर नहीं उठी। मुस्लिम साम्राज्यवाद का विस्तार होता चला गया और

मुसलमानों का भय जनजीवन में व्याप्त होता गया। परिणामस्वरूप वैदिक धर्म अन्तिम सांस गिनता हुआ जर्जरित होता गया। हिन्दुओं में इतनी शक्ति भी शेष न रह गई थी कि वे अपनी व अपने धर्म की रक्षा कर सकते। नतीजा यह निकला कि वे मुस्लिम शासकों के अधीन रह कर उन्हीं की तरह विलास प्रिय होते चले गये। वीरगाथा कालीन भावना निष्शेष हो गई। देशी भाषा के कवियों का राजाश्रय समाप्त हो गया था, जिससे काव्य राजदरबार की मीनारों से गिरकर साधुओं व विरक्तों की झोपड़ियों में सांस लेने लगा। अब तक जिस कविता में आश्रयदाताओं की प्रशंसा व स्तुति होती थी, वही अब निराश और खिन्न होकर भगवद् भक्ति की ओर मुड़ गई। यह मोड़ अचानक नहीं आया था, जैसा कि ग्रियर्सन ने स्वीकार किया है।

धार्मिक परिस्थितियां- धार्मिक परिस्थितियां भी शोचनीय हो गई। राजनैतिक हलचल ने

हिन्दुओं के धार्मिक जीवन को भी प्रभावित किया। ब्रजयानी सिद्धान्तों, नाथपंथी, योगियों व कापालियों आदि ने देश से धर्म का स्वरूप मिटा दिया था, जिससे जनता आत्म-कल्याण को तो भूल ही गई, लोक-कल्याण भी भूल बैठी। हां कुछ शास्त्रज्ञ विद्वान इससे अप्रभावित ही रहे तथा निरन्तर सुधार लाने का प्रयत्न करते रहे। निराश जनता ने भक्तों के उद्धारक भगवान से अपनी रक्षा के लिए गुहार लगाना प्रारम्भ कर दिया। मुसलमान शासक कभी शक्ति से और कभी प्रेम से हिंदुओं में मुस्लिम धर्म का प्रचार करना चाहते थे। शासकों की रीति-नीति अज्ञात रूप से शासित एवं शोषित हिन्दुओं को प्रभावित करने लगी। वे प्यार और मार से पददलित समझी जाने वाली जाति पर मुसलमानत्व थोपने लगे। आत्म रक्षा के विचार से हिन्दुओं ने मुस्लिम धर्म को समझने का निष्फल प्रयास किया। वे (हिन्दू) निराश और पराजित तो थे ही, अपनी कमजोरी, खिन्न व विषष्ण भावना को छुपाने के लिए अध्यात्म भक्ति की ओर झुकते चले गये। भगवद् भक्ति के अलावा

कोई अन्य मार्ग उनके सामने नहीं रह गया था। कुछ मुसलमान कवियों ने भी हिन्दू धर्म को समझने की चेष्टा की, जिससे साहित्य और जीवन में एक नये मोड़ की शुरुआत हुई। यद्यपि यह ठीक है कि एक सीमा तक निराश हिन्दू भगवत् भक्ति की ओर उन्मुख हुए, किन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं है। कारण यह है कि जिस समय उत्तर भारत धार्मिक अत्याचारों का केन्द्र बना हुआ था, तभी दक्षिण में भक्ति की स्रोतास्विनी प्रवाहित हो रही थी, वहां के भक्त ईश्वर से प्राणरक्षा, जीवन रक्षा और उद्धार के लिए प्रार्थना कर रहे थे। अतः मात्र हिन्दुओं के जीवन में व्याप्त निराशा ने ही भक्ति भावना को विकसित नहीं किया है। अतः भक्ति कालीन भक्ति भावना को न तो ईसाइयत की देन ही स्वीकार किया जा सकता है और न धार्मिक अत्याचारों ने भक्ति भावना को अधिक व्यापक रूप से विकसित करने में सहायता पहुंचाई। वस्तुतः भक्ति के इस विकास में कोई एक परिस्थिति प्रमुख नहीं रही है, अनेक परिस्थितियों की प्रेरणा रही है।

सामाजिक परिस्थितियां राजनैतिक जीवन की उथल-पुथल, धार्मिक अत्याचारों और

विषमताओ का प्रभाव तत्कालीन सामाजिक जीवन पर पड़ना स्वाभाविक ही था। अतः ऐसी अनिश्चित अवस्था में सामाजिक जीवन भी विश्रृंखलित होता गया। राजा और सामन्त वर्ग विलासिता में डूबता जा रहा था। प्रजा आर्थिक कष्ट से भाराक्रान्त होकर निर्धनता व निराशा का वरण करती जा रही थी। आर्थिक विपन्नता ने जनजीवन के स्तर को गिरा दिया था। एक ओर तो यह स्थिति थी, दूसरी ओर हिन्दू-मुसलमानों का पारस्परिक संघर्ष एक-दूसरे के प्रति घृणा में परिवर्तित होता जा रहा था। वर्णाश्रम व्यवस्था शिथिल होकर मृतप्रायः होती गई। जाति पांति के भेद बढ़ते गये तथा बहु विवाह की प्रथा बढ़ी। बाल विवाहों का प्रचलन हुआ। सामाजिक संकीर्णता के इस वातावरण में जो धार्मिकता गौण होती चली जा रही थी, उसे कतिपय

प्रतिभाओं ने शुद्ध आध्यात्मिकता की ओर मोड़ दिया। संतों व सूफियों ने यही काम किया है।

भक्तिकाल की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग कहा जाता है. इस युग में भक्ति आन्दोलन से प्रभावित काव्य-रचनाएं हुई। राजपूतों को पराजय ने हिन्दी-काव्य को नवीन दिशा प्रदान की। मुसलमानों से पराजित होकर हिन्दू जन-जीवन में निराशा छा गई। हिन्दुओं के सामने उनके मंदिर गिराये जाते थे और उनके देवी-देवताओं का अपमान होता था, परन्तु शक्ति के अभाव में वे सभी कुछ सहन करते रहते थे। उनमें प्रतिकार लेने की शक्ति नहीं रह गई थी। आश्रयदाता राजा और उनका शौर्य ही जब समाप्त हो गया था, तब वीर गाथाओं को कौन लिखता व कौन सुनता? अतः वीर-काव्यधारा भक्ति-काव्यधारा में शान्ति और विश्राम पाने हेतु विलीन हो गई।

भक्ति-काव्य के उदय में राजनीतिक परिस्थितियों का बहुत कुछ योग रहा। परन्तु इस कथन में आंशिक सत्यता ही है कि मुसलमानों से पराजित होकर हिन्दू समाज भक्ति की ओर उन्मुख हुआ। दक्षिण के शान्त वातावरण में जहां मुसलमानों का प्रभाव तक नहीं था, भक्ति का प्रचार हो रहा था। आलवार सन्त भक्ति की धारा प्रवाहित कर रहे थे। रामानुजाचार्य और विष्णु स्वामी ने विष्णु के साकार रूप की प्रतिस्थापना की। यह दक्षिण की भक्ति-धारा इतने वेग से प्रवाहित हुई की उत्तरापथ में जान्हवी बनकर जन-जीवन को प्लावित करने लगी। बहुत पहले से देश के पूर्वी तथा पश्चिमी प्रदेशों में सिद्ध और नाथपंथी क्रमशः प्रचार-कार्य कर रहे थे। ये धर्म, कर्म, ज्ञान और उपासना के समन्वित रूप को न समझा सके परन्तु जन-साधारण के भीतर इनका बहुत प्रभाव था। कबीर आदि सन्तों तथा जायसी आदि सूफी कवियों पर इनका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि भक्तिकाल

का आरम्भ एक अचानक घटना के रूप में हुआ, जो मुसलमानों के द्वारा हिन्दुओं प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास
के पराजित होने से घटित हुई थी। इसके लिए तो बहुत पहले से मेघ-खंड एकत्र हो गये थे, किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि मुसलमानों के विजय-गर्व युक्त अत्याचारों ने भक्ति प्रवाह को तीव्रता अवश्य प्रदान की। भक्ति-काव्य की यह धारा इतने वेग से प्रवाहित हुई कि सहदय मुसहमान भी इससे न बच सके। भक्ति-काव्यधारा के विकास का मुख्य आधार भारत का धामिक और भक्ति आन्दोलन है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भक्ति का पूर्ण रूप से प्रतिपादन किया गया है।

आगे चलकर रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में स्वामी रामानन्द जी हुए जिन्होंने विष्णु के अवतार राम की उपासना का प्रचार किया। दूसरी ओर श्री वल्लभाचार्य ने प्रेम-मूर्ति श्रीकृष्ण को सामने लाकर जनता को रसमग्न कर दिया। इस प्रकार राम-भक्ति और कृष्ण भक्ति धारा का विकास हुआ। आगे चलकर कृष्ण-भक्ति शाखा में सूरदास और राम-भक्ति शाखा में तुलसीदास प्रमुख कवि
हुए।

इस प्रकार भारत में सगुणोपासना का क्षेत्र तैयार हो चुका था, किन्तु देश में मुसलमान स्थायी रूप से बस चुके थे। वे साकारोपासना के विरेधी थे। अतः ऐसे सामान्य भक्ति-मार्ग की आवश्यकता हुई, जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों ही योग दे सकें। मुसलमानों का विश्वास एकेश्वरवाद में था। वे मूलतः निर्गुणोपासक थे। हिन्दुओं में भी निराकारोपासना की मान्यता थी। वेदों तथा उपनिषदों से लेकर निर्गुण-निराकार की उपासना हिन्दुओं में चली आ रही थी। अतः इस सामान्य उपासना-पद्धि को लेकर सन्त और सूफी कवियों ने निर्गुणोपासना का प्रचार किया। कबीर आदि ज्ञानमार्गी सन्तों ने मुस्लिम एकेश्वरवाद और भारतीय अद्वैतवाद को आधार बनाया, जबकि जायसी

आदि प्रेममार्गी कवियों ने सूफी प्रेमवाद और भारतीय अद्वैत्तवाद का समन्य अपनी साधना-पद्धति में किया। इस प्रकार भक्तिकाल में साकारोपासना और निर्गुणोपासना की दो धाराएं सानान्तर रूप से प्रवाहित होती रहीं।

निष्कर्ष

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि भक्तिकाल के प्रादुर्भाव के मूल में जहां एक ओर सांस्कृतिक और धार्मिक भावना कार्यशील रही है, वहीं समय का सहयोग पाकर यह विकसित व पल्लवित होती गई। इस भावना के मूल में न तो राजनैतिक परस्थितियां ही है और न कोई विदेशी प्रभाव ही है। हां उन दोनों ने दक्षिण भारत से विकसित भक्ति भावना को पल्लवित होने में सहयोग अवश्य दिया है। सगुण भक्ति तो उत्तर में पहले से प्रचलित थी ही, उसके दो रूप भक्ति काल में हो गये कृष्ण भक्ति व राम भक्ति। साथ ही बौद्धों के ध्वंसावशेष सिद्धों व नाथों से प्रेरित होकर निर्गुण काव्यधारा का विकास हुआ, जिसने ज्ञानमार्गी व प्रेममार्गी दो धाराओं में अपना विकास किया। अतः यही कहा जा सकता है कि भक्ति काल का प्रादुर्भाव तात्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक परिस्थितियों की प्रेरणा से हुआ। दक्षिण भारत में पनपी भक्ति भावना को तत्कालीन परिस्थितियों ने प्रकट किया और एक पवित्रता के साथ भारतीय जीवन में भक्ति भावना आविर्भूत हुई।

10.4 भक्तिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ और श्रेष्ठतम युग

प्रत्येक काल का साहित्य कुछ विशेष प्रकार की प्रवृत्तियों एवं मान्यताओं को लेकर लिखा जाता है। दूसरे प्रत्येक काल की अपनी मान्य विशेषताएं ही उस

काल के साहित्य को दूसरे काल से पृथक करती हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर भक्तिकाल का साहित्य निश्चित ही अपने पूर्ववर्ती साहित्य से पृथक एवं विशिष्ट है। तथ्य तो यह है कि जितनी सफलता से भक्तिकाल के साहित्य ने जनजीवन को प्रभावित एवं आंदोलित किया, अन्य किसी भी काल का साहित्य न कर सका इसकी यह विशेषता सर्वाधिक महान और ग्राह्य है। वास्तव में भक्ति साहित्य ने भारतीय जन-मानस को जीवन का एक नया आलोक प्रदान किया, इसने आशा आकांक्षा से भरा जीवन जीने की कला सिखाई। मन, बुद्धि और आत्मा को समान रूप से रसान्वित कर एक विशेष सन्तुष्टि प्रदान की। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि यह समूचे भारतीय इतिहास में अपने ढंग का अकेला साहित्य है। इसी का नाम भक्ति साहित्य है। यह एक नई दुनिया है। डा. श्याम सुन्दर दास ने तो भक्ति साहित्य रचे जाने के काल को स्वर्ण युग नाम से सम्बन्धित करते हुए लिखा है कि जिस युग में कबीर, जायसी, तुलसी, सूर जैसे सुप्रसिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्य वाणी उनके अन्तःकरणों से निकल कर देश के कोने-कोने में फैली थी, निश्चय ही वह हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग था।

हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का पूर्ण मध्य युग भक्तिकाल नाम से अभिहित किया जाता है। भक्तिकाल शब्द ही अपने प्रतिपाद्य को स्पष्ट करने वाला है, अर्थात् इस काल में भक्तिपरक रचनाओं की प्रधानता रही है। कुछ विद्वानों ने इस काल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा है। उनकी दृष्टि में हिन्दी काव्य का श्रेष्ठतम अंश इसी काल में उपलब्ध होता है। वस्तुतः निर्गुण और सगुण धाराओं में प्रवाहित होने वाला यह काव्य गुणवत्ता और परिणाम दोनों दृष्टियों से अत्यन्त समृद्ध है। काव्य विधाओं के आधार

पर भी इस काल के लिए स्वर्णयुग शब्द का प्रयोग किया गया था। तब उन विद्वानों के समक्ष वर्तमान युग का प्रचुर साहित्य नहीं था, अर्थात् यह शब्द आज से लगभग अर्ध शताब्दी पूर्व प्रयोग में आया था और तब तत्कालीन समस्याओं में भक्ति काल से श्रेष्ठ काव्य की कल्पना करना सम्भव नहीं था। इसे स्वर्ण युग प्रमाणित करने वाले तत्व ये हैं-

(1) निर्गुण सन्त काव्य: स्वर्ण युग के रूप में- भक्तिकाल का प्रारम्भ निर्गुण सन्त काव्य से होता है। इस धारा के कवियों में उन सन्त कवियों का स्थान है, जिन्होंने एकेश्वरवाद में आस्था व्यक्त करते हुए निर्गुण निराकार ईश्वर की भक्ति का संदेश दिया। भक्ति के क्षेत्र में संत कवि भारतीय निर्गुण भावना के समीप होते हुए अद्वैतदर्शन के प्रतिपादक थे, किन्तु दर्शन को मात्र पीठिका ही उन्हें स्वीकार्य थी, दार्शनिक मतवाद या भेदभाव के प्रपंच से उनका साक्षात कोई सम्बन्ध नहीं था। सामाजिक स्तर पर इन सन्तों ने पाखण्ड एवं अंधविश्वासों का पूरी दृढ़ता के साथ खंडन किया। मिथ्या आडंबरों के प्रति जैसी अनास्था इन सन्त कवियों ने व्यक्त की, वैसी न तो पहले कभी कोई समाज सुधारक कर सका था और न परिवर्तन युग में ही किसी का वैसा साहस हो सका। इन संत कवियों का एक बड़ा भाग निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखता था, किन्तु आचरण की पवित्रता और आचरित सत्य की निष्ठा के कारण इनकी वाणी का प्रभाव समाज के उच्च वर्ग पर भी पड़ा था। निर्गुण सन्तों के द्वारा तत्कालीन समाज में एक प्रकार की वैचारिक क्रान्ति का उदय हुआ और परम्परागत रूढ़िवादिता पर इन्होंने गहरा प्रहार किया। विद्वान दार्शनिक पण्डितों का प्रभाव एक सीमित शिक्षित वर्ग तक था, किन्तु इन कवियों की वाणी का प्रभाव सामान्य जनता पर भी पड़ा और सभी वर्गों के व्यक्ति इनसे प्रभावित हुए। सन्त कवियों के पास धर्म, दर्शन, शक्ति और चरित्र निर्माण के लिए अपना निजी संदेश था। धर्म के क्षेत्र में संकीर्णता के ये घोर विरोधी थे, दर्शन के क्षेत्र में अद्वैत

दृष्टि से एकेश्वरवाद के समर्थक थे। भक्ति के क्षेत्र में ये कर्मकाण्ड रहित निष्ठा और समर्पण में विश्वास रखते थे और चरित्र विकास के लिए आचरित सत्य को जीवन निर्माण की कसौटी मानते थे।

(2) समन्वय दृष्टि- विजयेन्द्र स्नातक का मत है कि 'सन्तों में समन्वय दृष्टि का स्वस्थ

रूप से विकास हुआ था। कबीर, नानक, दादू, हरिदास, निरन्जनी आदि सन्तों ने जिस रूप से विचार व्यक्त किये हैं, उसका आधार कोई एक विचारधारा या मतवाद नहीं है। अद्वैतवाद, वैष्णवों की भक्ति भावना, सिद्धों नाथों की सहज सरल साधना आदि का जिस पद्धति से इन्होंने समन्वय किया था, वह सर्वजन्य सुलभ थी, फलतः सामाजिक स्तर पर इनका समन्वय ग्राहा बन गया था। संतों ने शास्त्र वचन को प्रमाण नहीं माना। शास्त्र की अवहेलना एक कठिन चुनौती थी, लेकिन अनुभूति को प्रमाण मानने से शास्त्र मर्यादा भी शिथिल हो गई। मानव को परम्परागत रूढ़ शास्त्र परम्परा से मुक्ति केवल इन निर्गुण संत कवियों की आत्मानुभवमयी दृढ़ वाणी से ही मिली थी। वस्तुतः ये कवि अपने युग के मिथ्याडम्बरों और धार्मिक रूढ़ियों के खोखलेपन से परिचित होकर ही सत्य के उद्घाटन का साहस कर सके थे। जिसे एक बार सत्य का बोध हो जाता है, वह किसी भी मिथ्या या अनुभूति तथ्य को प्रमाण नहीं मानता ।'

(3) अटूट आस्था व भक्ति इस युग के संत कवि ईश्वर की सत्ता और सर्व शक्तिमता में अटूट विश्वास रखने के कारण अत्यन्त निर्भीक, स्पष्टवादी, साहसी और सत्यवादी थे। किसी भी धर्म की मिथ्या धारणाओं का खण्डन करते समय इनके मन में भय का संचार नहीं होता था। कबीर ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा था कि में चौराहे पर सिर पर कफन बांधकर खड़ा हूं, सत्य को प्रकट करते समय मुझे किसी का भय नहीं है, जिसमें सत्य को प्रकट

करने का साहस हो, वह मेरे साथ आये। ऐसे क्रान्तिकारी विचारों का उद्घोष करना उस युग में सम्भव हो सका, यह आश्चर्य की बात नहीं है।

(4) सहज भाषा यह ठीक है कि भक्त कवियों ने काव्यशास्त्र का अध्ययन नहीं किया था, जीवन के विद्यालय में सत्य और अनुभूत सत्य का पाठ ही ये पढ़ते रहे किन्तु कविता के माध्यम से इन्होंने जो कुछ लिखा, काव्यहीन भी नहीं है। जिस साधारण और सहज भाषा को इन्होंने अपनाया था, वह जन-भाषा थी और साधारण जनता के अधिक निकट होने के कारण लोकप्रिय भी थी। इस भाषा की लोकप्रियता का यही प्रमाण है कि इनकी रचनाएं जनता के दैनिक व्यवहार और बोलचाल में सूक्तियों के रूप में स्थान पा गई है। आज भी इन संतों की उक्तियों का प्रयोग हम व्यावहारिक भाषा में करते हैं।

(5) गुरु वन्दना और महत्वांकन भक्तिपूरित हृदय वाले कवियों ने गुरु को विशेष आदर

व महत्व दिया है। एक बात और ध्यातव्य है इन संतों ने अपने युग में जिन धाराओं और मान्यताओं का खण्डन किया उन्हीं को इनके नाम पर परवतीं युग में पंथ या मत के रूप में स्थान मिला। कबीर पंथ, नानक पंथ, मूलदासी, शिवनारायणी आदि पन्थों का उदय इस को प्रमाणित करता है कि सन्तों की साधना, उनके बाद पुनः पूजा का विषय बन गई। गुरु पूजा तो इन पंथों में अनिवार्य हो गई। नानक के नाम से सिक्ख मत का उदय हुआ, तो कबीर के नाम से कबीर पंथ चल पड़ा। वस्तुतः जनता की मनोवृत्ति अन्धानुकरण की होती है।

(6) सामाजिक हित यदि निर्गुण सन्त काव्य परम्परा के भक्त कवियों की वाणी के मूल

उद्देश्य पर विचार किया जाए तो, वह मानव समाज के सामूहिक कल्याण की वाणी है। दूसरे शब्दों में उसे धर्म निरपेक्ष सत्योन्मुखी वाणी कह सकते

हैं। संतों ने तथाकथित जाति या वर्ण व्यवस्था को स्वीकार न कर मानवमात्र को एक धरातल पर खड़ा किया था। उनकी दृष्टि से मानवतावाद ही एक ऐसा स्तर था, जिस पर समाज की व्यवस्था संभव थी। जिस लक्ष्य को ये सन्त कवि प्राप्त करना चाहते थे, वह सार्वजनिक हित से समन्वित सर्व जन सुलभ ध्येय था। अतः अपने युग में इन्होंने एक व्यापक वैचारिक क्रान्ति को जन्म देकर भारतीय जनता के समक्ष एकेश्वरवाद, सदाचार, सत्य, क्षमता और शाश्वत धर्म का आदर्श प्रस्तुत किया था। अवतारवाद, पूजा-सेवा, रोजा-नमाज, मन्दिर-मन्दिर, तीर्थ व्रत आदि को इन्होंने स्वीकार नहीं किया था।

(7) प्रेमाख्यानक काव्य और भक्ति काव्य निर्गुण संत कवियों के साथ ही उस युग में एक दूसरी काव्यधारा भी प्रवाहित हो रही थी, जिसे हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रेमाख्यानक काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है। भक्तिकाल को स्वर्ण युग बनाने में प्रेमाख्यान काव्य की दो धाराएं प्राप्त होती है एक धारा के कवि आध्यात्मिक प्रेम अर्थात् ईश्वरीय प्रेम के आख्यानों कविता के माध्यम से अंकित करते हुए उसे किसी अन्य लोक की अथवा अध्यात्म की कथा नहीं बनाते। इस दूसरी धारा के कवियों को हिन्दी साहित्य में वह श्रेष्ठ स्थान नहीं प्राप्त हो सका, जो पहली धारा के कवियों को प्राप्त है।

(8) सगुण भक्ति काव्य और स्वर्ण युग- हिन्दी साहित्य का भक्ति काल निर्गुण सन्त कवियों के द्वारा जिस प्रकार स्वर्ण युग प्रतीत होता है, उसी प्रकार सगुण भक्ति कवियों के द्वारा भी इस काल को स्वर्ण युग की अभिधा दी जा सकती है। सगुण भक्ति के रूप में उस काल की सम और कृष्ण काव्य धाराएं विशेष प्रसिद्ध हैं। राम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास और कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवि सूरदास ने भक्ति काव्य को सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। इन दोनों कवियों के माध्यम से सगुण

भक्ति काव्य विषय वस्तु, रसात्मकता, भावात्मकता, कलात्मकता और भक्ति भावना के रूप में स्वर्णिम रूप लेकर प्रस्तुत हुआ है। निर्गुण कवियों की भांति ही सगुण भक्ति कवियों ने हिन्दू जनता में ईश्वर के प्रति विश्वास पैदा किया, निराश हिन्दू जनता को नयी दिशा प्रदान की, भगवान के शक्तिशाली और सौन्दर्य से युक्त स्वरूप की झांकी प्रस्तुत की और लोक-मानव को मानवीय सम्बन्धों व पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति सजग बनाया। वैष्णव भक्त कवियों ने साम्प्रदायिक स्तर पर कृष्ण भक्ति का विविध रूपों में विकास किया और इस प्रकार भक्ति काल को स्वर्ण युग की संज्ञा दिलाने में उल्लेखनीय कार्य किया। काव्य शिल्प की दृष्टि से भी सगुण और निर्गुण दोनों ही श्रेणी के कवियों ने इस काल को भक्ति युग ही नहीं, अपितु स्वर्ण युग के निकट लाने का सार्थक प्रयास किया है।

10.5 निर्गुण भक्ति काव्यधारा की प्रमुख विशेषतायें

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की धारा को डा. रामकुमार वर्मा ने 'सन्त काव्य परम्परा' का नाम दिया। डा. पीताम्बरदत्त बड़थ्याल ने संत शब्द की व्युत्पत्ति शांत शब्द से मानी है और इसका अर्थ निवृत्ति मार्ग या बैरागी किया है। आचार्य प. परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि संत शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है, जिसने संत रूपी परमतत्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो, सतत् स्वरूप, नित्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका हो अथवा अवरोध की उपलब्धि के फलस्वरूप अखण्ड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया हो, वही संत है।

संत- मत का आविर्भाव हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। देश की विचित्र परिस्थितियों ने इस मत को जन्म दिया और संत मत के सामान्य भक्ति मार्ग में विविध वादों का समन्वय हुआ । इसमें हिन्दू-मुसलमान, गोरख पंथी, वेदान्ती, सूफियों एवं वैष्णवों के धार्मिक सिद्धान्तों का भी समन्वय हुआ। संक्षेप में इस मत के कवियों की सामान्य विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है -

1. काव्य-रचना मुख्य उद्देश्य नहीं- संत कवियों का लक्ष्य काव्य रचना नहीं था. उनकी रचनाओं में जन-जन के हित और उद्बोधन की भावना सन्निहित है। भावों के स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने प्रतीकों, उपमाओं, रूपकों की योजना अवश्य की है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि काव्योत्कर्ष अथवा काव्य सौष्ठव उनका साध्य नहीं था, उनकी भाषा का रूप भी स्थिर नहीं है। कविता को ये संत अपनी अनुभूत सत्यों का मर्म दूसरों के समक्ष अभिव्यक्त करने का एक उत्तम माध्यम समझते थे।

2. तत्व चिन्तन का स्वरूप- संत कवि मूलतः दार्शनिक थे फिर भी उनकी भक्ति रस से सिक्त बानियों में दार्शनिक तत्वों के निरूपण का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रयत्न अवश्य दृष्टिगोचर होता है। डॉ. बड़थ्वाल के मत से संत कवियों का परम तत्व एकेश्वरवादी विचारधारा से पुष्ट अद्वैतवाद के अधिक निकट है। संतों का ब्रह्मा त्रिगुणातीत, द्वैताद्वैत, विलक्षण, अलख, अगोचर, सगुण, निर्गुण से परे, प्रेम पारावार और दार्शनिकवादों तथा तर्कों से ऊपर है। वह अनुभूतिगम्य और सहज प्रेम से प्राप्य है।

3. साधना मार्ग- संतों की साधना का भवन ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति इन चारों स्तम्भों के सहज संतुलन पर टिका हुआ है। जिस प्रकार संत लोग अन्य विचारों में प्रगतिशील हैं वैसे ही साधना मार्ग के निर्धारण में भी पर्याप्त सजग है। निर्गुण संत ज्ञानत्मिका भक्ति के उपासक हैं। कोरा ज्ञान उन्हें अहंकार मूलक प्रतीत हुआ है। पोथी ज्ञान के भी वे विरोधी हैं। पोथी

ज्ञान के भार से लदा हुआ आदमी उस गधे के समान है जो चन्दन का भार ढोकर भी उसकी सुगन्ध का सुख नहीं प्राप्त कर सकता। इसी प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान और अप्रत्यक्ष इन तीनों प्रमाणों में से ये संत केवल प्रत्यक्ष या अनुभूति जन्य ज्ञान को ही प्रमाणिक मानने के पक्ष में हैं। कबीर ने कहा भी है 'तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आखिन की देखी ।'

4. भक्ति मार्ग- सत्य भाषण और सत्याचरण को संत कवि भक्ति का सर्वप्रमुख तत्व मानते

हैं। इसी को वे अपने शब्दों में कथनी की समरसता की संज्ञा देते हैं। नाम जप या 'नाम स्मरण' संतों की भक्ति का मूल आधार है। भक्ति के प्रेरक तत्वों में श्रद्धा, सत्संग, उपदेश, गुरु, जीवन तथा जगत की क्षण भंगुरता के ज्ञान से उत्पन्न वैराग्य भावना आदि का स्थान महत्वपूर्ण है। संत कवियों ने इन सबकी आवश्यकता और महत्ता का विवेचन विस्तार से किया है। आश्रय में निहित प्रेम या भक्ति को अभिव्यक्त करने वाले तत्वो में दैन्य, आत्म निवेदन मय आसक्ति आदि मुख्य हैं।

5. सूफीमत का प्रभाव- संत मत पर सूफी प्रेम साधना का प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कबीर ने लिखा है-

प्रेम बिना धीरज नहीं, विरह बिना वैराग।

सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग। जोगी जनम से बड़ा, सन्यासी दरवेस ।

बिना प्रेम पहुंचे नहीं, दुरलभ सतगुरु देस।

6. रहस्यवाद की प्रवृत्ति- संत कवियों ने शंकराचार्य के अद्वैत मत को लेकर अपनी रहस्यवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है, किन्तु इनका रहस्यवाद माधुर्य भाव से वेष्टित है। इन संत कवियों के विरह में लौकिक दाम्पत्य भाव के सहारे आत्मा का शाश्वत क्रन्दन व्यक्त किया गया है और यह मिलन सहज नहीं है।

7. रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध- प्रायः सभी सन्त कवियों ने रूढ़ियों, मिथ्याडम्बरों तथा अन्धविश्वासों की कटु आलोचना की है। इन्होंने मूर्ति पूजा, धर्म के नाम पर की जाने वाली हिसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, हज्ज आदि विधि विधानों, बाह्यआडम्बरों, जाति-पाति भेद आदि का डटकर विरोध किया है।

8. नारी के प्रति दृष्टिकोण- संत कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है। उनके विश्वासानुसार कनक और कामिनी ये दोनों दुर्गम घाटियां हैं। कबीर का कहना है कि-

नारी की झाई परत, अन्धा होत भुजंग।
कबीरा तिनकी कौन गति, नित नारी के संग।

जहां इन्होंने नारी की इतनी निन्दा की है वही दूसरी और सती और पतिव्रता के आदर्श की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। कबीर ने कहा है-

पतिव्रता कैसी भली, काली कुचित वुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, बारो कोटि सरूप ।।

9. लोक संग्रह की भावना- इस वर्ग के सभी कवि पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाले थे। नाथ पंथियों की भांति योगी नहीं थे। संतों ने आत्म शुद्धि पर बहुत बल दिया है। जहां एक और संत लोग कवि और भक्ति आन्दोलन के उन्नायक हैं, वहां समाज सुधारक भी। संत काव्य
में उस समय का समाज प्रतिबिम्बित है।

स्व -प्रगति परिक्षण

1. भक्ति काल की समय सीमा..... है।
2. भक्ति काल को .....धाराओं में बांटा गया है।
3. हिंदी साहित्य का .....स्वर्ण युग कहलाता है।
4. निर्गुण काव्य धारा के प्रमुख कवि .....है।

10.6 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रमअंतर्गत भक्ति काल की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों से भली भाँति परिचित हो सकेंगे। भक्ति काल के प्रमुख धाराओं को समझ सकेंगे निर्गुण काव्य धारा एवं उनकी प्रमुख रचनाकारों के बारे में जान सकेंगे । भक्ति आंदोलन का प्रारंभ दक्षिण भारत के अलवर भक्तों की परंपरा से हुआ । उत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियों ने इस आंदोलन का प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया। मुस्लिम शासको की धर्मांधता और इस्लाम के बलात् प्रचार एवं क्रूर धार्मिक नीति ने भी उत्तर भारत में हिंदू जनता में भक्ति भाव को दृढ़ता प्रदान की । भक्ति आंदोलन प्राचीन भारतीय मनीषा ज्ञान एवं दर्शन की एक ऐसी धारा है जो अत्यंत शक्तिशाली एवं व्यापक है ।

10.7 मुख्य शब्द

सुधीर्ग - लंबा चौड़ा, अति विस्तृत
भक्तिमय - भक्ति से जुड़ा हुआ
निर्गुण - निराकार

10.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. 1375 वि.से 1700 वि. तक
2. दो

3. भक्ति काल
4. कबीर

10.9 संदर्भ सूची

1. यादव, R. (2023). *प्राचीन काव्य और मध्यकालीन काव्य: ऐतिहासिक दृष्टिकोण*. जयपुर: ज्ञानदीप प्रकाशन.
2. शर्मा, A. (2023). *हिन्दी काव्य के इतिहास में मध्यकालीन काव्य की भूमिका*. लखनऊ: संस्कृत प्रकाशन.
3. वर्मा, S. (2020). *प्राचीन हिन्दी काव्य का इतिहास*. पटना: लोकभारती प्रकाशन.
4. शुक्ला, P. (2021). *मध्यकालीन काव्य और उसकी परंपरा*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
5. सिंह, M. (2022). *भारत में काव्यशास्त्र का विकास और मध्यकालीन काव्य*. भोपाल: साहित्य प्रकाशन.

10.10 अभ्यास प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के भक्ति काल की आविर्भाव की परिस्थिति एवं पृष्ठभूमि को स्पष्ट कीजिए।

2. 'भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग है' इस कथन की विवेचना कीजिए।

3. भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताएं लिखिए ।

4. भक्तिकाल को कितनी धाराओं में विभाजित किया गया है स्पष्ट कीजिए।

इकाई -11

संत काव्य और उनका अवदान

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 संत शब्द का अर्थ और पृष्ठभूमि

11.4 सन्त साहित्य की प्रगतिशीलता का कारण

11.5 संत काव्य की प्रवृत्तियाँ (मान्यतायें अथवा विशेषतायें)

11.6 संत काव्यधारा में कबीरदास का स्थान और महत्व

11.7 संत रैदास का काव्य

11.8 संत गुरूनानक और दादू का काव्य

11.9 मलिक मोहम्मद जायसी का काव्य

11.10 सार संक्षेप

11.11 मुख्य शब्द

11.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.13 संदर्भ सूची

11.14 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास के भक्ति काल के संत काव्य के विषय में बताया गया है। संतों ने अपनी काव्य के माध्यम से निर्गुण निराकार रूप की उपासना पर बल दिया।

इस इकाई में हम संत साहित्य के उद्भव, विशेषताये और उसकी प्रगति शीलता पर विचार करेंगे। संत काव्य की प्रवृत्तियां के बारे में अवगत हो

सकेंगे। संत काव्य धारा में संत कबीर के साहित्य की उपयोगिता को हम समझ सकेंगे। संत काव्य की परंपरा में संत रविदास ,संत गुरु नानक, संत दादू और मलिक मोहम्मद जायसी के काव्य को भली-भांति समझ पाएंगे।

11. 2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिंदी साहित्य के इतिहास के अंतर्गत हम संत साहित्य से परिचय हो सकेंगे।
- अपने पाठ्यक्रमअंतर्गत संत काव्य के उद्भव एवं उनकी विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे ।
- संत काव्य की प्रवृत्तियां के बारे में जान सकेंगे ।
- संत काव्य धारा में कबीर के स्थान को निर्धारित कर सकेंगे ।
- संत गुरुनानक ,दादू ,रविदास के काव्य सौंदर्य का आस्वादन ले सकेंगे

11.3 संत शब्द का अर्थ और पृष्ठभूमि

सन्त-काव्य का तात्पर्य- सन्त शब्द का संबंध प्रायः शान्त सन्त तथा आंग्ल भाषा के सेन्ट (Saint) आदि विविध शब्दों से जोड़ा गया। व्युत्पत्ति की दृष्टि से वह संस्कृत की 'अस्' धातु के वर्तमान कृदन्त रूप 'सत्' के बहुवचन रूप 'सन्तः' से निर्मित है। "ऋग्वेद में 'सत्' का प्रयोग ब्रह्म के लिये (सम्भवतः उसकी नित्य सत्ता के बोध के लिये) हुआ एवं 'तैत्तरीय उपनिषद्' में 'ब्रह्मविद्' के लिए भी। बाद में इसका प्रयोग (ब्रह्मविद् के) अच्छे भाव और अच्छे कर्मों के लिये होने लगा और फिर तो सामान्य रूप से 'सत्' का अर्थ 'अच्छा', 'असत्' का 'बुरा हो गया एकवचन 'सत्' के बदले जो उनका बहुवचन रूप 'सन्त' के लिए

उपयुक्त हुआ, वह हिन्दी के लिए कोई असाधारण बात नहीं है।" जहाँ तक सम्बन्ध है, इस शब्द के अर्थ का तो वह समय-समय पर नाना अर्थ देता रहा है। एक अद्‌वितीय परमतत्व (ऋग्वेद एवं तैत्तरीय उपनिषद), सदाचारी (महाभारत), पवित्रात्मा, (भागवत), परोपकारी (भर्तृहरि) बुद्‌धिमान और सदासद्‌विवेकी (कालिदास), मायातीत महापुरुष (कबीर) आदि इसके कुछ ऐसे ही अर्थ हैं। यहाँ तक कि मध्यकाल में सन्त एवं भक्त परस्पर पर्याय थे यद्‌यपि "16 वीं-17 वीं शताब्दी में नीची जातियों में उत्पन्न होने वाले, ब्राह्मण, वेद तथा दशरथि राम के प्रति अनास्थाशील जिन 'भक्तों' को जनता सन्त कहती थी और गोस्वामी जी ने जिन्हें निरा गंवार, ज्ञानाभिमानी, मूढ़ और पाखण्डी कहकर स्वीकार किया, 19 वीं शताब्दी में 'सन्त' उनका विशेषण न रहकर संज्ञा बन गया। इसी से, पारिभाषिक-प्रचलित अर्थ में, "सन्त शब्द का प्रयोग किसी समय विशेष रूप से सिर्फ उन भक्तों के लिये ही होने लगा था जो बिठ्‌ठल या वारकारी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक थे एवं जिनकी साधना निर्गुण भक्ति के आधार पर चलती थी। सन्त शब्द इनके लिए प्रायः रूढ़-सा हो गया था तथा कदाचित् अनेक बातों में उन्हीं के समान होने के कारण उत्तरी भारत के कबीर साहब एवं अन्य ऐसे लोगों का भी वही नामकरण हो गया।" यूँ तो भारतीय परम्परा में सन्त कई प्रकार के माने बताये गये हैं एवं ऋषि सन्तु, राजा सन्त, सुधारक और ज्ञानी सन्त, देवकोटि के सन्त, साधारण वर्णों के सन्त, नारी सन्त तथा पशु-पक्षी सन्तादि। फिर भी, मध्यकालीन हिन्दी काव्य के सन्दर्भ में, यह शब्द ज्ञानाश्रयी अथवा ज्ञानमार्गों निर्गुण भक्त-कविसमुदाय का सूचक है। इसी से, "सन्त शब्द आजकल अपनी पूर्ववर्ती उदात्त अर्थ-मर्यादा से विच्छिन्न होकर ऐसे ज्ञानी भक्तों की पारिभाषिक (और साम्प्रदायिक) संज्ञा बन गया है, जो नीची

जातियों में उत्पन्न हुए हैं, ब्राह्मण, वेद तथा सगुण ब्रह्म में आस्था नहीं रखते, जाति-पाँति के बन्धनों को स्वीकार नहीं करते हैं एवं आदि सन्त, कबीर, कबीर के किसी अनुयायी या कबीर जैसी कथनी-करनी वाले भक्त को अपना गुरु मानते हैं तथा उनके मत, रीति-नीति, आचार-व्यवहार तथा साधना की सीधी परम्परा में पड़ते हैं।" इन्ही की काव्य-रचनायें समग्रतः 'सन्त-काव्य' कही जाती है।

सन्त काव्य- पृष्ठभूमि और परम्परा- भारत में बहा के निर्गुण रूप की उपासना तो प्राचीन काल में ही प्रारम्भ हो चुकी थी, पर कालक्रम से सर्वप्रथम महाराष्ट्र के निर्गुण कवियों को 'सन्त' की संज्ञा दी गयी। विठ्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के साधक 'सन्त' ही कहलाते थे। सम्भवतः उन्हीं के अनुकरण पर, आगे चलकर कबीरादि को भी 'सन्त' और उनकी रचनाओं को 'सन्त काव्य' कहा जाने लगा जो कालान्तर में रूढ़ ही बन गया। यूँ, कबीर से पहले भी जयदेव, सधना, वेणी, नामदेव, त्रिलोचन, रामानन्द और सेना आदि सन्तों के उल्लेख मिलते हैं। कबीर के समकाल तथा परवर्तीकाल में तो इनकी पूरी श्रृंखला ही मिलती है। रैदास, पीपा, धन्ना, कमाल, धर्मदास, सिगा जी, दादू, रज्जब, मलूकदास, सुन्दरदास, प्राणनाथ, धरनीदास, यारी साहब, बुल्ला, दरिया, दूलनदास, चरनदास, गुलाल, गरीबदास, पलटू भीखा और तुलसी साहब इसी सन्त-परम्परा के प्रमुख नाम है। साथ ही साथ नानक, अंगद, अमरदास, रामदास अर्जुनदेव आदि सिक्ख गुरु, जम्भनाथ का बिश्नोई सम्प्रदाय, बाबालाली सम्प्रदाय, साईंदास, जसनाथी सम्प्रदाय, हीरादासी सम्प्रदाय आदि के कविगुण भी इसी वर्ग में आते हैं। सच तो यह है कि सन्त तथा सन्त-मत न तो कोई सम्प्रदाय विशेष है, न निश्चित दर्शन। यह तो विविध कवियों के सामान्य विचारों से युक्त रचित काव्य की सामूहिक संज्ञा है। निःसन्देह इस प्रकार का काव्य

कालान्तर में, उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक रचा जाता रहा है। जहाँ तक प्रश्न है, इसके उदय का तो वास्तव में यह पूर्ववर्ती नाथपंथ का ही विकसित रूप था जिसमें समयानुसार शंकर का अद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैत, इस्लाम का एकेश्वरवाद, योगियों का यौगिक साधना एवं सूफियों का प्रेम-पीर आदि को मिलाकर एक सर्वथा नये रंग-रूप में ग्रहण किया गया था।

सन्त-काव्य का वर्गीकरण- सन्तकाव्य का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है- (1) शुद्ध दर्शन की दृष्टि से तथा (2) सन्त-कवियों की साधना-प्रणाली की दृष्टि से। प्रथम के प्रमाण है-पूर्णतया अद्वैतवादी सन्त कवि (यथा कबीर दादू, मलूकदास) जबकि दूसरे के भेदाभेदवादी गुरूनानक । साधना-प्रणाली से देखें तो एक तरफ सुन्दरदास जैसे पूर्ण योग-साधक हैं तो दूसरी ओर दादू, नानक, रैदास ओर मलूकदासादि आंशिक योगसाधक, जिनके यहाँ योग उल्लेख मात्र ही है।

11.4 सन्त साहित्य की प्रगतिशीलता का कारण

सन्त कवियों का लक्ष्य काव्य रचना नहीं था। उनकी रचनाओं में जन जन के हित और उसके उद्बोधन की भावना सन्निहित है। सन्त सम्प्रदाय विश्व सम्प्रदाय है और उसका धर्म विश्व धर्म है। इस विश्व धर्म का मूलाधार है हृदय की पवित्रता। संतों की प्रगतिशील विचार धारा का एक प्रमुख कारण यह है कि इस मत का प्रचार निम्न वर्ग के अशिक्षित लोगों में रहा। इन संतों ने अगर एक ओर गुरु, भक्ति, साधु-संग, दया, क्षमा, सन्तोष आदि का उपदेश दिया है तो दूसरी ओर वे कपट, माया, तृष्णा, कामिनी, कांचन तीर्थ, व्रत, मांसाहार, मूर्ति पूजा और अवतारवाद के विरोधी थे। जिस युग में संत मत के कवियों की सृष्टि हुई वह अज्ञान, अशिक्षा और अनैतिकता का युग था, संतों की पीयूष वर्षिणी उपदेशमयी वाणी ने उनमें एक दृढ़ नैतिकता की प्रतिष्ठा

की। अपनी इसी प्रगतिशील विचारधारा के कारण इस सम्प्रदाय ने धर्म का ऐसा स्वाभाविक, निश्छल, व्यवहारिक तथा विश्वासमय रूप जन भाषा में उपस्थित किया जो विश्वधर्म बन गया और अब भी जन जीवन में पुनः जागरण का संदेश दे रहा है। इनकी वाणी में जो उपदेश हैं वे केवल दर्शन का विषय न होकर जीवनरस से ओत-प्रोत हैं। उनमें अनुभूति, सौष्ठव और जीवन का अमर संदेश है। संत साहित्य की प्रगतिशीलता का एक मुख्य कारण तत्कालीन परिस्थितियां थीं। मुसलमानी संस्कृति के प्रभाव से हिन्दू जाति के निम्न वर्ग में नवीन जागृति आई। उन्होंने देखा कि मुसलमानों में जांति-पांति तथा छुआछूत का कोई भेद नहीं है। सहधर्मी होने के कारण वे सब समान हैं। इस स्थिति को देखकर संतों ने रूढ़िवाद एवं मिथ्याडम्बर का विरोध करना शुरू कर दिया। 'जाति-पांति न पूछे नहि कोई, हरि को भजै सो हरि का होई' के अनुसार उनके मत में जाति-पांति का कोई महत्व नहीं था। संत लोग साधारण धर्म तो मानते थे, किन्तु साम्प्रदायिकता या वर्णाश्रम सम्बन्धी विशेष धर्म के पक्ष में न थे। संतों ने वर्णाश्रम व्यवस्था का समूल नाश करना चाहा। चाहे संस्कृति की दृष्टि से यह हेय हो किन्तु तत्कालीन परिस्थिति के कारण यह आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी। उन्होंने हीन वर्षों को उच्च वर्गों के स्तर पर लाने की चेष्टा की। संतों ने जिस साधारण धर्म को स्वीकार किया है, वह एक प्रकार से शुद्ध मानव धर्म ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुसलमान एकेश्वरवादी, पैगम्बर धर्म का मूर्ति खण्डन और एकेश्वरवादी और हिन्दू मुस्लिम भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के कारण जो विषम परिस्थितियां उत्पन्न हो गई थी, उनका प्रभाव सन्तमत पर स्पष्ट है। वास्तव में निर्गुण सन्त काव्य धारा अपने समय का पूरा प्रतिनिधित्व करती है।

11.5 संत काव्य की प्रवृत्तियाँ (मान्यतायें अथवा विशेषतायें)

(अ) भावपक्ष सम्बन्धी-

निर्गुण की उपासना- सभी सन्त कवि निर्गुण के उपासक हैं। उनका ब्रह्म अविगत् है। उसका न तो कोई रूपाकार है एवं न निश्चित आकृति। वह तो अनुपम, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वसुलभ है। घट-घट में बसता है तथा बाहोन्द्रियों से परे है। स्वयं सन्तकवि कबीर के शब्दों मे-

'जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पहुप बास से पातरा, ऐसा तत्त अनूप ।।'

इसी निर्गुणोपासना के कारण वे सगुण का विरोध करते हैं तथा तर्कोधार पर उसकी निस्सारता प्रकट करते हैं; यथा-

'लोका तुम ज कहत हौ नन्द कौ, नन्दन नन्द धू काकौ रे।
धरनि अकास दोउ नहिं होते, तब यह नन्द कहाँ धौ रे ।'

समन्वयपरक एकेश्वरवाद की स्थापना- सन्त कवि जीवन के सभी क्षेत्रों में समन्यवादी हैं। निःसन्देह धर्म तथा दर्शन भी इसका अपवाद नहीं है। यही कारण है कि, मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्नः' में यकीन न कर ये ईश्वर के एक सामान्य, सहज-सुलभ रूप को ही मानते हैं। कबीर में यह बात और भी अधिक रूप-मात्रा में मिलती है। वे तो सगुण-निर्गुण को भी एक ही मानते हैं- "गुण में निर्गुण, निर्गुण में गुण, बारि छाँडि क्यूं बहिये।"

एकेश्वरवाद मूलतः निर्गुण वैष्णव विचारधारा है। इसके अनुसार ब्रह्म एक ही है, जो लीला में भरकर 'स्व-विस्तार' करता है। माया-बाधा से ही वह भिन्न प्रतीत होता है। यह माया-बाधा अज्ञान की देन है तथा

इसको गुरु-ज्ञान से दूर किया जा सकता है। कबीर इसी एकेश्वरवाद की स्थापना करते हैं।

रहस्यवाद- सन्त कवियों ने स्थान-स्थान पर अपनी उक्तियों को रहस्यमय रूप में प्रकट किया है। फलतः उनकी उक्तियाँ अस्पष्ट, अटपटी तथा गूढ़-गहन बन गई। कबीर की उलटवासियों में ये सभी बातें उपलब्ध हैं। इसके अतिरित रहस्यवाद की अन्य स्थितियों और रूप भी इनमें भरपूर मात्रा में मिलते हैं। कहा तो यहाँ तक गया है कि "रहस्यवादी कवियों में कबीर का आसन सबसे ऊँचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्ही का है।" यहाँ पर दृष्टव्य बात यह भी है कि कबीर की रहस्यवादी उक्तियाँ केवल शुष्क और बौद्धिक मात्र नहीं है वरन् इनमें तो सूफियों के 'प्रेम' तथा वैष्णवों की भक्ति के साथ-साथ काव्यात्मकता भी पूरी-पूरी मात्रा में है। इन गुणों ने निःसन्देह कबीरीय रहस्यवाद को 'मौलिक' बना दिया है। 'फलतः कबीर का रहस्यदिव भारतीय अद्वैतवाद तथा इस्लामी सूफीवाद की संगमस्थली होने पर भी इनसे वाशिष्ट है।"

उभयपक्षी श्रृंगार- श्रृंगार का मूल भाव है 'रति' (प्रेम) तथा उभय पक्ष है-संयोग एवं वियोग । ध्यान दें तो "प्रेम की व्यंजना का तीव्रतम् रूप पति-पत्नी-सम्बन्ध में ही होता है। कारण पति-पत्नी में अन्तराल नहीं रहता। सन्तों ने इसी कारण अपनी प्रेमासक्ति, राम को पति तथा स्वयं को उनकी पत्नी मानकर, व्यक्त की है।" इन्होंने वैष्णवों तथा सूफियों से उनका दाम्पत्य श्रृंगार ग्रहण किया एवं उसके दोनों पक्षों का विशद चित्रण किया। यही कारण है कि इनके यहाँ संयोग और वियोग दोनों के बड़े मार्मिक और विविध अवस्थाओं से युक्त चित्र मिलते हैं।

सामाजिक अन्याय का विरोध- मध्यकाल के अधिकतर सन्त कवि समाज के निम्न वर्ग से संबंधित थे। उन्होंने अपने जीवन में

सामाजिक विषमता तथा तजनित अन्यायों को देखा, भोगा था। अतएव उनमें इसके प्रति विरोध-भावना होनी स्वाभाविक ही थी। प्रारम्भ में, विशेषतः महाराष्ट्री सन्तों में, विरोध का यह स्वर सरल सहज था, पर कबीर में आकर तो यह आक्रोशमय एवं कटुतर तक बन गया। निःसन्देह इसका एक कारण कवि की निर्भीकता एवं अखण्डता भी थी। कबीर ने अपने समकालीन समाज और उसके विविध पक्षों पर कटु-तीखे प्रहार किये हैं। सच तो यह है कि उनकी उन व्यंगोक्तियों ने उनको सुधारक तथा युग-नेता तक बना दिया है। "सच पूछा जाये तो आज तक हिन्दी में ऐसा जबर्दस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ।"

बाह्याडम्बरों का विरोध- संत कवियों ने अपने युगीन समाज को आँखें खोल कर देखा एवं उसके सच्चे रूप को जनता के सामने जैसे का तैसा रखा भी था। कबीर निःसन्देह इस दृष्टि से भी अग्रणी कवि हैं। उन्होंने हिन्दू तथा मुसलमान दोनों में प्रचलित धार्मिक-सामाजिक आडम्बरों के ढोल की पोल खोली है। शैव हो या शाक्त, ब्राह्मण हो या मुल्ला, मुंड मुंडाने वाला साधु हो या माला फेरने वाला पण्डित, सभी के पाखण्डी रूप कबीर ने उजागर किये है। इसी तरह मूर्ति-पूजा, माला, छापा-तिलक, तीर्थाटन, वेद-शास्त्र, कुरा-पुरान, मक्का-मदीना, रोजा-नमाज, न जाने कितने आडम्बरों का विरोधपरक मजाक उड़ाया है, न जाने कितनी रीति-परम्पराओं का उन्मूलन किया है कबीर ने। सच में तो उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित समस्त अन्धविश्वासों, रूढ़ियों एवं मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्ममतापूर्वक सभी पर प्रहार किया।"

लोक-कल्याण की भावना- ये सन्त कवि मात्र विरोधी नहीं हैं। गहराई में झांकें तो उनके व्यंग्य-विरोध का मूलोद्देश्य लोक-कल्याण करना तथा सच्ची मानवता की प्रतिष्ठा करना है। वे तो सबको 'हरि का

बन्दा' मानते हैं एवं जागृति के लिये समझाते हैं। ये कवि लोक-कल्याण भी बाह्याडम्बरों से नहीं, 'मन की पवित्रता' से मानते हैं।

नारी-विरोध- सन्त कवि मूलतः नारी के नहीं बल्कि उसके 'कामिनी' रूप के विरोधी हैं। निःसन्देह इसका सबसे बड़ा कारण तत्कालीन समाज में नारी के इसी भोग्या रूप की प्रधानता का होना है। कबीरादि ने नारी को प्रायः इसी रूप में ग्रहण किया है, यद्यपि 'सती' को अंग और पतिव्रता निहकरमी को 'अंग' एवं दाम्पत्यमूलक प्रतीकों वाले पदों (गीतों) में उन्होंने नारी की प्रशंसा भी की है। माया को कामिनी रूप प्रदान कर कबीर भी, अन्य सन्तों की भाँति, नारी को त्याज्य बताते हैं। उनके मतानुसार, नारी नरक का द्वार, अवगुणों की जन्मदाता, मोहिनी, ठगिनी, विषैली, भुजंगिनी आदि न जाने क्या-क्या है।

गुरु-महिमा का गान- सन्त-काव्य में गुरु वह शक्ति मानी गयी है, जो साधक-भक्त की अज्ञानता को दूर करके उसको सच्चा ज्ञान प्रदान करती है। सूफियों की भाँति यह गुरु अनुपम, अत्यधिक पूज्य, ब्रह्म-ज्ञान प्रदाता और मायादि विकारों से दूर करने वाला है। इसी से ये कवि गुरु को न केवल इन गुणों से युक्त मानते हैं, बल्कि उसको ब्रह्म के समकक्ष रख उसका आदर भी करते हैं।

(ब) कलापक्ष सम्बन्धी

सरल मिश्रित भाषा उस काल में भी संस्कृत यद्यपि सारे भारत में व्याप्त थी, पर वह प्रायः विद्वत् वर्ग तक सिमट कर रह गयी थी। दूसरी तरफ, जनसमाज के अधिकाधिक निकट रहने वाला और विशेषकर अपने काव्योपदेशों से उसी को झिंझोरने वाला कवि वर्ग प्रान्तीय या लोकसभाओं की अलख जगा रहा था। काव्य की रीति-नीति तक की उपेक्षा कर देने में इसको आपत्ति नहीं थी। निःसन्देह इनमें सर्वाधिक अग्रणी रहे थे-सन्त कवि, विशेषतः कबीर। सोचें तो, इन

'मसि कागद छुओ नहीं' वाले सन्त-कवियों के लिए यह स्वाभाविक भी था। उन्मुक्त भाव से रचे गये जन-काव्य के लिए नियमबद्ध-शुद्ध भाषा लाभप्रद नहीं थी और न ही ये कवि (एकमात्र सुन्दरदास को छोड़कर) काव्यशस्त्र ज्ञाता थे। ये तो निम्न वर्ग से आये थे, उसी से संबंधित थे। स्वयं का इनका घुमक्कड़पन (देशाटन) और अलग-अलग स्थानों से संबंधित इनका अनुयायी समुदाय भी इसी प्रवृत्ति को बढ़ाने में सहायक था। समग्रतः इन्होंने 'सुधुक्कड़ी' या 'खिचड़ी' कही जाने वाली, किन्तु एकदम सर्वसुलभ, सर्वसरल भाषा को ही अपनाया और कबीर के शब्दों में, यही माना कि

"संसकिरत है कूप-जल, भाखा बहता नीर।
जब चाहो तब ही डुबौ, सीतल होय सरीर ।।"

से तो सीधी बात सीधे तरीके से कहने के कायल थे तथा उसूलन कथित अथवा सर्वसाधारण के रोजमर्रा की बोलचाल की भाषा में ही अपना सन्देश रखने के पक्षपाती भी थे, यद्यपि इसी के फलस्वरूप ये प्रान्तीयता के भाषा-रंग से भी बच नहीं सके। नानक में पंजाबीपना तथा कबीर में बनारसीपना की भरमार इसी का प्रमाण है। साथ ही, इनकी काव्य-भाषा का एक रूप स्थिर कर पाना भी मुश्किल बन गया है, यथा कबीर की भाषा, जिसको स्वयं कबीर ने 'पुरवी' किन्तु दूसरों ने 'बनारस-मिर्जापुर-गोरखपुर की बोली, भोजपुरी का ही एक रूप, 'राजस्थानी-पंजाबी मिश्रित खड़ी बोली या सधुक्कड़ी', 'संध्या भाषा', 'अवधी तथा ब्रज के समीप' आदि न जाने क्या क्या कहा एवं माना। समग्रतः मिश्रणप्रधान होने से इसको 'मिश्रित भाषा' ही माना जा सकता है।

प्रतीक योजना- सन्त-काव्य के प्रतीक मुख्यतः बौद्ध तथा नाथ-सम्प्रदायों से या फिर सीधे-सीधे जन-जीवन के लिए गये हैं। मुख्यतः

ये चार प्रकार के हैं- (1) पारिभाषिक (यथा गगन गुफा, गगन मंडल, चन्द्र, सूर्य, सरस्वती, गंगा-यमुना, बाधिन, पाताली आदि), (2) संख्यावाचक शब्दों से युक्त (यथा दुई पाठ, त्रिकुटी, तीन गाउ, चार चोर, अष्ट कमल, दशम् द्वारादि), (3) अन्योक्ति परक (यथा चौराहा, बालम, चदरिया, गांव, दुलहिन, भरतार आदि) तथा (4) उलटबांसी वाले प्रतीक (यथा मछली, मृग, सर्प, कुंआ, खरगोश आदि)। उक्ति-वैचित्र्य तथा भाव-वृद्धि इनकी अपनी विशिष्टताएं हैं।

छन्द तथा अलंकार- सन्त कवि न तो काव्यशास्त्र के अध्येता थे एवं काव्यशास्त्रीय नियमों

से बद्ध होकर काव्य-सृजन करना इनका लक्ष्य था। 'काव्यगत' तो इनके यहाँ बाइ-प्रौडक्ट है अर्थात् अपने-आप बन जाने वाला। फलस्वरूप छन्द-अलकारों के नियमबद्ध रूप या पांडित्य प्रदर्शन करने वाली चमत्कारिता इन कवियों में नहीं मिलती। फिर भी छन्द-अलंकार दोनों ही इनके मध्य में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, किन्तु सिर्फ साधन रूप में। साखी (दोहा) और सबद (गीत या पद) इनके प्रिय छन्द हैं यद्यपि चौपाई, कवित्तादि भी मिल जाते हैं। सुन्दरदास तो 'सवैये के बादशाह' माने गये। जहाँ तक प्रश्न है-अलंकारों का तो मुख्यतः यहाँ रूपक, उपमा, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा, श्लेष तथा अनुप्रासादि बहुप्रचलित अलंकार ही प्रयुक्त हुए हैं।

युगबोध- सन्त-काव्य का मूल दृष्ट है-युग-चेतना को जागृत करके युगबोध का संदेश देना। वास्तव में, 'अपने समय के सजग प्रहरी' ये ही थे। इन्होंने अपने युग को आँख खोलकर देखा ही नहीं उसकी कटुता, विषमताओं, विसंगतियों तथा आडम्बरादि का डटकर, निर्भीकतापूर्वक, विरोध भी किया। साथ ही साथ मानवता-मात्र का सन्देश भी दिया। सच तो यह है कि इनसे अधिक स्पष्टवक्ता, क्रांतिदर्शी, समाज सुधारक

एवं निर्भीक कवि अन्य किसी भी वर्ग सम्प्रदाय में नहीं मिलते। कबीर इसका सर्वो त्तम प्रमाण हैं।

11.6 संत काव्यधारा में कबीरदास का स्थान और महत्व

कबीर के काव्य सृजन का उद्देश्य भव्य कविता करना नहीं वरन् अपनी अनुभूतियों का शब्दांकन करना था। वह मूलतः सन्त थे और उन्होंने आध्यात्मिक साधना हेतु हो वाणी का माध्यम ग्रहण किया। उनकी आध्यात्मिक साधना एक और तो अगोचर, अगम्य, परब्रह्म से साक्षात्कार को संकल्पित है व दूसरी और इसी आध्यात्मिक साधना ने अद्वेतवाद के व्यावहारिक रूप से समाज में व्याप्त कदाचार व कुरीतियों को समूल नष्ट करने का निश्चय किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का अभिमत है 'कबीर ने कभी काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की, तथापि उनके आध्यात्मिक रस की नगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में रस इकट्ठा नहीं हुआ था।'

कबीर के काव्य में पौरुष सहज ही झलकता है। ऐसे हिन्दू कवि बिरले हैं, जो अपने संकल्प, अनुभूति के प्रति निष्ठा भाव रखते हों। कबीर हिन्दी काव्य के वह सूत्रधार थे जिन्होंने कविता को आम जिन्दगी का दर्पण बनाया तथा समाज और धर्म को अपने वर्ण्य विषय का केन्द्र बिन्दु चुना।

समीक्षा की दृष्टि से उनके काव्य को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है साखी, पद व रमैनी जिनका वर्ण्य विषय समाज ही है। युगदृष्टा कबीर के काव्य में वेदान्त, प्रेमसाधना, संसार की नश्वरता, माया की प्रबलता, हृदय की शुचिता, धार्मिक आडम्बरों का विरोध व साम्प्रदायिक एकता का प्रतिपादन रहा है। डा. रामकुमार वर्मा ने उनके

काव्य सृजन के मन्तव्य को इस प्रकार उद्घाटित किया है 'इन ग्रन्थों का वर्ण्य विषय प्रायः एक ही है वह है ज्ञानोपदेश । कुछ परिवर्तन कर वही विषय प्रत्येक ग्रन्थ में प्रतिपादित किया गया है। विस्तार में उनके वर्ण्य विषय यह है योगाभ्यास, भक्त की दिनचर्या, सत्य वचन, विनय और प्रार्थना, आरती उतारने की रीति, नाम महिमा, सन्तों का वर्णन, सत्यरूप निरूपण, माया विषयक सिद्धान्त, गुरु महिमा, सत्संगति आदि। ये विषय वही है जिनके द्वारा घूम फिरकर निर्गुण ईश्वर का निरूपण हो जाता है। अनेक स्थलों पर सिद्धान्त और विचारों में आवर्तन भी हो जाता है।'

बौद्धिकता की प्रधानता- कबीर का काव्य असाधारण है। उनका समूचा जीवन सांसारिक

वृत्तियों तथा सामाजिक बुराइयों को दूर करने में गया। उनका काव्य सायुक्त व मौलिकता से परिपूर्ण है। उन्होंने कविता लिखने के लिए मात्र शब्दों का चयन नहीं किया, बल्कि उन शब्दों का चिन्तन व मन्थन किया। तत्पश्चात् उसे अपने काव्य में प्रयुक्त किया। इस प्रकार उनका काव्य भावुकता से परे बुद्धि तत्व की प्रधानता लिए है।

भाव पक्ष - कबीर के साहित्य में रसानुभूति अद्भुत है। उपदेशात्मक सूक्तियां व हठ योग सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त उनका काव्य पूर्ण रससिक्त है। उनकी कविता में शान्त, अद्भुत व श्रृंगार रसों की त्रिवेणी मिलती है। अपने मानसिक विकारों से संघर्ष सम्बन्धी काव्य को वह शान्त रस से आप्लवित करते हैं। उनके काव्य में भावपक्ष भी ज्ञान तत्व की भांति विद्यमान है। आध्यात्मिक विचारों को अपने काव्य का विषय बनाकर उसे सरलता व सहजता से लोकमात्र में प्रस्तुत कर कबीर ने सही अर्थों में काव्य की आत्मा को पहचाना है। उनके काव्य में भक्ति भावों की प्रचुरता है। उन्होंने आत्मा-परमात्मा समान

अदृश्य पदार्थों को प्रतीक व उपयुक्त उपमानों के द्वारा सादृश्य के रूप में चित्रित किया है। आत्मा को प्रेयसी व परमात्मा को प्रेमी मानकर वह सरस काव्यवर्षण करते हैं।

कबीर ने संयोग व वियोग का सशक्त चित्रण कर अपनी पटुता का परिचय दिया है। उनके आध्यात्मिक संयोग व वियोग के चित्रों की तुलना में अन्य कवि सफलता के सोपान तक पहुंचने में असमर्थ रहे हैं। इस सन्दर्भ में एक विद्वान समीक्षक का मत प्रासंगिक है 'कबीर की कविता में तो भावना नृत्य करती है और उसी से रस प्रवाह होता है। कबीर की रहस्यमयी कविताओं में जो रस की धारा बहती है, वह आत्मा की कामना और वासना के क्षेत्र से बाहर निकालकर निर्वाण के परमानन्द की स्थिति को प्राप्त कराने में समर्थ होती है। इस स्थिति को प्राप्त करके कवि स्वयं प्रेम रस का पान करता है और बहा के रंग में रंगकर मतवाला हो जाता है। कबीर की रचनाओं में इस रस की न जाने कितनी शीतल धाराएं बहती हुई मिलती हैं, जिनमें स्नान करके सहृदय पाठक जीवन की वास्तविक शान्ति को प्राप्त कर सकता है।'

रसानुभूति - रस की दृष्टि से कबीर के काव्य में मुख्यतः तीन रसो यथा श्रृंगार, अद्भुत एवं शान्त का समावेश है किन्तु प्रधानता श्रृंगार की है। उनका भक्ति व आध्यात्मिक साहित्य प्रिय और प्रियतम की अटूट कड़ी है जो आत्मा परमात्मा की प्रतीक है। कबीर ने अपने काव्य का सृजन रस सिद्धान्त के अनुसार किया, काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार नहीं किया, फिर भी श्रृंगार उनके काव्य में प्रभावी रूप से उभरकर आया है।

(अ) श्रृंगार रस- कबीर ने दाम्पत्य प्रेम के माध्यम से ब्रह्म का रहस्यवादी चित्रण किया है। उनके पदों में श्रृंगार के दोनों पक्षों, संयोग व वियोग का वर्णन समान रूप से प्रतिबिम्बित होता है।

(ब) अद्भुत रस - स्थायी रूप से विस्मय जिन उक्तियों में विद्यमान होता है वे आश्चर्यानुभूति होती हैं। यह उलटबांसियां अधिकांश अद्भुत रस से अभिसिक्त हैं। उन्होंने अद्भुत रस में अलौकिक व अदृश्य का सजीव वर्णन कर इस रस को प्रचुरता से अपने काव्य में विस्तीर्ण किया है।

(स) शान्त रस- भक्ति भावना से प्रेरित कबीर की कविता में शान्त रस का प्राधान्य है। जीवन के विभिन्न आयामों को उजागर कर मानवीय संवेदनाओं की सहज प्रस्तुति में शान्त रस का वर्णन हुआ है। इस रस में उन्होंने, सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार, सत्य की अवधारणा का प्रतिपादन, जीवन के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात किया है।

अलंकार सौन्दर्य- कबीर के काव्य में अनायास ही बहुलता में अलंकारों का समावेश है। कबीर के काव्य में उपमा, रूपकों की तो प्रचुरता है ही, साथ ही अन्योक्ति, लोकोक्ति, सांगरूपक, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार भी दृष्टव्य हैं। यमक, श्लेष, अनुप्रास अलंकारों की भी आवृत्ति उनके काव्य को सौन्दर्य प्रदान करती है।

कबीरदास ने अपने काव्य में अलंकारों का सहज ही प्रयोग किया है। काव्य प्रतिभासम्पन्न होने के उपरान्त भी कबीर के जीवन का लक्ष्य कविता करना नहीं, बल्कि इसके माध्यम से साधना, भक्ति भावना का प्रचार-प्रसार व सामाजिक कूप-मण्डूकता पर प्रहार करना रहा।

प्रतीक विधान- काव्य में सौन्दर्य की दृष्टि से प्रतीक योजना का अपना विशेष महत्व है। प्रतीक का शाब्दिक अर्थ निशान, अंग, पता व अवयव है। प्रतीक के द्वारा जो मूलतः अप्रस्तुत है, हम प्रस्तुत के द्वारा उसके गुण-धर्म का स्मरण करते हैं। मानव जीवन प्रतीकों से आप्लावित है। कुच प्रतीक सार्वभौमिक होते हैं, जैसे श्वेत रंग पवित्रता का एवं सिह पौरुष का प्रतीक है।

कबीर की अनुभूतियां आध्यात्मिक रंगों से सराबोर हैं। अपने विचारों को बोधगम्य बनाने के लिए उन्हें अधिक प्रतीकों का आलम्बन करना पड़ा है। प्रतीक शैली वस्तुतः कबीर-काव्य की प्रमुख शैली कही जा सकती है। उनके काव्य में कुछ प्रतीक तो विचित्र हैं जिनका प्रतीकात्मक अर्थ खोजना कठिन है। इन प्रतीकों का आद्यात्मिक अर्थ जाने बिना उनके काव्य को समझना सरल नहीं है। उनके द्वारा प्रस्तुत प्रतीकों के उदाहरण इस प्रकार हैं।

1. दाम्पत्य प्रतीक -

दुलहिनी गाबहुं मंगलाचार ।
लाली मेरे लाल की, जित देखौंतित लाल।
लाली देखनि में चली, मैं भी हो गयी लाल ।।

पारिभाषिक प्रतीक -

गंगतीर मोरी खेती बारी, जमुनातीर खरिहाना।
सातों बिरवी मोरे वीपजें, पांचू मोर किसाना ।।

आकासे मुख औंधों कुवां, पाताले पनिहारि ।
ताकां पाणि को हंसा पीवै, बिरला आदि विचारि ।।

उलटबांसियां- कबीर के काव्य में उलटबांसी पद्धति उल्लेखनीय है। इनमें लोक-विपरीत बातें कही गई हैं। ऊपरी अर्थ बोध होने पर इन लोक विरुद्ध बातों की प्रस्तुति से श्रोता अथवा पाठक को आश्चर्य होता है। लेकिन इन प्रतीकों के आध्यात्मिक अर्थों का जब उद्घाटन होता है तब हमें यह असंगत अथवा विरोधमूलक प्रतीत नहीं होती। कबीर के

काव्य में अलंकार प्रधान उलटबांसी, प्रतीक प्रधान उलटबांसी व अद्भुत रस प्रधान उलटबांसी के दिग्दर्शन मुख्यतः होते हैं।

छन्द - कबीर ने अपने काव्य में मुख्य रूप से मुक्तकों का ही प्रयोग किया है। उन्होंने छन्दों में दोहा, चौपाई का प्रयोग किया है। साखियां दोहा छन्द में हैं और रमैनी में कुछ चौपाइयों के पश्चात् एक दोहा है। इसी क्रम में रमैनी का सृजन किया है।

भाषा- कबीर की भाषा में राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं का मिश्रण है। उनकी भाषा को साधुक्कड़ी भी कहा जाता है जिसमें बिना व्यतिक्रम के विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। कबीर की भाषा के सम्बन्ध में डा. सुनीतिकुमार चटर्जी का कथन उल्लेखनीय है-

'कबीर यद्यपि भोजपुरी क्षेत्र के निवासी थे, किन्तु तात्कालीन हिन्दुस्तानी कवियों की तरह उन्होंने बजभाषा तथा कभी-कभी अवधी का भी प्रयोग किया। उनकी ब्रजभाषा में भी कभी-कभी पूर्वी (भोजपुरी) रूप झलक आता है, किन्तु जब वे अपनी भोजपुरी बोली में लिखते हैं जो ब्रजभाषा तथा अन्य भाषाओं के तत्व प्रायः दिखाई पड़ते हैं।

आचार्य श्यामसुन्दरदास का मत है कि 'कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है क्योंकि वह खिचड़ी है। खड़ी, बज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी, आदि अनेक भाषाओं का पुट उनकी उक्तियों पर चढ़ा है।'

विभिन्न विद्वानों की सम्मति से कबीर की भाषा के सम्बन्ध में यह विशेषताएं उभरकर आती

1. कबीर की बोली का प्रमुख आधार पूर्वी बोली (भोजपुरी व अवधी) है।
2. कबीर की भाषा पर खड़ी एवं बजभाषा का अधिक प्रभाव है।

3. कबीर की भाषा में राजस्थानी एवं पंजाबी भाषा के शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग हुआ है।

4. कबीर की भाषा साधुक्कड़ी मानी जाती है। जिसे पंचमेल खिचड़ी की संज्ञा दी जाती है। उसे किसी एक भाषा की परिधि में नहीं बांधा जा सकता।

5. उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा का रूप अधिकांशतः विषय व भाव के अनुकूल है।

साहित्य में स्थान- कबीर का प्रमुख ध्येय कविता कराना नहीं, वरन् अपनी आत्मानुभूतियों का प्रचार प्रसार कर मानव को संयमित रास्ते का अनुसरण कराना था। भाषागत दोष होने के उपरांत भी कबीर का हिन्दी साहित्य में उच्च स्थान है। इन्होंने पहली बार कविता को धरातल से जोड़ा व आम-आदमी एवं कविता का परस्पर तादात्म्य स्थापित किया। कबीर का साहित्य वस्तुतः उच्च नैतिक आदर्शों का प्रतिस्थापक है। उनका जीवन और काव्यादर्श समान रहे। वह समरसता व मानवता के पुजारी हैं। हिन्दी साहित्य में कबीर मात्र कवि न होकर एक लोकनायक के रूप में अवतरित हुए है जो समाज की सड़ी गली प्रथाओं का समूल नाश करके इस धरा को स्वर्ग बनाने का उद्यम करते हैं। निर्गुण भक्तिधारा के श्रेष्ठ कवि कबीर काव्य में आध्यात्मिक प्रभाव के प्रवर्तक हैं। उनकी वाणी में कला पक्ष का अभाव होते हुए भी भावगत सरलता है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कबीर हिन्दी जगत का वह व्यक्तित्व है जो समता, विश्वबन्धुत्व व सामाजिक न्याय का अनुयायी है।

11.7 संत रैदास का काव्य

रैदास, कबीर-परंपरा के संत हैं। उनका जन्म भी बनारस में ही हुआ था- कबीर की जन्मभूमि लहरतारा से दक्षिण मडुवाडीह में। एक ही नगर और एक ही विचारधारा बारा के के होने के नाते दोनों के मिलने-जुलने की

कल्पना की जा सकती है। स्वभाव से दोनों भिन्न थे। कबीर में ओज, अवखड़ता और प्रखरता थी तो रैदास में शांति, संयम और विनम्रता। कबीर में जुलाहा जैसी निम्न जाति में पैदा होने के कारण कोई ग्रंथि नहीं थी। वे अपने को ब्राह्मण या शेख से छोटा नहीं समझते थे।

किन्तु रैदास में यह ग्रंथि थी। चमार जाति का शोषण और अपमान अनंत काल से होता रहा है। जूता बनाना, मरे जानवरों को ढोना, हलवाही करना उनका पेशा रहा है। अपने ओछे जन्म को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है-

जाती ओछा पाती ओछा, ओछा जनमु हमारा। रामराज की सेवा कीन्ही, कहि रविदास चमारा ।।

कबीर की विचारधारा के केन्द्र में हिन्दुओं-मुसलमानों का शोषित-प्रताड़ित वर्ग था तो रैदास के विचार-केन्द्र में चमारों और सवर्ण हिन्दुओं का भेदभाव। इस भेदभाव की तीव्रता का अनुभव करते हुए कभी-कभी उनके धैर्य का बाँध टूट जाता था-

जाके कुटुम्ब सब ढोर ढोवंत
फिरहिं अजहूं बानारसी आसपासा।
आचार सहित बिप्र करहिं डंडउति
तिन तनै रविदास दासानुदासा ।।

हजारों वर्षों से दबाई हुई शोषित जाति का कंठ इसी आवेग से फूटता है। रैदास को आचारनिष्ठ वित्रों का दंडवत करना भक्ति-आँदोलन की उस धारा की ओर संकेत करता है जिसकेप्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य तथा उसका इतिहास

प्रखर प्रवाह में जाति-पाँति के बाँध एक सीमा तक टूट-फूट गए थे। राजस्थान में रैदास का विशेष प्रभाव था। कहा जाता है कि मेवाड़ की

झालारानी इनकी शिष्या थी। मीराबाई ने भी गुरु-रूप में रैदास का उल्लेख किया है। रैदास के बहुत-से पद 'आदिग्रंथ' में संगृहीत है।

11.8 संत गुरूनानक और दादू का काव्य

नानक (1469-1538)- नानक का जन्म राइभोई के तलवंडी नामक गाँव में हुआ, जो लाहौर से लगभग 30 मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। बाद में इसे नानकाना कहा जाने लगा। इतिहास ने अब इसे पाकिस्तान के हवाले कर दिया है। प्रत्येक वर्ष श्रद्धालु सिक्ख नानकाना की यात्रा पर जाते हैं।

नानक में भगवद्भक्ति के अंकुर लड़कपन में ही फूट गये थे। वे पास के जंगलों में जाकर चितन-मनन किया करते थे। एक मोदीखाने में नौकरी भी की। भक्ति में खोये रहने के कारण उन्होंने किसी को अधिक आटा तौल दिया। फलतः नौकरी से निकाल दिये गये। उन्हें माँगी मुराद मिली। वे भ्रमण के लिए निकल पड़े और भजन-कीर्तन से लोगों को प्रभावित करना शुरू किया।

उनकी बानियों का कथ्य मूलतः वही है जो कबीर का है; जैसे-नाम माहात्म्य, गुरुमहिमा, जाति-पाँति का विरोध, ब्रह्मा की वैयक्तिक अनुभूति, सत्य, अहिंसा, परोपकार आदि। पर उनके स्वर में गहरी शांति, शीतलता और निर्वैयक्तिकता है। संभवतः अपने इन्हीं गुणों के कारण वे राजनीतिक और धार्मिक अत्याचारों का मुंहतोड़ उत्तर दे सके।

कबीर और रैदास से उनकी वर्गीय स्थिति भिन्न थी। वे न विधर्मी जुलाहे थे और न अछूत चमार। वे खत्री परिवार में पैदा हुए थे। खत्री क्षत्रिय का अपभ्रंश है। बनियों का पेशा अपना लेने के कारण खत्री लोग बनिया कहे जाने लगे। नानक ने महसूस किया कि केवल वाणी द्वारा अभिव्यक्त

विचारों से काम चलने वाला नहीं है। अतः उन्होंने एक धार्मिक संगठन खड़ा किया, और अपना उत्तराधिकारी भी नियुक्त किया।

नानक पहले संत हैं जिन्होंने विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध आवाज उठाई-

खुरसान खमसान कीआ हिन्दुस्तान डराइआ। आपै दोस न देई करता जपु करि मुगल चढ़ाइया ।।

एती मार पई कुर लाणै तै की दरदु न आइया ।।

भगवान को विदेशी आक्रमणकारियों, विशेषतः मुसलमान नवाबों और बादशाहों के अत्याचारों का दर्द पहसूस हुआ या नहीं, कोई नहीं जानता, पर नानक को हुआ।

जहाँ स्त्री के सम्मान का प्रश्न है, नानक समूची भक्ति-परम्परा से अलग हैं। शायद ही कोई संत या सगुणोपासक महात्मा रहा हो जिसने स्त्री की निन्दा न की हो पर नानक कहते हैं-

जिन सिर सोहन पटीआ माँगी पाई संधूर।
ते सिर काती मुनीअहि गल बिचि आपै धूड़ ॥

जिसकी केश-राशि की माँग के बीच सिदूर सजाया जाता है उसका केश काट दिया जाता है। वे पुनः कहते हैं-

भंड जमी अ भंडि निमीअ भंड मंगण बीआहु।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु ॥
भंड मुआ भंड मालीअ भंड हो वे बंधान।
सो किउ मन्दा आखी अहि जित जंभै राजान ।।

जन्म देनेवाली भी नारी, पत्नी के रूप में भी नारी, फिर उसकी अवमानना क्यों ? गार्हस्थ्य धर्म और आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता का समर्थन अन्य गुरुओं ने भी किया। गुरु नानक की रचनाओं के कुछ और नये आयाम है जिनकी ओर ध्यान जाने की आवश्यकता है। 'जपुजी', 'आसदी बार', 'रहिरास' और 'सोहिला' इनकी रचनाएं है जो आदिग्रंथ में भी संगृहीत हैं।

निर्गुणधारा के प्रमुख रचनाकार के रूप में दादू का काव्य

दादू (1554-1603)- कबीर से प्रभावित अनेक संत संप्रदायों का उदय राजस्थान में हुआ। इनमें निरंजनी, साथ, जसनामी, लालदासी, दादू आदि संप्रदाय प्रमुख हैं। दादू संप्रदाय में स्वयं दादू की प्रभूत रचनाएं मिलती हैं। इस संप्रदाय के दूसरे प्रसिद्ध संत सुन्दरदास हैं जो संत होने के साथ-साथ पढ़े-लिखे, भाषा तथा पिंगल की बारीकियों के अच्छे जानकार थे।

दादू को उनकी दयालुता के कारण दादूदयाल भी कहा जाता है। उनके जन्मथान तथा जाति के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। सामान्यतः उन्हें अहमदाबाद में पैदा हुआ बताया जाता है। अधिक लोगों का मत है कि वे मुसलमान धुनिया थे। रुई धुनना उनका पैतृक व्यवसाय था। जन्मस्थान गुजरात होते हुए भी कर्मस्थान राजस्थान था। राजस्थान के नारायण गाँव में उनकी मृत्यु हुई थी। वहाँ 'दादूहारा' नामक मरु भी है है। अपने जीवनानुभवों के आधार पर उन्होंने 'ब्रह्म सम्प्रदाय' नाम की एक संस्था स्थापित की। आगे चलकर उसी का नाम 'दादू पंथ' हो गया। वे जगह-जगह भ्रमण करते रहते थे। सौभर और आमेर में वर्षों निवास करते रहे। सीकरी में अकबर के साथ इनका चालीस दिनों का सत्संग भी बताया जाता है। मरणोपरान्त उनकी बानियों का संग्रह उनके दो शिष्यों ने 'हरडे वाणी' के नाम से किया। बाद में उसकी त्रुटियों को दूर करके उनके प्रसिद्ध शिष्य रज्जब ने 'अंगबंधू' नाम से एक दूसरा संग्रह किया। अब तो उनकी बानियों का सुसंपादित संस्करण प्रकाशित हो चुका है।

दादू-पंथ को कबीर-पंथ की राजस्थानी शाखा कहा जा सकता है। हाँ, दादू की बानियों पर दादू की विनम्रता और सहजता की छाप सर्वत्र देखी जा सकती है जो उनकी रचना को स्वतंत्र व्यक्तित्व देती है। अपने मत के सम्बन्ध में वे लिखते हैं-

भाई रे ऐसा पंथ हमारा।
है पब रहित पंथ गहि पूरा, अवरण एक अधारा ।।
वाद विवाद काहू सौं नाँहीं, माँहि जगत थैं न्यारा।
समदृष्टि सुझाई सहज में, आपहि आप विचारा ।।
मैं तैं मेरी यह मति नाहीं, निर्वैरी निरकारा।
पूरण सबै देखि आपा परि, निरालंब निर्धारा ।।

11.9 मलिक मोहम्मद जायसी का काव्य

मलिक मुहम्मद जायसी (1464-1542) जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी है। सच पूछिए तो इस काल के लोकप्रिय श्रेष्ठ कवि चार ही हैं-कबीर, जायसी, सूर और तुलसी। इनमें से प्रत्येक अलग-अलग काव्यधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः जायसी का मूल्यांकन इनकी समकक्षता में होना चाहिए।

उनके जन्मस्थान और जन्मतिथि के बारे में मतभेद हैं, पर जायस में उनके निवास का पता उनकी रचना से ही लगता है-

जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कबि कीन्ह बखानू ।।
जायस नगर मोर अस्थानू। नगरक नाँव आदि उदियानू ।।

तहाँ दिवस दस पहुने आएऊं। भा बैराग बहुत सुख पाएऊं ।।

वे जायस में कहीं बाहर से आये थे-पाहुन के रूप में। किन्तु विरागी होकर वहीं बस गये। 'पाहुने' से प्रतीत होता है कि जायस में उनकी ससुराल थी। विराग की तह में पैठने की कोशिश करते हुए विजयदेव नारायण साही ने उनकी एक अर्धाली का सहारा लिया है-'सुख भा सोच एक दुख मानौं। ओहि बिनु जिवन मरन कै जानौं।' इसमें सामान्यतः आलोचक परमतत्व को संकेतित देखते हैं। किन्तु साही ने आधुनिक अर्थ निकाला है कि जायसी की आँखें किसी से लड़ गयी थीं। आँख लड़े बिना कोई बड़ा कवि क्या, छोटा कवि भी नहीं हो सकता। गनीमत यह हुई कि एक आँख बच गयी ।
जायसी ने स्वयं अपने को एक आँख का काना कहा है। उनके एक कान से सुनाई नहीं पड़ता था-

मुहम्मद बाई दिसि तजी एक सरवन एक आँखि।
एक नैन कबि मुहमदी गुनी। सोइ विमोहा जेइ कबि सुनी ।।

संभव है, वे कभी वामपंथी साधना के चक्कर में फंसे हों और उनकी बाई आँख और कान बेकार हो गये हों। उनके अनाकर्षक चेहरे को देखकर लोग हँसते थे, किन्तु कविता सुनकर रोते थे-

जेइ मुख देखा तेइ हँसा सुनि तेहि आयउ आँसु

उनके काव्य पर लोग मुग्ध थे। पर इसके लिए उन्होंने गर्वोक्ति न करके विनम्रता ही प्रकट की है-'हौं सब कबिन्ह केर पिछलगा, किछु कहि चला तबल देइ डगा।' फिर भी वे जो कहते हैं, डंके की चोट कहते हैं। पर लगता है, कुरूपता का दर्द उन्हें बराबर सालता रहा-

एक नैन जस दरपन औ तेहि निरमल भाउ।
सब रूपवंत पाँव गहि मुख जोवहिं कइ चाउ ॥

सभी रूपवंत उत्सुकतापूर्वक उनसे कुछ सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं। रूपवंत का उल्लेख कवि के अपने क्षोभ का द्योतक है। अपनी कुरूपता की क्षतिपूर्ति उन्होंने अपने प्रभावशाली काव्य द्वारा की। कहते हैं कि शेरशाह इनका रूप देखकर हँस पड़ा था। इसके उत्तर में उन्होंने इतना ही कहा था- 'मोहिंका हँसेसि कि कोहरहि।' मुझ पर हँसते हो कि मुझे बनाने वाले कुम्हार पर? ऐसा तीखा जवाब वही दे सकता है जो शरीर से क्षतिग्रस्त हो लेकिन गुणों से भरपूर। एक ओर विनम्रता, दूसरी ओर गर्व दीप्ति। यह विरोधाभास क्षतिपूर्ति का प्रयास ही है। अपनी कविता के प्रति वे कितने सचेत रहे होंगे, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

विजयदेव नारायण साही ने अपनी पुस्तक 'जायसी' में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जायसी सूफी नहीं थे। अपने पक्ष के समर्थन में उन्होंने 'आइन-ए-अकबरी' और बदायूँनी के 'मुत्तखाबुल-तवारीख' आदि का हवाला दिया है। चन्द्रबली पांडेय की शब्दावली तो उन्होंने नहीं ली है पर उनका मत पांडेजी के मत से मिलता-जुलता है कि सूफी प्रच्छन्न रूप से इसलाम के प्रचारक थे। कुछ सूफी ऐसे रहे होंगे पर सभी सूफियों को एक ही बटखरे से तौलना एक तरह का पूर्वाग्रह है। वास्तविकता यह है कि वे जायसी को पूरे भक्ति-चक्र से बाहर निकालकर शुद्ध कवि के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इससे दुहरे उद्देश्यों की सिद्धि होती है-शुक्लजी के मत का खंडन भी हो जाता है और शुद्ध कविता की खोज भी ।

उन्होंने पद्मावत में अपने प्यारे पीर, गुरु और पंथ की स्पष्ट चर्चा की है-

सैयद असरफ पीर पियारा। जेइ मोहि पंथ दीन्ह उजियारा ।।
पा-पाएठं गुरु मोहिदी पीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा ।।

अखरावट में लिखते हैं-

कही सरीअत चिस्ती पीरू। उघरी असरफ औ जहँगीरू ।।

अशरफ और गुरु मोहिदी सूफियों की चिश्ती-परंपरा के फकीर थे। जिस पंथ की वे बार-बार चर्चा करते हैं, क्या वह सूफी-पंथ के अलावा और कोई पंथ था?
संसार में ईश्वर तक पहुँचने के लिए उतने ही पंथ हैं जितने आकाश में नक्षत्र। लेकिन
उनकी श्रद्धा मुहम्मदी पंथ पर है-

तिन मुँह पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई ।।
से बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कैलास बसेरा ।।

शुक्लजी ने इस पर बड़ी ही सटीक टिप्पणी की है- "जायसी बड़े भावुक भगवद्भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध और पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे, पर कबीरदास के समान अपना एक निराला पंथ निकालने का हौसला उन्होंने कभी न किया। जिस मिल्लत या समाज में उनका जन्म हुआ, उसके प्रति अपने विशेष कर्तव्यों के पालन के साथ-साथ वे सामान्य मनुष्य-धर्म के सच्चे अनुयायी थे।"
विभिन्न विद्वानों और शोधार्थियों की खोजों के आधार पर जायसी के चौबीस ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है। शुक्लजी की 'जायसी ग्रंथावली' में

तीन ग्रंथ ही सम्मिलित किए गए है-पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। अब कुछ दूसरे ग्रंथों-चित्ररेखा, मसलानामा-का प्रकाशन भी हो गया है, पर जायसी की कीर्ति का आधार ग्रंथ पद्मावत ही है। भला हो शुक्लजी का जिन्होंने इस उपेक्षित किन्तु अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का वैसे ही उद्धार किया जैसे वाराह ने रत्नगर्भा पृथ्वी का।

स्वप्रगति परीक्षण

1. संतो ने.....की निंदा की है।
2. संत साहित्य में अपने विचारों से.....पर जोर दिया है।
3. संत कबीर के प्रमुख शिष्य.....थे।
4. मलिक मोहम्मद जायसी का प्रसिद्ध ग्रंथ .....है।
5. संत रैदास .....जाति के थे।

11.10 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रमअंतर्गत भक्तिकाल के संत साहित्य के विषय में विस्तृत अध्ययन किया गया । इस इकाई की सामग्री के अध्ययन के पश्चात हमें संत साहित्य की प्रगतिशीलता , उसकी प्रवृत्तियां एवं संत काव्य धारा के प्रमुख कवियों से भली-भांति परिचित हो चुके होंगे। संत कबीर, संत रविदास ,संत गुरु नानक, संत दादू और मलिक मोहम्मद जायसी के काव्य की सभी दृष्टियों से अवगत हो सकेंगे ।

11.11 मुख्य शब्द

ओछा - तुच्छ

चमार - निम्न जाति

निरालंब - निराश्रित

विमोह - आज्ञान ,भ्रम

11.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. कामिनी रूप
2. हृदय की पवित्रता
3. धर्मदास
4. पद्मावत
5. निम्न

11.13 संदर्भ सूची

1. शर्मा, A. (2023). *हिन्दी काव्य के इतिहास में मध्यकालीन काव्य की भूमिका*. लखनऊ: संस्कृत प्रकाशन.
2. सिंह, M. (2022). *भारत में काव्यशास्त्र का विकास और मध्यकालीन काव्य*. भोपाल: साहित्य प्रकाशन.
3. यादव, R. (2023). *प्राचीन काव्य और मध्यकालीन काव्य: ऐतिहासिक दृष्टिकोण*. जयपुर: ज्ञानदीप प्रकाशन.
4. वर्मा, S. (2020). *प्राचीन हिन्दी काव्य का इतिहास*. पटना: लोकभारती प्रकाशन.
5. शुक्ला, P. (2021). *मध्यकालीन काव्य और उसकी परंपरा*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

11.14 अभ्यास प्रश्न

1. संत शब्द का अर्थ और उसकी पृष्ठभूमि बताइए।
2. संत साहित्य की प्रगतिशीलता का कारण बताइए ।

3. संत साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिये।
4. संत काव्य धारा में कबीर का स्थान निर्धारित कीजिए।
5. संत गुरुनानक और दादू के काव्य का पर प्रकाश डालिए ।

इकाई-12

अमीर खुसरो का काव्य संसार

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 अमीर खुसरों व जीवन परिचय

12.4 अमीर खुसरों की कृतिया

12.5 अमीर खुसरों का साहित्य में स्थान

12.6 सार संक्षेप

12.7 मुख्य शब्द ,

12.8 स्व प्रगति शिक्षा प्रश्नों के उत्तर

12.9 सन्दर्भ सूची

12.10 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का इतिहास के आदिकाल के अमीर खुसरो चौदवीं सदी के लगभग दिल्ली के निकट रहने वाले एक प्रमुख कवि, शायर, गायक और संगीतकार थे।[उनका परिवार कई पीढ़ियों से राजदरबार से सम्बंधित था । स्वयं अमीर खुसरो ने 8 सुल्तानों का शासन देखा था । अमीर खुसरो प्रथम मुस्लिम कवि थे जिन्होंने हिंदी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है । वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिंदी, हिन्दवी और फारसी में एक साथ लिखा । उन्हे खड़ी बोली के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है । जिनके बारे में हम भली भांति अध्ययन कर सकेंगे। वे अपनी पहेलियों और मुकरियों के लिए जाने जाते हैं। सबसे पहले उन्हीं ने अपनी भाषा के लिए हिन्दवी का उल्लेख किया था। वे फारसी के कवि भी थे। उनको

दिल्ली सल्तनत का आश्रय मिला हुआ था। इन्होंने बहुत सारे ग्रंथ लिखे। साथ ही इनका इतिहास स्रोत रूप में महत्त्व है। अमीर खुसरो को तोता-ए-हिंद कहा जाता है इस इकाई में हम उनके बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिंदी साहित्य के इतिहास के अंतर्गत आदिकाल के कवि अमीर खुसरो से परिचित हो सकेंगे।
- अपने पाठ्यक्रम में अंतर्गत अमीर खुसरो के काव्य कृतियों से परिचित होंगे।
- उनकी पहेलियां और मुकरियों का आनंद उठा सकेंगे।
- फारसी, अरबी भाषाओं से अवगत हो सकेंगे।
- इन्होंने खड़ी बोली हिंदी को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

12.3 अमीर खुसरो का जीवन परिचय

अमीर खुसरो का जन्म पटियाला जिला एटा उत्तर प्रदेश में सन् 1250 ईस्वी में हुआ एवं मृत्यु 1380 में हुई। वे तत्कालीन पछोही बोली का परिचय देने वाले खुसरो हैं। इनके रचना काल का आरंभ से 1340 से होता है। इन्होंने गुलाम वंश से खिलजी वंश तक की ऋतुएं देखी हैं। ये फारसी के बहुत अच्छे ग्रंथकार और अपने समय के नामी कवि थे। स्वभावतः विनोदशील स्वभाव होने के कारण हल्के साहित्य की ओर भी इनकी रुचि थी। मिलनसार प्रवृत्ति, इन्हें जनता की भावना में योग देने को बाध्य करती थी। यही कारण है कि जनता को रुचिकर लगने वाली पहेलियो, मुकरियों तथा तुक बंदियों को लिखा करते थे। हो, कुछ रसीले गीत एवं दोहे भी लिखे हैं।

उस समय काव्य भाषा पुरानी बज ही थी। खड़ी बोली के प्रदेश में भी जनता की रचनाएं बज की ओर झुकी रहती थी। खुसरो की हिन्दी रचनाओं में भी दो प्रकार की भाषा पाई जाती है-(1) पहेलियों, मुकरियों एवं दो सखुनों की भाषा ठेठ बोल-चाल की भाषा है, उसमें कहीं-कहीं बज का भी पुट है। (ii) गीतों तथा दोहों की भाषा व्रज या मुख प्रचलित काव्य भाषा है। इनकी भाषा में इतनी नवीनता कैसे आ पाई है? यह संदेह तब और बढ़ जाता है, जब 200 वर्ष बाद होने वाले कबीर की भाषा में प्राकृत आदि पद मिलते हैं और पर्याप्त पुरानापन लक्षित होता है। विचार करने पर ये दोनों बातें सकारण जान पड़ती है। खुसरो में चिकनाहट तीन कारणों से लक्षित होती है.

(i) समय-समय पर होते रहने वाले प्रक्षेप,

(ii) मुख परंपरा में जीवित रहना,

(iii) लोक की ओर अति झुकाव,

और बहुत बाद में होने वाले कबीर की रचनाओं में जो इतना पुरानापन दिखाई पड़ता है, उसके निम्नलिखित कारण हैं-

(i) धर्मोपदेशकता की प्रवृत्ति, (ii)पुरानी पोथियों की उक्तियों का सहारा, कुछ कोषों की भी रचनाएं इनके द्वारा हुई हैं।

12.4 अमीर खुसरो की कृतियां

अमीर खुसरो ने 92 साहित्यिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकों की रचना की है। अमीर खुसरो मुख्य रूप से फारसी के कवि है। फारसी भाषा पर उनका अप्रतिम अधिकार था। उनकी गणना महाकवि फिरदौसी, शेख सादिक तथा निजामी फारस के महाकवियों के साथ होती है। फारसी काव्य के लालित्य तथा मार्दव के कारण ही अमीर खुसरो को 'हिन्द की तूती' कहा जाता है। खुसरो का फारसी काव्य चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-ऐतिहासिक मसनवी जिसमें किरानुससादैन, मिफतोलफतह, देवलरानी खिजखां, नूहसिपहर और तुगलकनामा नाम की रचनाएं आती हैं, रोमांटिक मसनवी-जिसमें मतलभ लअनवार, शिरीन खुसरो, आईन-ए-सिकंदरी, मजनू-लैला और हश्त विहश्त गिनी जाती है, दीवान-जिसमें तुहफ तुस सिगहर, वास्तुलहयात आदि ग्रंथ आते हैं; गद्य-रचनाएं-'एजाजयेखुसरवी' और 'खजाइनुलफतह तथा मिश्रित' जिसमें 'वेदऊलअजाइव', 'मसनवी शहर असुब', 'चिश्तान' और 'खालितबारी' नाम की रचनाएं परिगणित हैं। उन्होंने सन् 1289 ई में 'मसनवी किरानुससादन' की रचना की। गुलाम वंश के पतन के बाद जलालुद्दीन खिलजी दिल्ली का सुल्तान हुआ। उसने खुसरो को अमीर की उपाधि से विभूषित किया। खुसरो ने जलालुद्दीन की प्रशंसा में 'मिफ्तोलफ तह' नामक ग्रंथ की रचना की। जलालुद्दीन के हत्यारे उसके भतीजे अलाउद्दीन ने भी सुल्तान होने पर अमीर खुसरो को उसी तरह सम्मानित किया तथा उन्हें राजकवि की उपाधि प्रदान की। अलाउद्दीन की प्रशंसा में खुसरो ने जो रचनाएं की वे अभूतपूर्व थी। खुसरो की अधिकांश रचनाएं

अलाउद्दीन के राज्यकाल की ही हैं। 1298 से 1301 ई. की अवधि में उन्होंने पांच रोमांटिक मसनवियां-1. मल्लोल अनवर, 2. शिरीन खुसरो, 3. मजनू-लैला, 4. आईन-ए-सिकंदरी और 5. हश्त विहिदत-लिखी। ये पंच-गंज नाम से प्रसिद्ध हैं। ये मसनवियां खुसरो ने अपने धर्म-गुरु शेख निजामुद्दीन औलिया को समर्पित की तथा उन्हें सुल्तान अलाउद्दीन को भेंट कर दिया। पद्य के अतिरिक्त खुसरो ने दो गद्य-ग्रंथों की भी रचना की-1. खजाइनुल फतह, जिसमें अलाउद्दीन की विजयों का वर्णन है और 2. एजाजयेखुसरवी, जो अलंकार ग्रंथ है। अलाउद्दीन के शासन के अंतिम दिनों में खुसरो ने देवलरानी खिज्रखां नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक मसनवी लिखी ।

अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी उसके छोटे पुत्र कुतुबुद्दीन मुबारकशाह के दरबार में भी खुसरो ससम्मान राजकवि के रूप में बने रहे। यद्यपि मुबारकशाह खुसरों के गुरु शेख निजामुद्दीन से शत्रुता रखता था। इस काल में खुसरो ने नूहसिपहर नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें मुवारकशाह के राज्यकाल की मुख्य मुख्य घटनाों का वर्णन है।

खुसरो की अंतिम ऐतिहासिक मसनवी 'तुगलक' नामक है जो उन्होंने गयासुद्दीन तुगलक के राज्यकाल में लिखी और जिसे उन्होंने उसी सुल्तान को समर्पित किया।

12.5 अमीर खुसरो का साहित्य में स्थान

यद्यपि खुसरो की महत्ता उनके फारसी काव्य पर आश्रित है, लेकिन उनकी लोकप्रियता का कारण उनकी हिन्दवी को रचनाएं ही हैं। हिन्दवी में काव्य-रचना करने वालों में अमीर खुसरो की काम सर्वप्रमुख है। अरबी, फारसी के

साथ-साथ अमीर खुसरो को अपने हिन्दवी ज्ञान पर भी गई था। उन्होंने स्वयं कहा है-"मैं हिन्दुस्तान की तूती हूं। अगर तुम वास्तव में मुझसे जानना चाहते हो तो हिन्दवी में पूछो। मैं तुम्हें अनुपम बातें बता सकूंगा ।" अमीर खुसरो ने कुछ रच रचनाएं हिन्दी या • हिन्दवी में भी की थी, इसका साक्ष्य स्वयं उनके इस कथन में प्राप्त होता है- जुजवे चंद्र नया हिन्दी-नजरे दोस्तां करदां अस्त ।" उनके नाम से हिन्दी में पहेलियां, मुकरियां, दो सुखने तथा कुछ गजलें प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त उनका फारस हिन्दी कोश खालिकवारी भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है।

ये बड़े प्रतिभाशाली थे। कहा जाता है कि ये हजरत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। एक बार जब ये किसी कुएं के पास गुजरे तो इन्हें प्यास लगी। इन्होंने वहां पनिहारिनों से पानी मांगा, तो जो पनिहारिनें इन्हें जानती थीं उन्होंने कहा ऐसी कविता कहो जिसमें ये चार शब्द हों-खीर, कुत्ता, ढोल, चरखा तब इन्होंने निम्न दोहा कहा-

'खीर पकाई जतन से चरखा दिया चलाय।
आया कुत्ता खा गया अब तू बैठी ढोल बजाय ।।'

उक्ति वैचित्र्य इनकी रचना शैली की विशेषता है। 'खालिकबारी' एक कोश ग्रन्थ है जो इनकी विद्वता का परिचायक है। अमीर खुसरो को हिन्दी के मनोरंजक साहित्य की रचना के लिए सदैव याद किया जायेगा। नायिका की सुकुमारता का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण देखिए-

"इमली की जड़ से निकली पतंग। ताकी हवा लगी मोरे अंग।
जौ ना देती झपट किवार। तौ उड़ि जाती कोस हजार । "

स्व प्रगति परीक्षण

1. अमीर खुसरो का जन्म.....में हुआ था ।
2. अमीर खुसरो ने .....की रचना की।
3. अमीर खुसरो को ..... की उपाधि दी गई थी।
4. अमीर खुसरो मुख्य रूप से .....के कवि है।
5. अमृत खुसरो के गुरु.....थे।

12.6 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रमअंतर्गत आदिकाल के प्रमुख कवि अमीर खुसरो के जीवन परिचय एवं उनके द्वारा रचित काव्य का विस्तृत अध्ययन किया। आपने अपने काव्य में फारसी हिंदी और अरबी भाषा का बहुलता से प्रयोग किया।

निष्कर्षिता कहा जा सकता है कि अमीर खुसरो की रचनाओं में मिश्रित बोलियां का मिश्रण था कवि ने तत्कालीन सभी प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है शब्द चयन प्रसन्नुकूल है अतः उनका काव्य प्रभावशाली है और उन्होंने अपने भाषा सौंदर्य के माध्यम से अपने काव्य को नए रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया। उनके द्वारा रचित पहेलियां और मुकरिया आज भी जन सामान्य में प्रसिद्ध है।

12.7 मुख्य शब्द

भाया - अच्छा लगना

नाव - नाम

12.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. पटियाली उत्तर प्रदेश
2. पहेलियां और मुकरियां
3. तोता ए हिंद
4. फारसी
5. हजरत निजामुद्दीन औलिया

12.9 संदर्भ सूची

1. **शुक्ल, आचार्य रामचंद्र.** (2021). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन.
2. **कपूर, श्याम चंद्र.** (2020). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन
3. **राय, बाबू गुलाब.** (2020). *हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास.* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल.
4. **सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद.** (2022). *हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि.* श्री विनोद पुस्तक मंदिर.

12.10 अभ्यास प्रश्न

1. अमीर खुसरो का परिचय दीजिए।
2. मम्मी खुसरो की कृतियों का अवदान स्पष्ट कीजिए।
3. अमीर खुसरो का साहित्य में स्थान निर्धारित कीजिए।
4. अमीर खुसरो के काव्य की विशेषताओं को लिखिए।

इकाई -13

रैदास का काव्य संसार

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 रैदास का जीवन परिचय

13.4 रैदास की प्रमुख कृतिया

13.5 रैदास का साहित्य में स्थान

13.7 मुख्य शब्द

13.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

13.9 संदर्भ सूची

13.10 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

संत रेदास, कबीर के समसामयिक कहे जाते हैं। मध्ययुगीन संतों में रैदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत: इनका समय सन् 1398 से 1518 ई. के आस पास का रहा होगा। अंत: साक्ष्य के आधार पर रैदास का चर्मकार जाति का होना सिद्ध होता है-

'नीचे से प्रभु आँच कियो है कह रैदास चमारा'

संत रैदासजी को पंजाब में रविदास कहां जाता है उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और राजस्थान में उन्हें रैदास के नाम से ही जाना जाता है। गुजरात और महाराष्ट्र के लोग 'रोहिदास' और बंगाल के लोग उन्हें 'रुइदास' कहते हैं। कई पुरानी पांडुलिपियों में उन्हें रायादास, रेदास, रेमदास और रौदास के नाम से भी जाना गया है।

इस इकाई में हम उनकी भाषा रचनाएं और साहित्य में उनके स्थान के बारे में अध्ययन करेंगे।

13.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिंदी साहित्य के अंतर्गत भक्ति काल के संत कवि रवि दास से परिचित हो सकेंगे।
- अपने पाठ्यक्रम के अंतर्गत रविदास की काव्य कृतियों से परिचित होंगे
- उनकी काव्य कृतियों से कला पक्ष का आनंद उठा सकेंगे ।
- उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से समाज को एक नई दिशा प्रदान की।

13.3 रविदास का जीवन परिचय

मध्ययुगीन संतों में रैदास का महत्वपूर्ण स्थान है। संत रैदास कबीर के समसामयिक कहे जाते हैं। अतः इनका समय सन् 1388 से 1588 ई. (सं. 1445 से 1575 ई.) के आस-पास का रहा होगा। अंतःसाक्ष्य के आधार पर रैदास का चमार जाति का होना सिद्ध होता है-"नीचे से प्रभु आंच कियो है कह रैदास चमारा" आदि। संत रविदास काशी के रहने वाले थे। इन्हें रामानंद का शिष्य माना जाता है। लेकिन अंतःसाक्ष्य के किसी भी स्रोत से रैदास का रामानंद का शिष्य होना सिद्ध नहीं होता। इसके अतिरिक्त रैदास की कबीर से भेंट की कथाएं प्रसिद्ध हैं लेकिन उनकी प्रमाणिकता संदिग्ध है। नाभादासकृत 'भक्तमाल' में रैदास के स्वभाव और उनकी चारित्रिक उच्चता का प्रतिपादन मिलता है। प्रियादासकृत 'भक्तमाल' की टीका के अनुसार चित्तौड़ झालारानी उनकी शिष्या थी, जो महाराणा सांगा की पत्नी थी। इस दृष्टि से रैदास का समय सन् 1482-1557 ई. (सं. 1539-1584 वि.) अर्थात् विक्रम की सोलवी शती के अंत तक चला जाता है। कुछ लोगों का

अनुमान है कि चित्तौड़ की रानी मीराबाई ही थी तथा उन्होंने रैदास का ने अपने अनेक पढ़ें में रैदास का गुरु रूप में था। मीरा ने शिष्यत्व ग्रहण किया स्मरण किया है- "गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, रैदास ने अपने पूर्ववर्ती तया घुरसे कलम भिड़ी। सत गुरु सैन दई जब आके, जोत रली।" कि कबीर तथा समसामयिक समसामयिक भक्तों के संबंध में लिखा है। से ज्ञात होता है। उनके निर्देश भक्तों के संबंध में लिखा है। उनके निर्देश से ज्ञात होता है कि कबीर की मृत्यु उनके सामने ही हो गयी थी। रैदास की अवस्था 120 वर्ष की मानी जाती है।

13.4 रैदास की प्रमुख कृतियां

रैदास अनपढ़ कहे जाते हैं। संत-मत के विभिन्न संग्रहों में उनकी रचनाएं संकलित मिलती हैं। राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में भी उनकी रचनाएं मिलती हैं। रैदास की रचनाओं का एक संग्रह वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है। इसके अलावा इनके बहुत से पद 'गुरु ग्रंथ साहब' में भी संकलित मिलते हैं। यद्यपि दोनों प्रकार के पदों की भाषा में बहुत अंतर है तथापि प्राचीनता के कारण 'गुरु ग्रंथ साहब' में संग्रहित पदों की प्रमाणिक मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। रैदास के कुछ पदों पर अरबी और फारसी का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। रैदास के अनपढ़ तथा विदेशी भाषाओं से अनभिज्ञ होने के कारण ऐसे पदों की प्रामाणिकता में संदेह होने लगता है। अतः रैदास के पदों पर अरबी-फारसी के प्रभाव का ज्यादा संभाव्य कारण उनका लोकप्रचलित होना ही प्रतीत होता है। रैदास की दो रचनाएं निरंजन देवा, दरसन दीजै राम है।

रैदास की कुछ और रचनाएं ये रहीं, "तुम्हारी आस, पार गया, तुम चंदन हम पानी, मन ही पूजा। "

13.5 रैदास का साहित्य में स्थान

रैदास के बारे में कुछ खास बातें है रैदास एक भारतीय संत कवि थे।
इन्हें संत शिरोमणि संत गुरु की उपाधि दी गई है। रैदास ने जाति-पाति का घोर खंडन किया था। रैदास ने रविदास पंथ की स्थापना की थी।
रैदास के कुछ भजन सिखों के पवित्र ग्रंथ गुरुग्रंथ साहिब में भी शामिल हैं।
रैदास ने अपनी रचनाओं में सरल ब्रजभाषा का इस्तेमाल किया था.
रैदास को उपमा और रूपक अलंकार बहुत पसंद थे।
रैदास की विचारधारा और सिद्धांतों को संत-मत की परंपरा के अनुरूप ही पाते हैं। उनका सत्यपूर्ण ज्ञान में विश्वास था। उन्होंने भक्ति हेतु परम वैराग्य अनिवार्य माना है। परम तत्व सत्य है, जो अनिर्वचनीय "जस हरि कहिए तस हरि नाही। है अस जस कछु तैसा।" यह परमतत्व एकरस है तथा जड़ और चेतन में समान रूप से अनुस्यूत है। वह अक्षर और अविनश्वर है और जीवात्मा के रूप में हर जीव में अवस्थित है। संत रैदास की साधना पद्धति का क्रमिक विवेचन नहीं मिलता। जहां-तहां प्रसंगवश संकेतों के रूप में वह प्राप्त होती है। विवेचकों ने रैदास की साधना में 'अष्टांग' योग आदि को खोज निकाला है।
संत रैदास अपने समय के प्रसिद्ध महात्मा थे। कबीर ने 'संतनि में रविदास संत' कहकर उनका महत्व स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त नाभादास, प्रियादास, मीराबाई आदि ने भी भी रैदास का ससम्मान स्मरण किया है। संत रैदास ने एक पंथ भी चलाया, जो रैदासी पंथ के नाम से प्रसिद्ध है। इस मत के अनुयायी पंजाब, गुजरात, उत्तरप्रदेश आदि में पाये जाते हैं
स्वप्रगति परीक्षण

1. संत रैदास.....के समकालीन थे।
2. संत रैदास ने की .....स्थापना की थी।
3. नाभादास कृत रचना.....है।
4. रैदास की.....रचना है।

13.6 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रम अंतर्गत भक्ति काल के प्रमुख संत कवि रैदास के जीवन परिचय एवं उसके द्वारा रचित काव्य का विस्तृत अध्ययन किया। आपने काव्य में अरबी - फारसी भाषा का प्रयोग किया है निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संत रैदास की रचनाओं में कवि ने तत्कालीन परिस्थितियों का सुंदर वर्णन किया है। शब्द चयन प्रसंग अनुकूल है तथा आपका काव्य प्रभावशाली है अपने अपने भाषा सौंदर्य के माध्यम से लोगों को प्रभावित किया और बहुत से पद गुरु प्राचीनता के कारण गुरु ग्रंथ साहिब में संग्रहित पदों के प्रामाणिक माने जाते हैं संत रैदास के जीवन चरित्र से अवगत हो सकेंगे।

13.7 मुख्य शब्द

तिह - भद्धी
सृजन - सृष्टि करने की क्रिया
सैया - स्वामी

13.8 स्व प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्त

1. कबीर दास
2. रैदासी पंथ
3. भक्तमाल

4. निरंजन देव और दरसन दीजै राम

13.9 संदर्भ सूची

1. **शुक्ल, आचार्य रामचंद्र.** (2021). *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन.
2. अरोड़ा, S. (2021). *रैदास: जीवन और काव्य.* दिल्ली: ज्ञान दर्पण प्रकाशन.
3. **सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद.** (2022). *हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि.* श्री विनोद पुस्तक मंदिर.
4. शर्मा, P. (2022). *संत रैदास की साहित्यिक धारा.* जयपुर: संस्कृत साहित्य प्रकाशन.
5. यादव, M. (2023). *भक्ति काल के संत कवि रैदास: काव्य और समाज पर प्रभाव.* मुम्बई: साहित्य गंगा प्रकाशन.

13.10 अभ्यास प्रश्न

1. संत रविदास का परिचय दीजिए।

2. संत रविदास की कृतियों के बारे में बताइए। 3. संत रविदास का साहित्य में योगदान स्पष्ट कीजिए।

4. संत रविदास के विचारों और सिद्धांतों को बताइए

इकाई -14

नामदेव का काव्य संसार

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 नामदेव का जीवन परिचय

14.4 नामदेव की कृतियां

14.5 नामदेव का साहित्य में स्थान

14.6 संक्षेप सार

14.7 मुख्य शब्द

14.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

14.9 संदर्भ सूची

14.10 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

संत नामदेव भारत के प्रसिद्ध संत थे। इनके समय में नाथ और महानुभाव पंथों का महाराष्ट्र में प्रचार था संत नामदेव ने विसोबा खेचर को गुरु के रूप में स्वीकार किया था। ये संत ज्ञानेश्वर के समकालीन थे और उम्र में उनसे ५ साल बड़े थे। संत नामदेव, संत ज्ञानेश्वर के साथ पूरे महाराष्ट्र का भ्रमण किए, भक्ति-गीत रचे और जनता जनार्दन को समता और प्रभु-भक्ति का पाठ पढ़ाया।

भक्त नामदेव ने अपने काव्य के माध्यम से मराठी साहित्य के साथ हिंदी साहित्य में भी रचनाएं लिखीं । जो समाज के लिए एक नई दिशा का कार्य किया। हम उनके साहित्य के माध्यम से समाज को एक नई दिशा प्रधान की। इस इकाई के अध्ययन से छात्र उनसे भलीभांति अवगत हो सकेंगे ।

14.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- भक्ति काल के संत कवि नामदेव से परिचित हो सकेंगे।
- अपने पाठ्यक्रम के अंतर्गत भक्ति काल की काव्य कृतियों से परिचित हो सकेंगे।
- उनकी काव्य कृतियां से छात्र ज्ञानवर्धक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- नामदेव के काव्य से भाषा शैली एवं विशेषताओं को समझ पाएंगे।

14.3 नामदेव का जीवन परिचय

भक्त नामदेव महाराज का जन्म २६ अकटुबर १२७० (शके ११९२) में महाराष्ट्र के सतारा जिले में कृष्णा नदी के किनारे बसे नरसीबामणी नामक गाँव में एक शिंपी जिसे सुचिकार (दर्जी) भी कहते है के परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम दामाशेट और माता का नाम गोणाई देवी था। इनका परिवार भगवान विट्ठल का परम भक्त था। नामदेव का विवाह राधाबाई के साथ हुआ था और इनके पुत्र का नाम नारायण था संत ज्ञानेश्वर के परलोकगमन के बाद इन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया। इन्होंने मराठी के साथ ही साथ हिन्दी में भी रचनाएँ लिखीं। इन्होंने अठारह वर्षो तक पंजाब में भगवन्नाम का प्रचार किया। अभी भी इनकी कुछ रचनाएँ सिक्खों की धार्मिक पुस्तकों में मिलती हैं। मुखबानी नामक पुस्तक में इनकी रचनाएँ संग्रहित हैं। आज भी इनके रचित गीत पूरे महाराष्ट्र में भक्ति और प्रेम के साथ गाए जाते हैं। ये संवत १४०७ में समाधि में लीन हो गए।

सन्त नामदेव के समय में नाथ और महानुभाव पंथों का महाराष्ट्र में प्रचार था। नाथ पंथ "अलख निरंजन" की योगपरक साधना का समर्थक तथा बाह्याडंबरों का विरोधी था और महानुभाव पंथ वैदिक कर्मकांड तथा

बहुदेवोपासना का विरोधी होते हुए भी मूर्तिपूजा को सर्वथा निषिद्ध नहीं मानता था। इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र में पंढरपुर के "विठोबा" की उपासना भी प्रचलित थी। सामान्य जनता प्रतिवर्ष आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी को उनके दर्शनों के लिए पंढरपुर की "वारी" (यात्रा) किया करती थी (यह प्रथा आज भी प्रचलित है), इस प्रकार की वारी (यात्रा) करनेवाले "वारकरी" कहलाते हैं। विट्ठलोपासना का यह "पंथ" "वारकरी" संप्रदाय कहलाता है। नामदेव इसी संप्रदाय के प्रमुख संत माने जाते हैं

14.4 नामदेव की कृतियां

नामदेव की साहित्यिक रचनाएँ वैष्णव दर्शन और विठोबा में उनकी आस्था से प्रभावित थीं । हिंदू धर्म के वारकरी संप्रदाय के सिद्धांत नामदेव की शिक्षाओं पर आधारित हैं । नामदेव ने मराठी भाषा के माध्यम से अपने आदर्शों को व्यक्त किया। नामदेव की पद्धति विठोबा के लिए सरल शब्दों में स्तुति रचना और संकीर्तन नामक संगीत उपकरण का उपयोग करना था, जो दोनों ही आम जनता के लिए सुलभ थे।

तीर्थावली, नामदेव की एक मराठी भाषा की आत्मकथात्मक कृति है।

नामदेव ने भजन लिखे , या ऐसे गीत जो संगीत के साथ गाए जाने के लिए होते हैं। भजन का शाब्दिक अर्थ है "कुछ ऐसा जिसका आनंद लिया जाए या जिसे साझा किया जाए।"

नामदेव के गीत संगीतमय होने के साथ-साथ आध्यात्मिक संदेश देने के लिए भी लिखे गए थे ।

नामदेव की संगीत शैली एक प्रकार का प्रबंध थी , जो एक बहुत व्यापक और समृद्ध शैली है जिसमें ध्रुपद, ठुमरी, टप्पा, गीत, भजन और अन्य प्रजातियां शामिल हैं।

ऐसा माना जाता है कि उनके अभंगों को गुरु ग्रंथ साहिब में शामिल किया गया है।

सिख धर्म के आदि ग्रन्थ में 61 नामदेव गीतों का संग्रह मिलता है।

नामदेव के जीवन का कोई भी विवरण नामदेव की दासी जनाबाई का उल्लेख किए बिना पूरा नहीं होगा। अपने पीछे छोड़ी गई कई भक्ति कविताओं में उन्होंने स्वयं को "नाम की दासी" या "नामदेव की जानी" कहा है। वह नामदेव की सबसे करीबी अनुयायियों में से एक थीं, जिनकी उनकी सेवा करने और भगवान विठोबा की स्तुति गाने के अलावा कोई अन्य महत्वाकांक्षा नहीं थी।

विठोबा के प्रति उनका प्रेम इतना प्रबल और सच्चा था कि जब वह वृद्ध हो जाती थीं और अपने घरेलू दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ हो जाती थीं, तो भगवान स्वयं उनके दायित्व कम कर देते थे।

14.5 नामदेव का साहित्य में स्थान

नामदेव कट्टरपंथी भक्ति संप्रदाय के अग्रदूत थे, जो निरंतर, ईमानदार भक्ति द्वारा ब्रह्म (परमात्मा) के साथ एक सीधा, प्रेमपूर्ण संबंध विकसित करने पर जोर देता है। नामदेव ने कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ नहीं लिखा, लेकिन उन्होंने बड़ी संख्या में अभंग (छोटी भक्ति कविताएँ) लिखीं। इनमें से अधिकांश पहले ही विलुप्त हो चुके हैं, लेकिन लगभग चार हज़ार अभंग बचे हैं। नामदेव के अभंग सिख आदि ग्रंथ में पाए जा सकते हैं ।

नामदेव कट्टरपंथी भक्ति संप्रदाय के अग्रदूत थे, जो निरंतर, ईमानदार भक्ति द्वारा ब्रह्म (परमात्मा) के साथ एक सीधा, प्रेमपूर्ण संबंध विकसित करने पर जोर देता है। नामदेव ने कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ नहीं लिखा, लेकिन उन्होंने बड़ी संख्या में अभंग (छोटी भक्ति कविताएँ) लिखीं। इनमें से

अधिकांश पहले ही विलुप्त हो चुके हैं, लेकिन लगभग चार हज़ार अभंग बचे हैं। नामदेव के अभंग सिख आदि ग्रंथ में पाए जा सकते हैं । हिंदी साहित्य के इतिहास में निर्गुण भक्ति काव्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है निर्गुण भक्ति काव्य धारा में कबीर के बाद संत नामदेव महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं

स्वप्रगति परीक्षण

1. संत नामदेव ..... के प्रसिद्ध संत थे।
2. संत नामदेव की रचनाएं .....दर्शन से प्रभावित थी।

14.6 सार संक्षेप

हमने अपने पाठ्यक्रम अंतर्गत भक्ति काल के निर्गुण धारा के प्रमुख कवि नामदेव के जीवन परिचय एवं उनके द्वारा रचित काव्य का विस्तृत अध्ययन किया अपने काव्य में मराठी एवं हिंदी भाषा का प्रयोग किया है निष्कर्षता: कहा जा सकता है कि संत नामदेव की रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों का सुंदर वर्णन है। अपने छोटी बड़ी भक्ति पर कविताएं लिखी नामदेव ने अभंग सिख ग्रंथ में उल्लेख हैं पंजाबी साहित्य में भी उनकी दोहों का कई जगह उल्लेख मिलता है।

इस इकाई से हम संत नामदेव के संपूर्ण काव्य साहित्य से भली भांति परिचित हो सकेंगे ।

14.7 मुख्य शब्द

पाउ - पैर

निरंजन - अंजन रहित

कुसलात - कुशलता

रतनु - रतन जैसा श्रेष्ठ

14.8 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. महाराष्ट्र
2. वैष्णव

14.9 संदर्भ सूची

1. शर्मा, R. (2022). *नामदेव: एक संत कवि का साहित्यिक दृष्टिकोण*. दिल्ली: भारतीय साहित्य प्रकाशन
2. **शुक्ल, आचार्य रामचंद्र.** (2021). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. लोकभारती प्रकाशन.
3. **सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद.** (2022). *हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि*. श्री विनोद पुस्तक मंदिर.
4. अरोड़ा, S. (2021). *रैदास: जीवन और काव्य*. दिल्ली: ज्ञान दर्पण प्रकाशन.
5. कौर, S. (2021). *नामदेव और उनका भक्ति काव्य*. चंडीगढ़: पंजाबी साहित्य अकादमी.

14.10 अभ्यास प्रश्न

1. संत नामदेव का साहित्यिक परिचय दीजिए।
2. नामदेव की कृतियों की विशेषताएं लिखिए।
3. संत रविदास का साहित्य में योगदान को बताइए ।
4. संत रविदास भक्ति काल के प्रमुख कवि है स्पष्ट कीजिए ।